

॥ श्री ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला ५५

हिन्दी गाथा सप्तशती

सम्पादक एवं अनुवादक

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी



चौरवम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०१७

मूल्य : २-००

(पुनर्मुद्रणादिका सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः)
The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1 (INDIA)

1961

Phone 3076

विष्णुप्रिया के बरद पुत्र

तथा

वीणापारि के थदालु सेवक

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन 'राजासुनुआ'

को

सविनय

विषय-सूची

पृष्ठसंख्या

भूमिका उपरम, ग्रथ परिचय, गाथा कोश, उल्लेख, रचयिता, रचनाकाल, पाठभेद क्रमभेद, टीकाएँ, गाथा सप्तशती के कवि, निष्कर्ष, प्रथम प्रकाशन, भारतीय संस्करण, भाषा, छंद, उपसंहार	१-२३
प्रथम शतक	१
द्वितीय शतक .	२५
तृतीय शतक	४६
चतुर्थ शतक	७३
पञ्चम शतक .	६७
षष्ठ शतक	१०१
सप्तम शतक .	१४५
परिशिष्ट (क) गाथानुक्रमणिकादि	१६६
(ख) कवि एवं कवियत्री	१७६
(ग) प्रमुख प्राकृत शब्द-सूची	१८६



आभार-प्रदर्शन

'हिन्दो गाथा सतसती' का प्रकाशन मेरे लिए एक साहसपूर्ण कार्य है, इसे मैं भलीभाँति जानता हूँ। परन्तु यदि उद्देश्य महान् है तो साहस से काम लेना ही चाहिए। लक्ष्य-मार्ग की बाधा अथवा कठिनाई को सोच कर कदम न उठा बैठ रहना न तो उपयोगी है, न बाछनीय। इसे इसी प्रेरणा का परिणाम समझना चाहिए। फिर मेरी अकेली शक्ति एव सामर्थ्य की यह देन नहीं है। पूर्ववर्ती लेखको की प्रायः समस्त कृतियों ने किसी न किसी रूप में मुझे यथेष्ट सहायता पहुँचायी है। अतएव मैं उन सभी लेखको अथवा टीकाकारों से उपकृत हूँ। पाठाक्ष की पाण्डुलिपि तैयार करने में चि० विनोद तथा चि० नित्यानन्द तिवारी ने अपना सर्वाधिक सहयोग दिया है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ० देवीप्रसन्न मैत्र तथा उनके परिवार ने समय-समय पर जिस आत्मीयता के साथ मुझे निरापद स्थान में काम करने की सुविधा प्रदान की है उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। परन्तु स्नेहमयी 'ज्वालामुखी' का सक्रिय सहयोग यदि न मिला करे तो मेरे सभी ऐसे सकल्प मन के मन में ही रह जाया करे। अतएव जो सुख-दुःख वा साथी एव भागीदार है उसे कैसे भुनाया जा सकता है।

अन्त में मैं चि० मोहनदास एव चि० विठ्ठलदास के प्रति अपना आभार मानता हूँ जिन्होंने धैर्य तथा उत्साह के साथ इसे प्रकाशित किया है। मुद्रण सम्बन्धी भूलों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

१५/४ ए पुष्पोत्तमनगर,
इलाहाबाद
१ जनवरी १९६१

—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

भूमिका

उपक्रम

प्राचीन भारतीय वाङ्मय अपने कलेसर में नितना ही विशाल एवं विविध है, अंतरंग दृष्टि से यह उतना ही गहन तथा गभीर है। मंत्रद्रष्टा अथवा क्रान्तदर्शी ऋषियों की अंतर दृष्टि तथ्य विज्ञान से अधिक तत्त्व चिन्तन पर ही केन्द्रित रही है। उनके चिन्तन का विषय चारों पुरुषार्थों में से अधिकतर 'धर्म एवं मोक्ष' ही रहा है। यद्यपि लौकिक जीवन का सम्बन्ध-सूत्र प्रायः 'अर्थ तथा काम' द्वारा ही संचालित होता है। फिर भी यहाँ पर धार्मिक अथवा आध्यात्मिक स्तर नितना मुखर है, उतना अन्यान्य नहीं। सामाजिक स्तर पर उसका अधिकांश एकांगी तथा एकदेशीय है। यदि कहीं पर दृष्टि-प्रसार लक्षित होता भी है तो यह कीर्त्तिधवल उत्तुंग शैल शिखरों पर ही अधिक टिका है, जनसबुल तमसावृत्त उपत्यकाओं में कम ही रम सका है जिस कारण, उनके आधार पर सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का विशद चित्र नहीं उभड़ पाता है। लौकिक जीवन का स्पष्ट परिचय हमें यहाँ पर नहीं मिल पाता, केवल इतस्ततः उसका आभास मात्र मिलता है। उनमें से ऋषि तथा देव वर्ग के अतिरिक्त मनुष्य का जो रूप भलरूना है वह अधिकतर व्यक्ति का न होकर प्रिभूति का है। जनसाधारण से भिन्न 'कुलीन एवं सभ्रान्त' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। शेष दस्यु, दैत्य तथा म्लेच्छादि कोटि के कहला कर हेय अथवा तिरस्कृत ठहराये जाते हैं। यही नहीं, सभी युगों में 'दास प्रथा' भी किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है।¹

ऐसे प्रथ जो लौकिक जीवन के अधिक निकट हैं बहुत थोड़ी सरया में सुलभ हैं। उनमें 'गाथा सप्तशती' का स्थान महत्त्वपूर्ण है, जहाँ मूलतः लोक जीवन का सहज हास विलास, आह्लाद विषाद तथा

रीति-नीति एवं आचार-विचार भी प्रचुर मात्रा में अभिव्यक्ति पा सका है। इसकी शेष बातें आनुपंगिक मात्र हैं जिनका पृथक् महत्त्व है।

ग्रंथपरिचय

‘गाथा सप्तशती’ एक संग्रह ग्रंथ है, यह उसके प्रथम शतक की तृतीय गाथा से स्पष्ट होते देर नहीं लगती। इसे फवियत्सल हाल ने फोटि गाथाओं से खनन करके प्रस्तुत किया था।^१ उक्त तृतीय गाथा में प्रयुक्त ‘हालेण’ शब्द का प्रयोग कतिपय टीकाकारों ने ‘शालेण’, ‘शालवाहनेन’ अथवा ‘शालिवाहनेन’ के रूप में किया है। ‘हाल’ के रूप में ‘शालवाहनेन’ अथवा ‘शालवाहन’ शब्द के प्रयोग संभवतः प्राकृत रूपान्तर के कारण हैं। यह भी संभव है ‘शालवाहन’ शब्द ‘सालाहण’ अथवा ‘हालाहण’ से ‘हाल’ में परिवर्तित हो गया हो।^२ यद्यपि स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी संदर्भगत ‘सालाहणिञ्जे’ का अर्थ ‘शालवाहन’ न करके ‘शलाघनीय’ करते हैं। ऐसा लगता है कि कतिपय टीकाकार इन तीनों ही नामों से परिचित रहे हैं, क्योंकि सन् १८७३ ईसवी में रावसाहव विश्वनाथ मण्डलीक द्वारा ‘गाथासप्तशती’ की जो प्रति मुलभ हुई उसका नाम ‘शालिवाहन सप्तशती’ ही पाया गया जिसका समथन कतिपय अन्य उपलब्ध प्रतियाँ की अन्तिम गाथा से भी हुआ और जिसमें किसी ‘कोश’ का उल्लेख पाया जाता है।^३

१. सप्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरमिअ ।

हालेण विरहआइं सालङ्काराणं गाहाणं ॥ १३ ॥

२. हारोवेणीदण्णे खट्टुग्गलियाइं तहय सालुत्ति ।

सालाहणेण गहिया दहकोटीहिं च चठगाहा ॥ (प्रबन्धचिन्तामणि)

३. केशव स्मृति अंक, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५६ अंक ३-४ संवत् २००८, पृ० २५३ ।

४. जर्नल अॅव् रायल एशियाटिक सोसायटी, यम्बई शाखा, खण्ड १०, संख्या २९, पृ० १२७-१३८ ।

५. ऐसो कइणामकिय गाहा पडिबद्ध यद्विआ मोओ ।

सत्त सलाओ समत्तो सालाहण विरहओ कोसो ॥ तथा—

दे१२ : Das Saptasatakam; Verse 409. १००

गाथा कोश

दण्डी ने सर्गबद्ध अथवा महाकाव्य के अंगीभूत जिन पद्य ग्रंथों का उल्लेख किया है उनमें कोश-ग्रंथ अद्वितीय है। उनके परवर्ती विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के छठे अध्याय में कोशग्रंथ का लक्षण इस प्रकार दिया है "कोशः श्लोक समूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः" अर्थात् कोश-काव्य के श्लोक परस्पर निरपेक्ष होते हैं।

उपर्युक्त 'कोश' के सन्दर्भ में हमारा ध्यान सर्वप्रथम कोटि गाथाओं वाले 'गाथाकोश' की ओर आकर्षित हो जाता है जिसका उल्लेख संस्कृत साहित्य तथा प्राकृत सुभाषितों में यत्र-तत्र पाया जाता है। वहाँ पर कवि एवं कोशकार के रूप में 'हाल' की स्पष्ट चर्चा है। बाणभट्ट^१, उद्योतन सूरि^२, अभिनन्द^३, राजशेखर^४, हेमचन्द्र^५, जिनप्रभ सूरि^६, मेरुतुंग^७ सोड्डुल^८ और राजशेखर सूरि^९ ने अपनी-अपनी रचनाओं में विशालकाय ग्रंथ 'गाथाकोश' की ओर इंगित किया है। इनकी रचनाएँ ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के बीच की हैं। इस प्रसंग में यह सोचने का अवसर मिल जाता है कि 'गाथाकोश' अथवा 'गाथा सप्तशती' एक की न होकर दो विभिन्न रचनाओं की संज्ञाएँ हैं। कारण, 'गाथा सप्तशती' की गाथाओं की संख्या सात सौ निर्धारित है, जबकि विशालकाय 'गाथाकोश' की गाथाएँ करोड़ की संख्या में हैं। उद्योतन सूरि द्वारा उल्लिखित 'गाथा कोश' और राजशेखर द्वारा वर्णित 'गाथा संग्रह' अभिन्न प्रतीत होते हैं। मेरुतुंग ने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में जिस 'गाथा कोश' की चर्चा की है वह विचारणीय

१. भविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहनः ।

विशुद्धजातिभिः कोपररनैरिव सुभाषितैः ॥ (हर्षचरित)

२. दलाल. काव्य मीमांसा, सम्पादकीय टिप्पणी, पृ० १२ ।

३. वहाँ ।

४. रामचरित ६।९३ एवं २२।१०० ।

५. कर्पूर मंजरी एवं सूक्ति मुक्तावली ।

६. अभिधान रत्नमाला; देसीनाम माला, वर्ग ८, गाथा ६१ ।

७. कल्प प्रदीप ।

८. उदय सुन्दरी ।

९. प्रबन्ध चिन्तामणि, अधःसातवाहन प्रबन्ध, पृ० १०-११ ।

है। सातवाहन ने चार लाख स्वर्ण मुद्राओं द्वारा 'गाथा चतुष्टय' को लेकर जिस 'सप्तशती गाथा प्रमाण' का 'संप्रह गाथा कोश' का शास्त्र तैयार कराया वह निश्चित रूप से 'चार गाथाओं' का संप्रह मात्र न होकर चार भागों वाला 'गाथा कोश' हो सकता है जिसका समर्थन जिन-प्रभ सूरि की इस उक्ति द्वारा हो जाता है कि 'गाथा कोश' चार भागों में बँटा था। परन्तु अभी तक किसी ऐसे संप्रह की प्राप्ति नहीं हो सकी है जिसके अभाव में भ्रमरश 'गाथा सप्तशती' को ही 'गाथा कोश' मान लेने की परम्परा चल पड़ी है। कृति एवं कृतिकार में नाम-साम्य होने के कारण यह भ्रान्त धारणा तथ्य रूप में स्वीकार कर ली गई है जिसकी चपेट में बड़े-बड़े टीकाकार तथा इतिहासज्ञ तक आ गए हैं और इसी को परवर्ती लेखकों तक ने दुहरा दिया है।

उलझन

फलस्वरूप 'गाथा सप्तशती' सातवाहन (प्रथम शताब्दी) की रचना मान ली गई है और उसके संदर्भगत उल्लेखों को तत्कालीन बतलाया जाने लगा है। कतिपय विद्वानों ने अन्तर्साक्ष्य के आधार पर शंका प्रकट करते हुए काल-निर्धारण सम्बंधी भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किया है। क्रीथ^१ ने यदि उसे दूसरी से पाँचवीं शताब्दी के बीच का बतलाया है तो वेबर^२ ने तीसरी तथा सातवीं शताब्दी के मध्य का। इसी प्रकार भाण्डारकर^३ ने यदि उसे छठी शताब्दी का पाया है तो मिराशी^४ ने पहली से आठवीं शताब्दी तक का होने का अनुमान किया है और नीलकण्ठ शास्त्री^५ ने दूसरी-तीसरी शताब्दी के पक्ष में अपना

१. चतुरविंशति प्रबन्ध, ज० रा० पृ० सो० चम्बई शाला, खंड १० पृ० १३५।

२. क्रीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २२४।

३. वेबर : Das Saptacataham Des Hala (1881) Introduction, पृ० xxii

४. भाण्डारकर डी० आर० : विक्रम संवत्, भाण्डारकर स्मारक ग्रंथ, पृ० १८९।

५. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, दिसंबर १९४७, खंड २३; पृ० ३००-१०

६. नीलकण्ठशास्त्री के० पृ० : ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, पृ० ९० एवं ३३०।

मत व्यक्त किया है। परन्तु किमी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व और अधिक उदापोह कर लेना अभीष्ट है।

रचयिता

‘गाथा सप्तशती’ के रचयिता पर विचार करते समय जब हम कोशकार सातवाहन की विशेषताओं पर ध्यान देते हैं तो कुछ स्पष्ट भेद लक्षित होने लगते हैं। कोशकार हाल का जैनमतावलम्बी होना प्रसिद्ध है, यद्यपि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, केवल जैन ग्रंथों में उनका उल्लेख मात्र है, जबकि ‘गाथा सप्तशती’ का रचयिता शैव है और यह बात मगलाचरण वाली गाथा से ही स्पष्ट होते देर नहीं लगती।^१ कोशकार हाल का उल्लेख जैन ग्रन्थों में तो पाया ही जाता है इसके अतिरिक्त यह कई जैन तीर्थों का उद्धारक तथा प्रतिपालक कहा गया है। सस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में ऐसे सन्दर्भ आते हैं जिनसे कोशकार सातवाहन दानी, धर्मात्मा, पराक्रमी, लोकहितैषी एवं शिष्या-नुरागी जान पड़ता है। उसकी तुलना भोज और मुज आदि से की गई है। घाणभट्ट ने तो उसे ‘त्रिसमुद्राधिपति’ की सजा से विभूषित किया है। हेमचन्द्र और मेरुतुग ने उसे नागार्जुन का शिष्य बतलाया है जो उसका समकालीन था। इसके विपरीत ‘गाथा सप्तशती’ का रचयिता हाल त्रिनासी रुचिवाला और प्राकृत प्रेमी शृंगारी कवियों का आश्रयदाता है। इसके अतिरिक्त ‘गाथा सप्तशती’ में जो रचनाएँ संकलित हैं उनका रचना काल भी विचारणीय है।

रचना काल

ग्रन्थ-रचना काल निर्धारित करते समय जब-हमारा ध्यान तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति की ओर जाता है तो हमें यह देख कर आश्चर्य होता है कि ग्रन्थ में बौद्धधर्म को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। इसके विपरीत यदि उसका कहीं उल्लेख हुआ भी है तो

१ पसुवङ्गो रोसाखणपट्टिमासकत गोरीमुइलद ।

यह सम्मान-सूचक कदापि नहीं है, जबकि बौद्धधर्म के लिए प्रथम शताब्दी उत्कर्ष-काल ठहराया जा सकता है। अशोक का शासन-काल बौद्धधर्म के प्रचार एवं प्रसार का युग रहा है ऐसे समय की रचना में उक्त धर्म का इस प्रकार का उल्लेख होना स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। इसके विपरीत वहाँ पर राधा, कृष्ण, हर, गौरी, गणेश, यामन, कालिका, सरस्वती और लक्ष्मीनारायण आदि की अधिक चर्चा है। वहाँ पर पौराणिक देवी-देवताओं का ही प्राधान्य है जो उस युग की प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं है। ऐसी दशा में यह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि 'गाथा सप्तशती' गुप्तकाल अथवा उसके बाद का संग्रह है जैसा कि श्री मथुरानाथ शास्त्री ने भी अपनी भूमिका में संकेत किया है।

बहिर्लोक के आधार पर यह विचारणीय है कि प्राचीन लेखकों द्वारा जहाँ-कहाँ 'गाथाकोश' का उल्लेख हुआ है, वहाँ पर 'गाथा-सप्तशती' का नाम नहीं आया है। इसी प्रकार संकलित गाथाओं की सात सौ संख्या का उनमें कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। दसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक यही स्थिति है। हेमचन्द्र, जिनप्रभ सूरि और राजशेखर सूरि आदि ने भी 'गाथाकोश' का ही नाम लिया है। चौदहवीं शताब्दी के मेरुतुंग ही सर्वप्रथम लेखक हैं जिन्होंने 'गाथा सप्तशती' का नामोल्लेख किया है। ऐसा लगता है कि 'गाथा सप्तशती' को यहीं से सातवाहन संकलित 'गाथाकोश' बतलाने की भूल आरंभ हुई है। मेरुतुंग ने जिस 'गाथा चतुष्टय' का उल्लेख किया है उससे 'गाथा सप्तशती' की संगति नहीं बैठती है। 'गाथा सप्तशती' को प्रथम शताब्दी का संग्रह मानने में एक अन्य बाधा भी है वह यह कि उसके बाद गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती' के रचना-काल बारहवीं शताब्दी तक किसी अन्य सप्तशती का पता नहीं चलता है। श्री मथुरानाथ शास्त्री ने अपनी भूमिका में यह दिखलाने का यत्न किया है कि 'आर्या सप्तशती' की कई गाथाओं पर 'गाथा सप्तशती' का स्पष्ट प्रभाव है। इससे यह अनुमान करने का और अधिक अयसर मिल जाता है कि 'गाथासप्तशती' दसवीं-बारहवीं शताब्दी के बीच का संकलन है।

१. कीरमुहसच्छेर्हि रेहइ धसुहा पलासकुसुमेहि ।

सुदस्य बलजयन्दन पदिर्हि व भिङ्गुसंवेहि ॥ ३१८ ॥

पाठभेद

उत्तर तथा दक्षिण भारत में 'गाथा सप्तशती' की कई प्रतियाँ उपलब्ध बतलायी जाती हैं। वेबर ने प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पाठों को शोधने के लिए नियम (Vorwort, p. XXVII) बनाया जिसके अनुसार चार सौ तीस गाथाओं के पाठ परस्पर मिलान के बाद निर्धारित हुए, किन्तु मूल 'गाथा सप्तशती' की संख्या इससे कहीं अधिक है। कवियत्सल हाल ने कोटि गाथाओं में से सात सौ गाथाओं को चुन कर संकलित किया अथवा फरवाया था। अतएव मूलतः सात सौ से कम गाथाएँ नहीं होनी चाहिए।

क्रमभेद

'गाथा सप्तशती' की उपलब्ध प्रतियों की गाथाओं के क्रम में एकरूपता नहीं है। प्रतिलिपि करने अथवा फराने वालों ने मनमानी रीति से उन्हें क्रमबद्ध कर दिया है। कहीं-कहीं अन्यान्य प्रचलित गाथाओं तक का उनमें समावेश किया गया मिलता है। वेबर वाले संस्करण की उत्तरार्द्ध वाली गाथाओं में से कई परवर्तिकालीन हैं। लोकप्रिय गाथाओं के मूल रूप में हस्तलिखित न होने के कारण पाठभेद के साथ-साथ क्रमभेद के भी अधिक अवसर उपस्थित हुए हैं।

टीकाएँ

आफ्रेट के अनुसार 'गाथा सप्तशती' की लोकप्रियता का पता उसकी टीकाओं की संख्या से चल जाता है। कुलनाथ, गंगाधर, पीतांबर, प्रेमराज, भुवनपालन और साधारण देव ऐसे ही टीकाकार हैं। इनके अतिरिक्त पीतांबर की टीका में भट्ट, चैतन्य, कुलपति, भट्टराघव और भोजराज के नामोल्लेख हैं। डॉ० भाण्डारकार ने किसी आजड का टीकाकार रूप में नाम गिनाया है।¹ पंजाब विश्वविद्यालय

1. Report on the Search for Sanskrit Manuscripts during the Years 1887-91, p. 26.

के पुस्तकालय में माधवराज मिश्र लिखित 'तात्पर्य दीपिका' नामक हस्तलिखित टीका संगृहीत है।^१ पंडित मथुरानाथ शास्त्री की टीका आधुनिक है। गगाधर तथा पीतांबर की टीकाएँ पूर्ववर्ती हैं चिनका उल्लेख शास्त्री जी ने किया है। इनमें से भुवनपाल जैन और प्रेमराज सहगल (सहगल) खत्री हैं, क्षत्रिय नहीं जैसा कि अन्यत्र कहा गया है। वेबर के अनुसार 'गाथा सप्तशती' को सात प्रतियाँ और तेरह टीकाएँ उपलब्ध हैं।^२ 'व्यङ्ग्य सर्वकपा' एक भिन्न टीका है।

गाथा सप्तशती के कवि

'गाथा सप्तशती' की सभी प्रतियों में संकलित गाथाओं में एक रूपता नहीं है। चार सौ तीस गाथाओं में ही समानता है, शेष में विरिधता है।^३ इनके रचयिताओं के भी उल्लेख प्राय मिल जाते हैं। फिर भी कई प्रतियों में कवियों के नाम परस्पर नहीं मिलते। भुवनपाल की टीका में इन रचयिताओं की संख्या ३८ तक पहुँच जाती है। बङ्गाल से ताडपत्र पर लिखित एक खण्डित प्रति प्राप्त हुई है जिसमें चार सौ तीस गाथाएँ संकलित हैं और जो सभी उपलब्ध प्रतियों में एक सी है। इस प्रकार लगभग दो सौ सत्तर अथवा इनसे अधिक गाथाओं में ही हेर फेर है।

कवियों की नामावली पर विचार करते समय यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि इनमें से अधिकांश का समय प्रथम शताब्दी के बाद का है और यह उन चार सौ तीस मूल गाथाओं के कवियों पर भी लागू होता है। इसलिए यह मानने का सबल कारण है कि मूल में ही इन कवियों की रचनाओं को संकलित कर लिया गया है। इससे काल निर्णय करने में भी सहायता मिलती है। मूल 'गाथा सप्तशती'

१ जगदीश लाल Gaitha Saptasati, Introduction, p 15

२ वेबर Das Saptacatakam Des Hala, XXVIII ~ Indis her Stud en XVI p 9

३ वेबर Das Saptacatakam Des Hala (1881) p XXVIII
मिराशी The Date of Gatha Saptasati Ind an Historical Quarterly, Dec 1947

के कतिपय रचयिताओं के कालक्रमानि पर यहाँ विचार कर लेना उपयोगी है जो इस प्रकार है—

(१) प्रवरसेन : भुवनपाल की टीका में इन्हें प्रवर, प्रवररान अथवा प्रवरसेन कहा गया है। पीतांबर की टीका में भी इनका उल्लेख है। यही बात निर्णयसागर प्रेस वाले संस्करण में पायी जाती है। इन्हें प्राकृत काव्य 'सेतुबन्ध' और 'राण बहो' का रचयिता बतलाया जाता है। बाण, दण्डी तथा आनन्दवर्द्धन के उल्लेखों के आधार पर इनका समय सातवीं शताब्दी से पूर्व होना चाहिए। यदि इन्हें हम वामादक वंशीय द्वितीय प्रवरसेन मान लें तो यह समय पाँचवीं शताब्दी का हो सकता है जो कश्मीर नरेश प्रवरसेन का समसामयिक भी कहला सकता है।

(२) सर्वसेन : भुवनपाल और पीतांबर की टीकाओं में इनका नाम मिलता है। दण्डी ने 'अग्रन्ति मुन्दरी' में प्राकृत काव्य 'हरि विजय' के रचयिता को राजा बतलाया है। यह वामादक वंशीय वत्सगुल्म शाखा का संस्थापक हो सकता है जो प्रथम प्रवरसेन के पुत्रों में से एक था। इसका उल्लेख इसके पुत्र द्वितीय विन्ध्यशक्ति के बसीम ताम्रपत्र तथा अजन्ता की १६ सरयक गुफा में पाया जाता है। सर्वसेन का समय चौथी शताब्दी का द्वितीय चरण है।

(३) मान . मिराशी इन्हें राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक मानाङ्क मानते हैं जिनका समय चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का मध्य है। सतारा जिला का मान अथवा मानपुर इस घराने का मुख्य स्थान है। कर्नल टॉड को मोरी राजा मान का एक शिलालेख मानसरोवरल मील (चित्तौड़) से भी प्राप्त हुआ था।

(४) देव अथवा देवराज . इसे मिराशी राष्ट्रकूट वंशीय मानाङ्क का पुत्र बतलाते हैं जिसके दरबार में कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दौत्य कार्य करने के लिए भेजा था। इस राजा का उल्लेख राष्ट्रकूट वंश की दो ताम्रलिपियों में हुआ है। ये दोनों पिता पुत्र मुक्तकथाव्य के रचयिता तथा प्राकृत कविता के प्रेमी थे। 'देसीनाममाला' में देसी नामों के किसी कोश की धर्चा है जो देवराज कृत बतलाया जाता है। नवीं-दसवीं शताब्दी के शिलालेखों में भी इस नाम के अन्यान्य राजाओं के उल्लेख पाये जाते हैं।

(५) वाक्पतिराज : यह महाराष्ट्रीय प्राकृत काव्य 'गउडवहो' तथा 'मधुमथन प्रिजय' का रचयिता समझा जाता है। इसकी चर्चा आनन्द-वर्द्धन, अभिनवगुप्त और हेमचन्द्र ने भी की है। कन्नौज के प्रतिहार राजा यशोवर्मन का यह राजकवि था और 'वाक्पतिराज' परमार राजा मुंज का एक विरुद्ध भी था। भरभूति का यह समसामयिक है। यह आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का ठहरता है।

(६) कर्ण अथवा कर्णराज : अमोला जिले के तरहला ग्राम से इस नाम के कई सिक्के मिले हैं। मिराशी के अनुसार यह सातवाहन वंशीय एक राजा है जिसका समय तीसरी शताब्दी का द्वितीय चरण है।

(७) अघन्तिवर्मन : यह नवीं शताब्दी का प्रसिद्ध कश्मीर नरेश है जिसके दरबार में 'धन्यालोक' के प्रखेता आनन्दवर्द्धन रहते थे।

(८) ईशान : यह बाणभट्ट का मित्र तथा समसामयिक प्राकृत का प्रसिद्ध कवि था जिसका नामोल्लेख 'कादम्बरी' में पाया जाता है। इसका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

(९) दामोदर : यह आठवीं शताब्दी के कश्मीर नरेश जयपीड का प्रधान मंत्री हो सकता है जो 'कुट्टनीमतम्' का रचयिता बतलाया जाता है। उसमें 'स्वामली' की कथा और एक पद्य पाया जाता है।

(१०) मयूर : बाणभट्ट ने इसे प्राकृत भाषा का कवि और अपना स्वसुर बतलाया है। इसलिए इसका समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए।

(११) बप्प स्वामी : यह प्रसिद्ध कवि तथा जैन आचार्य समझा जाता है जो प्रतिहार राजा नाग वा लोक अथवा द्वितीय नागभट्ट का मित्र एवं समसामयिक था। चन्द्रप्रभ सूरि की रचना 'बप्पभट्टि चरित' (प्रभावक चरित) में इसका उल्लेख मिलता है। इसका समय नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए।

(१२) वल्लभ अथवा भट्ट वल्लभ : आनन्दवर्द्धन कृत 'देवीशतक' की टीका में कैयट ने अपने को वल्लभदेव का पौत्र कहा है जिसका समय दसवीं शताब्दी का चतुर्थ चरण है। अपनी रचना 'भिक्षाटन' काव्य में कवि ने पूर्ववर्ती कवि कालिदास तथा बाणभट्ट की चर्चा की है। इस प्रकार इसका समय आठवीं-नवीं शताब्दी हो सकता है।

(१३) नरसिंह : शाङ्गधर पद्धति एवं 'धन्यालोक' की टीका में इस कवि के कई श्लोकों का पता चलता है। यह सोलंकी राजा भी हो सकता है जो धारवार जिले का निवासी था। दसवीं शताब्दी के कवि पंप रचित 'विक्रमार्जुन विजय' में इय वंश के दस राजाओं का उल्लेख मिलता है। इस नामावलि में नरसिंह नामक दो राजा हैं। कवि पंप द्वितीय नरसिंह का समसामयिक था। कन्नौज नरेश यशोवर्धन का उपनाम 'नरसिंह' कहा गया है।

(१४) अरिवेसरी : यह नरसिंह का पुत्र समझा जाता है। द्वितीय अरिवेसरी कवि पंप का समसामयिक है।

(१५) वत्स, वत्सराज अथवा वत्स भट्टी : नवीं शताब्दी में कन्नौज के गुर्जरप्रतिहार वंशीय वत्सराज नामक राजा रहा है। पाँचवीं शताब्दी का 'मदसोर प्रशस्ति' का रचयिता वत्सभट्टी इन गाथाओं का रचयिता हो सकता है। इस अधि के भीतर इस नाम के कई व्यक्ति अथवा राजा हुए हैं जो हर हालत में परवर्ती कालीन हैं।

(१६) आदि वराह : नवीं शताब्दी की ग्वालियर प्रशस्ति में प्रतिहार राजा भोजदेव का उपनाम 'आदि वराह' दिया गया है। बहुत संभव है कि यही वह कवि है।

(१७) माउरदेव : स्वयंभू प्राकृत साहित्य का प्रख्यात जैन लेखक है जो अपने को भापा-कवि माउरदेव का पुत्र बतलाता है। 'पउम चरिउ', 'पंचमी चरिउ' तथा 'रिद्धिनेमि चरिउ' इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इसके एक व्याकरण की चर्चा मिलती है जो न तो प्रसिद्ध है, न उपलब्ध। प्राकृत भापा के छंद पर इसकी किमी रचना का पता नहीं चलता है। इसका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी संभव जान पड़ता है।

(१८) विअह (विअहइन्द्र) : स्वयंभू के ग्रंथों में प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवि रूप में इनका उल्लेख मिलता है। इनका समय छठी-सातवीं शताब्दी हो सकता है।

(१९) धनञ्जय : इस नाम के दो कवि विख्यात हैं। एक मालवा नरेश मुंज परमार का दरबारी कवि था जो भोज तथा सिन्धुल का समसामयिक था। एक अन्य धनञ्जय नामक लेखक का संस्कृत श्लोक 'धवला' टीका में उद्धृत है जो धनञ्जय 'नाममाला' का ही है। यह संस्कृत का महाकवि है जिसका 'द्विसधान' महाकाव्य 'काव्यमाला' में

प्रकाशित है। 'नाममाला' कोश प्राकृत का नहीं, संस्कृत का कोश है।^१ धवला टीका आठवीं शताब्दी की है। इस प्रकार ये दोनों कवि छठीं से दसवीं शताब्दी के बीच के हैं।

(२०) कविराज : कन्नौज के विख्यात कवि राजशेखर का विरुद्ध है।^२ राजशेखर प्राकृत का कवि तथा विद्वान था। 'कर्पूर मञ्जरी', 'काव्य मीमांसा' तथा 'सूक्तिमुक्तावली' आदि इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इसका समय नवीं-दसवीं शताब्दी है।

(२१) सिंह : नवीं शताब्दी के प्रथम चरण में गुहिलोत वंशीय इस नाम का राजा था। दसवीं शताब्दी के शक्ति कुमार के आहाड़ से उपलब्ध एक शिलालेख^३ में इसकी प्रथम भर्तृपद के पुत्र रूप में चर्चा है। 'चाटसू प्रशस्ति'^४ में इसे ईशान का अग्रज कहा गया है।

(२२) अमित (गति) : यह संस्कृत भाषा का कवि और माथुर संघ का जैन मुनि है।^५ इसके संस्कृत ग्रंथ प्राकृत के संस्कृत रूपान्तर मात्र हैं। मालवा के मुंज परमार के दरबार में इसे सम्मान प्राप्त था। इसका समय दसवीं शताब्दी है।

(२३) माधवसेन : यह अमित गति का गुरु है। परन्तु इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। संभव है स्फुट रचनाएँ करता रहा हो।

(२४) शशि प्रभा : परमार राजा मुंज तथा उसके उत्तराधिकारियों के दरबारी पद्मगुप्त ने अपनी रचना 'नवसाहसांक चरित' में राजा सिन्धुल की रानी शशिप्रभा का उल्लेख किया है। संभव है यही वह कवयित्री हो।

(२५) नरबाहन : मेवाड़ के गुहिलोत वंशीय राजा सिंह के उत्तराधिकारियों में यह नाम पाया जाता है। इसका दसवीं शताब्दी का एक

१. स्वर्गीय नाथूराम प्रेमी द्वारा डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल को लिखा गया पत्रांत जो नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५७, अंक २-३, संवत् २००९ में पृ० २७३-७४ छपा है।

२. दलाल : काव्यमीमांसा की भूमिका, पृ० ३२।

३. इण्डियन ऐजिटकेरी, खण्ड ३९, पृ० १९१।

४. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड १२, पृ० १३-१७।

५. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८३, २५७

शिलालेख उदयपुर के पास एकलिंग स्थान से मिला है।^१ आहाड़ के शिलालेख में इसे शालिवाहन का पिता सूचित किया गया है।

उपर्युक्त विवरण द्वारा 'गाथा सप्तशती' का रचना-काल निर्धारित करने में यथेष्ट सहायता मिलती है और यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि वर्तमान रूप में 'गाथा सप्तशती' वस्तुतः 'गाथा कोश' से भिन्न कृति है। इस प्रकार इसका परवर्ती कालीन होना भी निश्चित हो जाता है। फिर भी यह जानना शेष रह जाता है कि यह सातवाहन वंशीय कोशकार हाल से भिन्न हाल कौन और कहाँ का है जो शैव राजा भी है।

निष्कर्ष

'गाथा सप्तशती' का सकलनकर्त्ता निश्चय ही कुशल करि अयया काव्य मर्मज्ञ रहा होगा। ध्वन्यालोक, तल्लोचन, काव्य प्रकाश तथा सरस्वती कण्ठाभरण आदि ग्रंथों में 'गाथा कोश' की कई गाथाओं को उद्धृत किया गया मिलता है। इससे पता चलता है कि यह काव्य-प्रेमियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। ऐसा लगता है कि उसके अधिकतर शृंगारी गाथाओं का चयन करके यह सग्रह ग्रंथ तैयार किया गया है जिसकी पुष्टि तीसरी गाथा द्वारा हो जाती है।^२ परवर्ती टीकाकारों ने गाथा कोशकार 'हाल' (सातवाहन, शालवाहन) और 'गाथा सप्तशती' के संकलनकर्त्ता को अभिन्न मानकर दोनों की ही गाथाओं को हाल नाम से सम्बद्ध कर दिया है। यद्यपि अपवाद स्वरूप 'शाल' अथवा 'शालिवाहन' पाठ भी मिल जाते हैं।

पीताबर की टीका में कई स्थलों पर हाल के स्थान पर शालवाहन कर दिया गया है जो गाथाएँ गाथा कोशकार हाल सातवाहन

१ जनरल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, चम्बई शाखा, खंड २२, पृ० १६६-६७।

२ सप्त सताह् कइवच्छलेण कोडीअ मन्त्रारम्भ।

हालेण विरह्आह् सालाद्वाराणं गाहाण ॥ १।३ ॥

सप्तशत रूपान्तर—

सप्तशतानि कविवन्सलेन कोटेमन्वे।

हालेन विरचितानि सालद्वाराणा गाथानाम् ॥

की न होकर 'गाथा सप्तशती' के संकलनकर्ता शालिवाहन की हो सकती हैं। इस टीका में जिन कई गाथाओं का रचयिता 'शालिवाहन' है वह निर्णय सागर प्रेस वाले संस्करण में 'हाल' द्वारा रचित नहीं बतलाया गया है।^१ इससे यह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि गाथाओं के रचयिताओं का नाम देने में टीकाकारों से भूलें हुई हैं। कवियों की नामावली में भी पाठभेद है और उनकी गाथाओं में भी क्रमभेद हुआ है तथा कई गाथाओं में कवियों के नाम तक नहीं हैं। फिर भी 'गाथा कोश' की कई गाथाएँ 'गाथा सप्तशती' में समाविष्ट हैं। प्रथम शतक की प्रारंभिक तीन गाथाएँ और अन्य शतकों के आदि एवं अन्त की अथवा कुछ अन्य गाथाएँ 'गाथा सप्तशती' के 'शालिवाहन' की हैं जिनका 'शालिवाहन' पाठान्तर उपलब्ध है। शेष गाथाएँ जो हाल नाम के साथ अंकित हैं वे दक्षिणात्य सातवाहन 'हाल' की रचनाएँ हैं जो 'गाथा कोश' से ले ली गई जान पड़ती हैं। 'गाथा सप्तशती' में सातवाहन 'हाल' के राजकवि 'पालित' तथा 'गुणाढ्य' की भी कुछ गाथाएँ शामिल हैं। यह उल्लेखनीय है कि 'गाथा सप्तशती' में कहीं भी 'हाल' का 'सातवाहन' रूप में उल्लेख नहीं मिलता।

गाथाओं में उल्लिखित त्रिपय एवं शब्दादि से उनके रचयिता का दक्षिणात्य अथवा महाराष्ट्री होने का अनुमान होता है। परन्तु इसके विपरीत अन्य गाथाओं में यमुना तथा मानसरोवर का भी नामोल्लेख हुआ है। यही नहीं अन्य कई ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनका उत्तरी भारत की रीति-नीति से भी साम्य है। इसलिए यह भी ध्यान देने योग्य है।

परन्तु दसवीं शताब्दी का शैवमतावलम्बी शालिवाहन नामक राजा जिसके सरक्षण में 'गाथा सप्तशती' का संकलन हुआ है वह मेवाड़ का गुहिलोत्त वंशीय राजा नरवाहन का पुत्र शालिवाहन हो सकता है। उसका शासन-काल ६७२-७७ ईसवी के आस-पास है जिसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी शक्तिधुमार था।^२ मेवाड़ का राजवंश

१. मिराशी : The Date of Gatha-saptasti, Indian Historical Quarterly, 1947.

२. गौरीशंकर हीराचन्द भोष्ठा : राजपूताने का इतिहास, खण्ड १, पृ० ४३०-३३ ।

परम्परा से ही पाशुपत शैवमत का अनुयायी है। राजा शालिवाहन विलासी प्रकृति का था और उसका अंत भी दुश्चरित्रता के ही कारण हुआ। इस प्रकार राजकुल में इसका स्थान गौण बन गया और उसका उल्लेख केवल ६७७ ईसवी की आहाड अथवा पेटपुर प्रशस्ति में ही हो सका। आवू, चित्तौड़ तथा रणपुर की प्रशस्तियों की वंशावली में उसका नाम तक नहीं मिलता।

गाथा कोशकार सातवाहन हाल के नौ शताब्दियों बाद मेवाड़ नरेश शालिवाहन का ही नाम आता है जिसकी राजधानी आहाड अथवा आड (प्राकृत में आढ्य) रही है। इसका ध्वशाश्रय अब भी उदयपुर के पास देखा जा सकता है। इसी समय के आस-पास मालवा नरेश परमार राजा मुंज ने आक्रमण द्वारा आहाड को ध्वस्त कर चित्तौड़ को हस्तगत कर लिया था।^१ इसी आहाड के आधार पर इन नरेशों को आहाडिया कहने की परम्परा थी। यह स्थान तीर्थ-स्थान भी रहा है। बहुत दिनों तक दोनों शालिवाहन (गुहिल तथा सातवाहन) भ्रमण एक ही समझे जाते रहे जिसका निराकरण स्वर्गीय ओम्ना जी ने किया था। इस भ्रान्ति को पुष्ट करने में जिनप्रभ सूरि तथा राजशेखर सूरि ने भी योगदान दिया था। परन्तु जिनप्रभ सूरि यह लिखना भी नहीं भूले कि यदि कहीं कोई असंभाव्य बात आ गई हो तो उसका दायित्व उन पर नहीं, 'पर-समय' पर है क्योंकि जैन कभी असंगत बातें नहीं कहते।^२

फिर भी शका हो सकती है कि मेवाड़ में प्राकृत भाषा का प्रचलन था भी अथवा नहीं। तथ्य यह है कि गुप्त साम्राज्य के अघसान के बाद सातवीं से दसवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत में प्राकृत का प्रचार अपने उत्कर्ष पर था। ग्यारहवीं शताब्दी के राजा भोज ने अपनी रचना 'सरस्वती कण्ठाभरण' में लिखा है कि "आह्यराज के राज्य

१. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड १० श्लोक १०, पृ० २०।

२. अत्र च यदमग्भाष्यं तत्र परसमय एव।

मन्तव्यो हेतुर्यथासङ्गतवाग्ज्जो जैन ॥

मे कौन प्राकृतभाषी तथा साहसक के समय मे कौन संस्कृतभाषी नहीं हुआ ?”^१

आढ्यराज को लेकर विद्वानों मे काफी मतभेद रहा है और घाण फा एक श्लोक टीकाकार शंकर के कारण विजादास्पद बना रहा । किन्तु डा० हाजरा ने अपने एक लेख द्वारा इसका निराकरण कर दिया ।^२ उनके अनुसार बाण ने सम्राट् हर्ष के लिए आढ्यराज का प्रयोग किया है । अतएव प्राकृत-प्रेमी आढ्यराज शालिवाहन ही हो सकता है जिसका उल्लेख ‘सरस्वती कण्ठाभरण’ मे हुआ है । इस प्रकार यह आढ्यराज मेवाड़ नरेश गुहिल शालिवाहन का ही विद्द होना चाहिए । सातवाहन हाल के लिए आढ्यराज कहा गया कहीं नहीं मिलता । भाषा-विज्ञान की दृष्टि से प्राकृत एवं अपभ्रश के प्रभाव तथा प्रचलन के कारण ‘श’ का ‘ह’ उच्चारण हो जाना सम्भव है । अतएव शाल का हाल हो जाना असंभाव्य नहीं है । श्री मिट्टन लाल माथुर ने अपने एक निबन्ध मे इन प्रश्नों पर विस्तार-पूर्वक विचार किया है । उनका निष्कर्ष है कि “दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे किसी प्राकृत-प्रेमी शैव राजा ने छह अन्य दरबारी कवियों की सहायता से अपनी शृंगारी मनोवृत्तियों के अनुकूल प्राचीन एवं समकालिक प्राकृत कवियों की रचनाओं मे से ७०० मुक्तक गाथाएँ चुनकर ‘गाथा सप्तशती’ या ‘शालिवाहन सप्तशती’ नाम से पहली बार संगृहीत की ।”^३

६

प्रथम प्रकाशन

{ ‘गाथा सप्तशती’ को सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय वेबर को है । सन् १८७० ईसवी मे उन्होने लिपिजग से *Uber Das Saptacatalam Des Hala* नामक ग्रंथ प्रकाशित कराया था जिसमे तीन

१ केऽभूवत्ताढ्यराजस्य राज्ये प्राकृत भाषिण ।

काले श्री साहसकस्य के न संस्कृतवादिन ॥

२ डॉ० आर० सी० हाजरा : इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, जून १९४९
पृ० १२६-२८ ।

३ नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५६ अङ्क ३-४ सपत् २००८, पृ० २७४ ।

सौ सत्तर गाथाएँ संगृहीत थीं। सन् १८७२-७४ ईसवी में और अधिक गाथाएँ उपलब्ध हुईं जिन्हें उन्होंने *Zeitschrifter Deutschen Morgen Landischen Gasellschaft* (26 : pp 735 foll) में प्रकाशित कराया। परन्तु 'गाथा सप्तशती' की सम्पूर्ण प्रति सन् १८८१ ईसवी में लापजग से ही प्रकाशित हुई जिसका नाम *Das Saptacatakam Des Hala* था। उन्होंने पुस्तक को शुद्ध बनाने के लिए अनेक हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया था और साधारणदेव की 'मुक्तावली' नामक टीका की 'ध्रज्या पद्धति' से काम लिया था तथा कुलनाथ, गंगाधर एवं पीतांबर की टीकाओं से भी सहायता ली थी। 'ध्रज्या पद्धति' उत्तरकालीन है। 'वज्जालग्न' में कहा गया है कि—

एरुथे पत्थावे जत्थ पढिजन्ति पउर गाहाओ ।

तं रलु वज्जालग्नं वज्ज त्ति थ पद्धई भणिया ॥

'ध्रज्या' अर्थात् विषय क्रम से संग्रह करने की पद्धति। डॉ० थामस ने 'करीन्द्र वचन समुच्चय' की प्रस्तावना में वज्जा, ध्रज्या और वर्ग को समानार्थी शब्द माना है।'

भारतीय संस्करण

परन्तु भारतवर्ष में 'गाथा सप्तशती' को सर्वप्रथम सन् १८८६ ईसवी में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित कराने का श्रेय 'काव्यमाला' सम्पादक पण्डित दुर्गा प्रसाद शर्मा तथा पणशीकर शास्त्री को है। यह संस्करण निर्णय सागर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'काव्यमाला' (क्रमांक २१) में मुद्रित हुआ था जिसमें गंगाधर भट्ट की 'भारतेश प्रकाशिका' टीका भी सम्मिलित है। इसे तैयार करने में चार हस्तलिखित प्रतियों की सहायता ली गई थी जिनके आधार पर पाठभेद भी दे दिया गया है। सम्पादक द्वारा संस्कृत प्रस्तावना के अतिरिक्त अकारादि प्रम से गाथाओं की अनुक्रमणिका भी दी गई है। सन् १९११ ईसवी में इसकी द्वितीयावृत्ति हुई थी। पंडित मधुरानाथ शास्त्री ने इसका प्रकाशन संस्कृत छाया, विस्तृत प्रस्तावना तथा टीका सहित निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से कराया था जिसकी तृतीयावृत्ति

सन् १९३३ ईसवी में हुई थी। इस सस्करण के बाद पञ्जाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में संगृहीत हस्तलिखित प्रति की सहायता लेकर जगदीशलाल जी ने पहले ओरियंटल कालेज मेगजीन में और तदनन्तर सन् १९४० ईसवी में लाहोर से हारिताम्र पीतावर की टीका सहित पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया था जिसके आरम्भ में विवेचनात्मक प्रस्तावना तथा अन्त में अकारादि क्रम से गाथासूची सम्मिलित है।

यह संयोग की बात है कि सन् १९४६ ईसवी में लगभग एक साथ ही कलकत्ता से श्री राधागोविन्द बसाक द्वारा बंगला सस्करण और पुणे से श्री सदाशिव आत्माराम जोगलेकर द्वारा मराठी सस्करण सुसपादित होकर प्रकाशित हुए हैं। निस्सन्देह आज तक हिन्दी पाठकों के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का कोई हिन्दी सस्करण सुलभ न होना चिन्त्य रहा है।

भाषा

महाराष्ट्रीय प्राकृत में 'गाथा सप्तशती' की रचना हुई है। प्राकृत भाषा के कई रूप हैं जो देशकालादि के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं। 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमि साधु (१०६८ ईसवी) ने "प्रकृतेति । सकलजगज्जन्तूना व्याकरणादिभिरनाहित सस्कार सहजो वचन व्यापार प्रकृति । तत्रभव सैव वा प्राकृतम् ।" द्वारा प्राकृत का परिचय दिया है। इस प्रकार प्राकृत सस्कृत के सस्कार से शून्य तथा व्याकरण के नियन्त्रण से मुक्त सामान्य जनता की स्वभाज सिद्ध बोलचाल की भाषा है। परन्तु सस्कृत तथा प्राकृत का परस्पर अभ्रभावित रहना स्वाभाविक नहीं है। 'प्राकृत सत्तीवनी' में कहा गया है कि "प्राकृतस्य तु सर्वमेव सस्कृत योनिः ।" फिर भी डॉ. गुणे इससे सहमत नहीं जान पड़ते, वे दोनों को पृथक् पृथक् मानते हैं।^१ वररुचि प्राकृत भाषा का आदि व्याकरणकार है जो पाणिनि का परवर्ती अथवा समसामयिक है।^२ उसने महाराष्ट्रीय, पेशाची शौरसेनी एव मागधी इन चार भाषाओं पर विचार किया है। महाराष्ट्रीय प्राकृत के

१ An Introduction to Comparative Phology, p 161

२ डॉ० केतकर प्राचीन महाराष्ट्र, पृ० ३१४ ।

मूल स्थान को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। दण्डी के अनुसार "महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्ट प्राकृत विदुः।" इस दिशा में महत्त्वपूर्ण सबैत है।^१ प्राकृत भाषा में भी तत्सम, तद्भव एवं देशी शब्दों का मिश्रण मिलता है।

प्राकृत भाषा के माधुर्य की बड़ी प्रशंसा की गई मिलती है। 'वज्रालम्ब' में जयवल्लभ ने निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है—

देसियसद्दपलोदृ महुरक्करछन्दसठिय ललिय ।

कुडवियडपायडत्थ पाड्अकव्व पढेयव्व ॥ २८ ॥^२

इसी प्रकार राजशेखर ने संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की तुलना करते हुए 'कर्पूरमञ्जरी' (निर्णयसागर प्रेस संस्करण १८) में लिखा है कि—

परुसा सक्रअवधा पाउअवधो वि होइ सउमारो ।

पुरिसमहिलाणं जेत्तिआमहतर तेत्तिअमिमाण ॥^३

वाक्यपति राजा के निम्नलिखित उद्गार भी ध्यान देने योग्य हैं—

णवमत्थ दसण सनिवेश सिसिराओ बन्ध रिद्धीओ ।

अरिरलमिणमो आ भुवन बन्धमिह णर पययम्मी ॥

सयलाआ इम वाया विसन्ति एत्तो य रोन्ति वायाओ ।

रोन्ति समुद्दचिय रोन्ति सायराओच्चिय जलाइ ॥

हरिस विसेसो वियसावओ य मउलावओ य अच्छीण ।

इह बहि हुचो अन्तो मुहो य हिययस्स विप्फुरइ ॥

इतने पर भी प्राकृत भाषा की श्रेष्ठता में भला किसे सन्देह रह सकता है ? किसी अनात कवि की उक्ति है कि—

१ घांगे Malabar Language and Literature Journal of the University of Bombay Vol IV Part VI p 31

२ संस्कृत रूपांतर—

देशीशब्दपर्यस्त मपुराक्षरच्छन्द सन्धित ललित ।

स्फुटविग्रहप्रकटार्थ प्राकृतकाव्य पटनीय ॥

३ संस्कृत रूपांतर—

पुरुषा संस्कृतगुम्फा प्राकृतगुम्फोऽपि भवति सुकुमार ।

पुरुषमहिष्ठाना यावद्विद्वान्तर तेषु तावत् ॥

अभिज्ञं पाञ्ज कथं पठितं सोऽं अ जे ण आपन्ति ।

कामस्स तथा तन्ति कुणन्ति ते कथं ण लज्जन्ति ॥

अर्थात् 'जिसने अमृत सदरा प्राकृत काव्य का पठन अथवा श्रवण करना नहीं जाना वह कामशास्त्र की तत्व-पिन्ता में प्रवृत्त होते लज्जा का अनुभव क्यों नहीं करता ?'

फिर भी यह लक्ष्य करने की बात है कि नानाघाट एवं नासिक के शिलालेखों में व्यवहृत प्राकृत, 'गाथा सप्तशती' के प्राकृत जैसी नहीं है। फदाचित् यह भेद शैलीभेद के कारण है। इसका एक अन्य कारण कालभेद और स्थानभेद भी हो सकता है। सोलहवीं शताब्दी के संत कवि रजब जी ने प्राकृत और संस्कृत के विषय में कहा है—

धीज रूप कळु और था, वृक्ष रूप भया और ।

त्यो प्राकृतें संस्कृत, रजब समझा वयोर ॥ ७४ ॥'

छन्द

'गाथा सप्तशती' का 'गाथा' शब्द छन्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यों 'गाथा' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य से लेकर बौद्धादि साहित्य तक में विभिन्न अर्थों में किया गया मिलता है। पिंगलाचार्य ने 'अत्रानुक्तं गाथा' कहा है। हलायुध "अत्रशास्त्रे नामोद्देशेन यत्रोक्तं छन्दः प्रयोगे च दृश्यते, तद्गाथेति मंतव्यम्" कहते हैं। रत्नोत्तर सूरि ने गाथा का लक्षण इस प्रकार बतलाया है।

सामन्नेणं चारस अट्टारस चार पत्तरमत्ताओ ।

कमसो पायचउके गाहाए हुंति नियमेणं ॥

गाहाइ दले चउचउमत्तंसा सत्त; अट्टोमदुकलो ।

एयं धीयदत्ते विदु नवरं छट्टोइ एकगलो ॥

कोलश्रुत गाथा को प्राकृत में संस्कृत से आया बतलाते हैं।^१ डॉ० गोरे ने 'वज्रालम्ब' की प्रस्तावना के सातवें पृष्ठ पर गाथा का विवरण दिया है। अन्यत्र प्राकृत गाथा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

१. परशुराम चतुर्वेदी : संतकाव्य, प्रथम संस्करण, किताब महल,

इलाहाबाद, पृ० ३८१ ।

२. Sanskrit and Prakrit Poetry, Asiatic Researches x, p 400.

पठम बारह मात्रा, वीए अठारएहि सजुत्ता ।
जह पठमं तह तीअ, दह पञ्चविहसिआ गाहा ॥^१

संस्कृत छन्दशास्त्र में आर्या के लिए जो नियम निर्धारित हैं वह भी इसी प्रकार का है—

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेहपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थ के पञ्चदशसाय्या ॥

अर्थात् जिस छन्द का प्रथम चरण बारह मात्रा का (स्वर की लघुता एवं गुन्ता के परिमाण से) द्वितीय अठारह का, तृतीय बारह और चतुर्थ पन्द्रह का होता है उसका नाम आर्या है। इस प्रकार संस्कृत की आर्या ही प्राकृत का गाथा छन्द है।

‘वज्रालङ्कार’ में जयवल्लभ ने ‘गाथा’ की सराहना करते हुए कहा है—

अद्वक्तरभणियाण नूण सविलासमुद्धहसियाइ ।
अद्वच्छिपेच्छियाइ गाहादि विणा ण पाज्जति ॥ ६ ॥

यही नहीं, आगे कहा है—

गाथा रुइ वराई सिक्खिजन्ती गवारलोएहिं ।
कीरइ लुञ्जपलुञ्जा जह गाई मन्ददोहेहिं ॥ १५ ॥

कवि उमग में यहाँ तक कह गया है कि—

ललित महुक्करए जुइजणवल्लहे ससिगारे ।
सते पाइअकणे को सक्कइ सक्कय पडिऊ ॥

अर्थात् ललित एवं मधुर, शृंगारिक तथा युवती जन प्रिय गाथा संस्कृत काव्य में कहाँ मिलेगा ?

उपसंहार

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ‘गाथा सप्तशती’ वही रचना नहीं है जिसे ‘गाथा कोश’ नाम द्वारा अभिहित किया जाता है। ‘शालिवाहन

१ संस्कृत रूपान्तर—

प्रथम द्वादश मात्रा द्वितीये अष्टादशभि सजुत्ता ।
यया प्रथम तथा तृतीय दशपञ्चविभूषिता गाथा ॥

सप्तशती' नामक प्रति से उन छह सहयोगी कवियों के नाम तक का पता चल जाता है जो शालिवाहन के सहायक रहे हैं। अधिसंश्रुतियों की प्रारंभिक सात गाथाएँ इन्हीं द्वारा रचित बतलायी जानी हैं।

आंध्रमृत्यु अथवा सातवाहन हाल प्रथम शताब्दी का दक्षिणात्य राजा था जिसने 'गाथा कोश' का संकलन कराया था। यह स्वयं प्राकृत का कवि भी था। राजशेखर ने 'कर्पूर मंजरी' के विदूषक द्वारा इसकी तुलना कौटीला, हरिचन्द्र और नन्दिचन्द्र आदि प्राकृत कवियों से करायी है। घाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में सातवाहन राजा द्वारा विशुद्ध जाति के रत्नों के सहस्र सुभाषितों से समन्वित अमान्य एवं अविनाशी कोश बनाये जाने की चर्चा की है।^१

राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' में लिखा है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अन्तःपुर में संस्कृत का और कुंतल सातवाहन के अन्तःपुर में प्राकृत भाषा का प्रचलन था। कुंतल शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में भी किया है। डॉ० पीटर्सन के अनुसार सातवाहन कुंतल जनपद का अधिपति था जिसकी राजधानी पैठण (प्रतिष्ठानपुर) थी। उसका उपनाम 'हाल' अथवा शतकर्ण था। मलयवती उसकी रानी थी और द्वीपकर्ण उसका पिता था। वह शिववर्मा का मित्र तथा गुणाढ्य का आश्रयदाता था। 'गाथाकोश' नामक एक अभिधान भाण्डारकर इंस्टिट्यूट पूना के संग्रह में क्रमांक (३२६) सन् १८८८-८९ और ३२५ सन् १८८७-९१ ईसवी का सुरक्षित है।

विषय वस्तु की दृष्टि से 'गाथा सप्तशती' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है। इस ग्रंथ में कृषिजीवी भारतीय जीवन का चित्र अंकित है। इसमें मानवी प्रवृत्तियों एवं चरित्रों का निदर्शन है। यह एक प्रकार से तत्कालीन रीति-नीति तथा आचार-विचार का कोश-ग्रंथ है, जहाँ अधिकतर जन-साधारण का ही जीवन मुखर है। पामर-पामरी,

१. बोद्धित (बोदिस), चुल्लुहः, अमरराज, कुमारिल, मकरन्दसेन और श्रीराज ।

२. अविनाशिनंमप्राग्यमकरोत् सातवाहनः ।

विशुद्धजातिभिः कोपररत्नैरिव सुभाषितैः ॥

हालिक-हालिक पत्नी, नन्दन-दुहिता, गृहिणी-गृहपति और प्रेमी-प्रेमिनी के बीच की ग्रामीण उक्तियाँ चित्कार्पक होने के साथ-साथ तत्कालीन समाज की कसौटी भी हैं। इसमें प्राचीन भारतीय ग्रामों उनके निवासियों, उनके पारिवारिक जीवन की विशेषताओं-यथा, सभ्यता एवं संस्कृति का चित्रमय परिचय मिलता है। ऐसा लगता है कि इन्हीं को लक्ष्य कर इन गाथाओं की रचना हुई थी। कदाचित् इसी कारण, इसमें स्वभाषोक्ति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है जो 'शिष्ट समाज' द्वारा लांछित होकर 'अश्लील उक्ति' तक कहलाकर प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ गृंहार-रस प्रधान है। इसमें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। इसी प्रकार संयोग वियोग के मनोहारी उद्गार भी प्रचुर मात्रा में सुलभ हैं। ये ग्रामीण मनोभाव परिमार्जित न होकर अपने प्रकृत रूप में हैं। इनका भीतर-बाहर एक समान है। इसी कारण यह ग्रंथ 'लोक-साहित्य' की तालिका में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है। परवर्ती काल के कई कवि और लेखक इस ग्रंथ के भाव तथा शैली के ऋणी हैं।

'गाथा सप्तशती' के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र ग्रंथ अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में प्रथम शतक की ४८वीं गाथा—

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव करेसु अम्हं दइअस्स ।

पुरिसा एकन्तरसा ण हु दोप गुणे विआणन्ति ॥

अर्थात् हे देव, हमारे प्रियतम के निमित्त दूसरी महिला की आसक्ति का विधान करो, नहीं तो पुरुष एकरस स्वादी हो जायेंगे एव किसी के गुण-दोष को विशेष भाव से नहीं समझ पायेंगे।

इसकी सामाजिक व्याख्या करना नृत्व विचारदों अथवा समाज-शास्त्रियों का विषय है। जहाँ तक अपना सम्बन्ध है इस सन्दर्भ में पाठकों का ध्यान मैं राजगृह के बुद्ध भक्त पूर्ण श्रेष्ठि की कन्या उत्तरा-वाली बौद्ध कथा' की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिसका विवाह अबोध परिवार में हुआ था। फलस्वरूप चातुर्मास में वह न तो धर्म श्रवण कर सकती थी और न भिक्षु-भोजन करा पाती थी। एक

१. धम्मपद, बोधवग्गो-३ तथा अट्ठसालिनी नाम धम्मसंगगिप्पकरणट्ट कथा-१११

दिन उसने अपने पिता के निकट अपनी मनोव्यथा व्यक्त की जिसके उत्तर में उसके पिता ने पन्द्रह हजार कार्पापण उसे इस हेतु दिया कि वह इसे देकर अपने स्वामी की देखभाल के लिए सिरिमा अथवा श्रीमती गणिका को नियुक्त कर दे ।

इस प्रकार उत्तरा ने पन्द्रह दिन के लिए श्रीमती को स्थानापन्न कर दिया । वह राजवैद्य तथा प्रधान अमात्य जीवक कौमारभृत्य की कनिष्ठा भगिनी एवं वैशाली की नगर-वधू अम्बपाली की कन्या थी ।

यदि उपर्युक्त घटना सच है तो पिता द्वारा अपनी कन्या को उक्त मुक्ताव देकर उसकी सहायता करना और पत्नी का अपने पति के लिए गणिका नियुक्त करना गाथा को सम्भलने में सहायक हो सकता है । यद्यपि मनोवैज्ञानिक अथवा प्रचलित सामाजिक प्रथा से उक्त आचरण स्त्रियोचित नहीं जान पड़ता, फिर भी यह कथा एक परोक्ष समाधान प्रस्तुत करती है ।



हिन्दी-गाथासप्तशती

प्रथम शतक

पशुवरणो रोसारुणपडिमासंकंतगोरिमुहबन्दं ।
गद्दिभ्रघपंकभं विभ्र संज्ञासलिलज्जलि णमह ॥ १ ॥

[पशुपते रोपारुणप्रतिमासंकान्तगौरीमुखचन्द्रम् ।
गृहीतार्घपद्मत्रयि सख्यासलिलाञ्जलि नमत ॥]

पशुपतिकी संख्या-सलिलाञ्जलिकी नमस्कार करें—त्रिसमें गौरीका (कितके ५यानमें मग्न हो भञ्जलि प्रदानकर रहे हैं—इससे उपपन्न) रोपारुण मुखचन्द्र संक्रान्त हुआ है, एवं इस कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो अर्घपद्म ही ले लिया गया है ॥ १ ॥

अमिभं पाउअकथ्यं पडिउं सोउं अ जे ण आणन्ति ।
फामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कहे ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं शोभुं च ये न जानन्ति ।
कामस्य संशयिन्तां कुर्वन्तस्ते कथं न लज्जन्ते ॥]

जो अमृत सरीस्रे प्राकृतकाव्यका पाठ एवं श्रवण करना नहीं जानते वे कामकी संशयिन्तामें प्रवृत्त हो लज्जित क्यों नहीं होते ? ॥ २ ॥

सत्त सताइं कइयच्छलेण फोडोअ मज्झारम्मि ।
हालेण विरइअइं सालङ्कारणै गाथाणम् ॥ ३ ॥

[सप्तशतानि कविशसलेन कोटिभ्ये ।
हालेन विरचितानि सालङ्काराणां गाथाणाम् ॥]

अष्टशतविभूषित गाथाओंकी कोटिमें से केवल सात सौ गाथाएँ जिन्हें कविशसल हाल ने प्रगीत किया था संगृहीत की गई हैं ॥ ३ ॥

उअ णिअलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेह्व वलाआ ।

णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ संपसुत्ति ध्य ॥ ४ ॥

[परम निअलनि स्पन्दा विसिनीपत्रे राजते वलाका ।

निर्मलमरकतभाजनपरिरियता दह्वशुक्तिरिव ॥]

देखो, पद्मपत्रके ऊपर वलाका निअल एवं निःस्पन्द भावसे अवस्थित हो
यैसे ही शोभा पा रही है, जैसे कि निर्मल (शुभ्र) मरकतभाजनके ऊपर
दह्व-शुक्ति अवस्थित हो ॥ ४ ॥

तावच्चिअ रइसमप महिलानं विअममा विराअन्ति ।

जाअ ण कुवलयदलसेच्छआई मउलेन्ति णअणाई ॥ ५ ॥

[साधदेव रतिसमये महिलानां विअममा विराजन्ते ।

यावदा कुवलयदलसच्छायानि मुकुचीभवन्ति नयनानि ॥]

रतिबेलामें ललनाओंके विअम तभी तक शोभा पाते हैं जब तक कि
उनके कुवलय-दलकी-सी सुन्दर काग्नितपाले नयन मुकुलित नहीं हो जाते ॥५॥

णोहलिअमप्पणो किं ण मग्गसे मग्गसे कुरवअस्स ।

एअं तुह सुहग हसइ धलिआणणपंकअं जाआ ॥ ६ ॥

[दोहदमात्मनः किं न मृगयसे मृगयसे कुरवकस्य ।

एवं तव सुभग हसति बलिताननपङ्कजं जाया ॥]

हे सुभग, तुम अपने कुरवकवृक्षके निमित्त तदीय आलिंगनरूप दोहदकी
प्रार्थना कर रहे हो-अपने निअके लिए नहीं । इसी कारण तुम्हारी जाया अपना
मुखपत्र तिरछा करके हँस रही है ॥ ६ ॥

तावज्जन्ति असोएहिं लडहचणिआओं दइअविरहम्मि ।

किं सहइ कोवि कस्स वि पाअपहारं पडुप्पन्तो ॥ ७ ॥

[ताप्यन्ते अशोकैर्विदम्भवनिता दयितविरहे ।

किं सडते कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं प्रभवन् ॥]

प्राणप्रियके विरहमें विदग्ध बनितायें अशोकवृक्ष द्वारा भी तापित होती
हैं-प्रभावशाली होनेपर क्या कोई किसीका पादप्रहार सहन करता है ? ॥७॥

अत्ता तह रमणिज्जं अहं गामस्स मण्डणीह्वअं ।

लुअतिलवाडिसरिच्छं सिसिरेण कअं भिसिणिसण्डं ॥ ८ ॥

[अथ तथा रमणीयमरमाकं प्राप्तस्य मण्डनीभूतम् ।

लुअतिलवाटीसदृशं शिशिरेण कृतं विसिनीपण्डम् ॥]

हे शत्रु, शिशिर ऋतुने हमलोगोंके ग्रामके शोभास्वरूप उस पद्मखण्डको द्विभ्रतिलक्षेत्रके समान बना दिया है [कहीं ऐसा न हो कि सकेतस्थान तिलक्षेत्रपर जाए उपस्थित हो] ॥ ८ ॥

किं रुअसि थोणअमुही धवलाअन्तेसु सालिछित्तेसु ।

हरिआलमण्डिअमुही णडि व्व सणवाडिआ जाआ ॥ ९ ॥

[किं रोद्विष्यवन्नतमुत्ती धवलापमानेषु सालिक्षेत्रेषु ।

हरितालमण्डितमुखी नदीव शणवाटिका जाता ॥]

पके हुए सालिक्षेत्रोंके सफेद दिखायी पड़नेपर तुम मुखड़ेको नीचे कर रो क्यों रही हो ? पीतपुष्पमण्डित शणवाटिका (तो) हरिवाल द्वारा मण्डित-वदना नदीकी नाईं दिखायी ही पड़ रही है ॥ ९ ॥

सद्धि ईरिसिच्चिअ गई मा रुव्वसु तंसवलिअमुहअन्दं ।

पआणं चालचालुद्धितन्तुकुडिलानं पेम्माणं ॥ १० ॥

[सखि इदृश्यव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्बलितमुखचन्द्रम् ।

एनेपा चालकर्बटीतन्तुकुडिलानां प्रेम्णाम् ॥]

हे सखि, शिशुर्कटिका-तन्तुकी ही भौंति प्रणयकी गति कुटिल होती है (अतः) अपने मुखचन्द्रको तिरछा कर रोदन मत करो ॥ १० ॥

पाअपडिअस्स पइणो पुट्टिं पुत्ते समाहत्तम्मि ।

ददमण्णुदुण्णिआपे वि हासो घरिणापे णेकन्तो ॥

[पादपतितम्य पयुः पृष्ठ पुत्रे समाहति ।

ददमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ॥]

पैरोंपर गिरे हुए पतिका पीठपर पुत्रको चढ़ते हुए देखकर, कोपके कारण आर्यन्त दुःखित गृहिणी (के मुँह) से भी हँसी फूट पड़ी ॥ ११ ॥

सच्चं जाणइ दट्ठं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जप राओ ।

मरउ णत्तुमं भणिस्सं मरणं वि सल्लाहणिज्जं से ॥

[सार्यं जानाति द्रष्टुं सशो जने युज्यते राग ।

अियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीयं तस्या ॥]

हमारी सखी सख्य ही देखना जानती है कि सशत जनोंमें ही अनुराग उपयुक्त होता है । उसे मरने दो, मैं तुमसे उस (के जावन) के विषयमें कुछ नहीं कहूँगी, उसकी मृत्यु भी श्लाघनीय है ॥ १२ ॥

घरिणीपे महानसकम्मलग्गमसिमलिइएण हृत्येण ।
छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्दावत्थं गभं पइणा ॥

[गृहिण्या महानसकर्मलघ्नमपीमलिनितेन हस्तेन ।

, स्पृष्टं मुखं हस्यते चन्दावस्थां गतं पाया ॥]

रन्धनकर्ममें रत्त, कालिमा द्वारा भलिन हाथसे स्पृष्ट, गृहिणीके मुखदेको चन्द्रमाकी दशाको प्राप्त होते देखकर पति हँसता है ॥ १३ ॥

रन्धणकम्मणिउणिप मा जूरसु, रत्तपाडलसुअन्धं ।

मुहमावधं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥ १४ ॥

[रन्धकर्मनिपुणिके मा कुप्पस्व रत्तपाटलमुगन्धम् ।

मुखमारुतं पिबन्धूमायते शिखी न प्रज्वलति ॥]

हे रन्धनकर्मनिपुणिके, खिन्न मत हो । रत्त पाटलपुष्पके-से सुगन्धितसुग्दारे मुख-मारुत-पानके उद्देश्यसे ही अग्नि केवल धूमायमान अवस्थामें रह रहा है, प्रज्वलित नहीं हो रहा है ॥ १४ ॥

किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआपे मुक्काए ।

पढमुग्गअदोहणीए णवरं दइअं गअ दिट्ठी ॥ १५ ॥

[किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृथाया मुग्धायाः ।

प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥

‘कौन-कौन सी वस्तु तुम्हें खिन्न रूपमें प्रतिभासित होती है’—सखियों द्वारा ऐसा पूछा जानेपर प्रथम बार उद्गत गर्भाभिलाषधारिणी मुग्धा रमणी की दृष्टि केवल प्रीतमकी ओर ही गई ॥ १५ ॥

अमअमअ गअणसेहए रअणीमुहतिलअ चन्द दे छिवसु ।

छित्तो जेहिँ पिअअमो ममं पि तेहिँ विअ करेहिँ ॥ १६ ॥

[अमृतमय गगनरोखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृष्ट ।

स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥

हे चन्द्र, तुम अमृतमय हो, गगन के रोखर हो एवं रजनी (रूपी नायिका) के मुखतिलक हो—जिन किरणों द्वारा तुमने मेरे प्रीतमका स्पर्श किया है, उन्हीं के द्वारा मेरा भी स्पर्श करो ॥ १६ ॥

पहिइ सो वि पउत्थो अहं अ कुप्पेज्ज सो वि अणुणेज्ज ।

इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणं माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

[पृष्यति सोऽपि प्रोपितोऽहं च कुपिष्यामि सोऽभ्यनुनेष्यति ।

इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

प्रोपित वे भी लौट आयेंगे, मैं भी कोप-प्रदान करूँगी एवं वे भी अनुनय करेंगे । प्रियतमके संबंधमें इस प्रकारके मनोरथ-समूहोंकी माला किसी भाग्यवतीको ही फलवती होती है ॥ १७ ॥

दुग्माअकुडुम्वअट्टी कहुं णु मए धोइएण सोढव्या ।

दसिओसरन्तसलिलेण उअह रुणं थ पडएण ॥ १८ ॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टिः कथं नु मया धीतेन सोढव्या ।

दशापमरसलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन ॥

‘धोए जाने पर मैं दुर्गनकुटुम्बगण द्वारा किये हुए आकर्षणको किस प्रकार सहूँगी—मानो ऐसा ही कहकर बह्मवण्ड प्रान्तभाग से विगलित जलके छलसे रोदनकर रही है ॥ १८ ॥

कोसँम्वकिसलअवणअ तणअ उणामिएहिँ कण्णेहिँ ।

ह्मिअअट्टिअं धरं वच्चमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाभ्रकिसलयवर्णकं तर्णकं उच्चाभिताभ्यां कर्णाभ्याम् ।

हृदयस्थितं गृहं मज्जन्धवलत्तवं प्राप्नुहि ॥]

हे उच्चमित-कर्ण धरत, कोप-विनिर्गत-आभ्रकिसलयका वर्णं तुम धारणकर रहे हो—तुम अपने हृदयाभिलषित गृहमें प्रविष्ट हो धवलता प्राप्त करो ॥ १९ ॥

अलिअपसुत्तअ विणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्ज ओआसं ।

गण्डपरिउम्वणापुलइअरु ण पुणो चिराइस्सं ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तकं विनिर्मलिताद्य हे सुभग ममावकाशम् ।

गण्डपरिचुम्बनापुलकितान् न पुनश्चिरविष्यामि ॥]

हे सुभग, अलीकनिद्रामें नयनोंको निमीलित करनेपर भी तुम अपने गण्डचुम्बनपर पुलकितान् होते हो, क्षयापर मुझे स्थान दो, मैं अब ऐसी देर नहीं करूँगी ॥ २० ॥

असमत्तमण्डणा विअ वच्च धरं से सकोउहल्लस्स ।

घोलाधिअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैव मज्ज गृहं तस्य सकौतूहल्यव ।

व्यतिक्रान्तौमुखस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

उस कौतूहलक्रान्तके घर, सजावटके पूरे हुए बिना ही प्रवेश करो—
हे पुत्रि, यदि उसकी वसुक्तता दूर हो जाय तो हो सकता है कि मुझे उसके
चित्तमें स्थान न मिले ॥ २१ ॥

आवरणामिभोदुं अघटिअणासं असंहअणिडालं ।

घण्णघिअतुप्पमुद्धिए तीए परिउम्यणं भरिमो ॥ २२ ॥

[आदरमणामितौष्टमघटितनासमसंहतल्लहाटम् ।

घणंघृतल्लिसमुक्क्यास्तस्या. परिचुग्घनं स्मरामः ॥]

घर्णमिश्रित-घृतद्वारा लिप्तमुखी उस रजम्बला रमणीके परिचुग्घनका
स्मरण करता हूँ जिसके लिए उसने, आदरपूर्वक भोट झुका लिया था । परन्तु
घर्णघिहूके भयसे नासिकाको संयोजित नहीं किया एवं ललाटका स्पर्श भी
नहीं किया ॥ २२ ॥

अण्णासआइँ देन्ती तह सुरए हरिसविअसिअरुचोला ।

गोसे वि ओणअमुही अह सेत्ति पिआं ण सहहिमो ॥ २३ ॥

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला ।

प्रातरप्यवनतमुखी ह्यं सेति प्रियां न अहम्म ॥]

सुरतके समय हर्षसे पुलकितकपोला होकर विलासके संघर्षमें सैकड़ों
आज्ञाएँ देनेवाली नायिका ही प्रातः होनेपर अवनतमुखी हो गयी है—यह
विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ ॥ २३ ॥

पिअचिरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइँ ।

जीएँ तुमं कारिज्जासि तीएँ णमो आहि जाईएँ ॥ २४ ॥

[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दु खे ।

यया एवं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥]

प्रियजनका विरह एवं अप्रियजनका दर्शन—ये दोनों ही महान् दु खके
कारण हैं—तब भी तुम जिस भाव की प्रेरणा से कार्य करते हो उसी आभि-
जात्यको नमस्कार करती हूँ ॥ २४ ॥

एक्यो वि कळ्ळसारो ण देइ गन्तुं पआहिणवलन्तो ।

किं उण याद्वाउलिअं लोअणज्जुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥

[एकोऽपि कृष्णसारो न ददाति गन्तुं प्रदक्षिणं चलन् ।

किं पुनर्भाष्पाकुलितं लोचनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एक कृष्णसार मृग ही प्रदक्षिणभावसे चलनेपर छोर्गोंकी जाने नहीं देता—
प्रियतमाके याव्याकुलित दो लोचन किस प्रकार जाने देंगे ? ॥ २५ ॥

ण कुणन्तो विव्रम माणं णिसासु सुहसुत्तदरविजुत्तणं ।
सुण्णद्वअपासपरिमूसणनेअणं जइ सि जाणन्तो ॥ २६ ॥
[नाकरिप्य एव माणं निशासु सुखसुसदरविजुत्तानाम् ।
शून्यीकृतपाशं परिमोपगवेदनां यद्यज्ञायः ॥]

राशिमें सुखसे सोनेवाले व्यक्तियोंमें से कुछ कुछ जागे हुए की शून्यीकृत
पाशंजनित वेदना यदि तुम जानते हो अपने अपराधको क्षिप्तानेके लिए
मान न परते ॥ २६ ॥

पणअकुचिआणं दोह वि अलिअपसुत्ताणं माणइत्ताणं ।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णकण्णणं को महो ॥ २७ ॥
[प्रणयकुचितयोर्द्वयोरपवलीकप्रसुतयोर्मानवतो ।
निश्चलनिरुद्धनिश्चासदत्तकणयोः को महः ॥]

प्रणयकुचित, मिथ्यानिद्रित, मानयुक्त दम्पति जय निश्चासका निरोधकर
निश्चलभावसे एक दूसरेके निश्चास शब्दपर कान लगाये रहते हैं, तब इन दो
के बीच कौन अधिक समर्थ होता है ? ॥ २७ ॥

णवलअपहरं अङ्गे जेहिं जेहिं महइ देवरो दाउं ।
रोमअदण्डराई तहिं तहिं दीसइ यहए ॥ २८ ॥
[नवळताप्रहारमङ्गे पत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।
रोमाअदण्डरात्रितत्र तत्र हरपते वप्याः ॥]

नायिकाके अङ्गके जिन जिन स्थानोंपर देवर छता द्वारा प्रहार करनेका
इच्छुक है, वधुके उन उन स्थानोंपर रोमाअरुण्डकराजि दिखायी पड़ती है ॥२८॥

अज्ज मए तेण विणा अणुहअसुहाई संमरन्तीए ।
अदिणयमेहाणं रयो णिसामिओ वज्जपडहो वए ॥ २२ ॥
[अद्य मया तेन विना अनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या ।
अभिनवमेवानां रवो निशामितो वष्यपटह इव ॥]

उसके विरहमें आज मैं पूर्वानुभूत सुखाशिकी बातें यादकर नव मेघबुन्द
की ध्वनिकी वष्यपटह-शब्दके रूपमें सुनती हूँ ॥ २९ ॥

णिक्रिय जाआमीरुअ दुइंसण णिम्यईडसारिच्छ ।

गामो गाम णिणन्दण तुज्झ कए तह वि तणुआइ ॥ ३० ॥

[निष्कृत जायामीरुअ दुईंसण निम्बचीटसदृश ।

ग्रामो ग्रामणीनन्दन तत्र कृते तथापि तनुकायते ॥]

हे ग्रामनायकपुत्र, तुम निर्दय एवं जायामीरु हो, तुम्हारा दर्शन पाना दुष्कर है; तुम नियाकीट-सदृश कुरूपा रमणीपर भासक हो; तुम्हारे लिए सारा गाँव दुर्बल होता चला जा रहा है ॥ ३० ॥

पहरवणमग्गविसमे जाआ किच्छेण लहइ से णिइं ।

गामणिउत्तस्स उरे पल्ली उण सा सुहं सुवई ॥ ३१ ॥

[प्रहारमणमार्गविषमे जाया कृच्छ्रेण लभते तस्य निद्राम् ।

ग्रामणीपुत्रस्योरसि पल्ली पुनः सा सुप्तं स्वपिति ॥]

ग्रामणीपुत्रक शस्त्रप्रहारजन्य मणसिद्धविषम-वधःस्थलके ऊपर उसकी जाया अत्यन्त कष्टसे निद्रालाभ करती है, किन्तु, प्रहरद्वारा गम्य घनमार्ग विषम पुरमें चली पल्ली सुप्तसे सोती है ॥ ३१ ॥

अह संभावितमग्गो सुहअ तुए जेव्व णवरँ णिःसूढो ।

एहिं द्विअए अणणं अणणं घाआइ लोअस्स ॥ ३२ ॥

[अयं संभावितमार्गं सुभग स्वयैव केवलं निर्यूढः ।

इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्वाचि लोकरव ॥]

हे सुभग, केवल तुमने सम्भावित श्रेष्ठ जनोंके पथ का अवलंबन किया है—
आप्तकल लोगोंके हृदयमें एक भाव दिप्रायी पक्षता है और वाक्यमें अन्य भाव ॥

उह्माँइ णीससन्तो किंति मह परम्मुहीएँ सअणद्धे ।

द्विअअं पल्लीविअ वि अणुसएण पुट्ठिं पलीयेस्सि ॥ ३३ ॥

[उष्णानि निःश्वसन्किमिति मम पराङ्मुख्याः शयनार्थं ।

हृदयं प्रदीप्याप्यनुज्ञतेन पृष्ठं प्रदीपयसि ॥]

शयनाके आधेभागमें मैं पराङ्मुख हो सोया हूँ, तब भी तुम उच्चनिःश्वास
रथागकर अनुशयसे मेरे हृदयको प्रदीपित करती हुई होकर भी मेरे पृष्ठदेशको
प्रदीपित करती हो ? ॥ ३३ ॥

तुह विरहे चिरआरअ तिस्सा णिवडन्तवाहमइलेण ।

रइरहसिहरघएण घ मुहेण छाहिं द्विअ ण पत्ता ॥ ३४ ॥

[तव विरहे विरकारक तस्या निपतद्वाप्यमग्निनेन ।

रविरशनिव्यवहारेण गुप्तेन वदायैव न प्राप्ता ॥]

हे विद्यावधारण, तुम्हारे विरहमें निपणित वापद्द्वारा मग्नि उसका मुख
झापाका भवतया नहीं करता, उमी प्रकार जिन प्रकार सूर्यके रथके निगरपर
स्थित व्यजा झापाको नहीं प्राप्त होती ॥ ३५ ॥

दिग्भस्म अतुद्भ्रमणस्तु कुलपद् जिमप्रभुद्भुक्तिदिभारं ।

दिग्भदं कहेर रामाणुलगासोमिच्छिचरिभारं ॥ ३५ ॥

[देवारायाद्भ्रमणस्तु कुलपद्भिर्जकुलपदलिपितानि ।

दिवस कथयति रामानुलगासोमिच्छिचरितानि ॥]

दूषित चित देवरके निकट कुलपद् भवनी भित्ति पर चित्रित वा लिपित
रामानुरक्त सुमिप्रान्भ्रमणके चरितको दिनभर वर्जन करती है ॥ ३५ ॥

चत्तरघरिणी पिभदंतणा य तरुणी पउद्यपइआ अ ।

असई सअजिभा दुग्गभा अ ण दुरण्डिअं सीलं ॥ ३६ ॥

[चत्तरघृहिणी प्रियदर्शना य तरुणी प्रीतिपत्रिका य ।

भगतीप्रतिवेदिनी दुर्गता य न रातु रण्डितं शीलम् ॥]

चौराहेपर जिनका घर हो, फिर भी जो स्त्री प्रियदर्शना हो, जो स्त्री स्वयं
तरुणी हो, फिर भी जिनका पति प्रकामी हो, एवं भगती कामिनी स्त्री मद्-
धामिनी होकर भी जो दरिद्रा हो—इस प्रकारभी नारियों का चरित भी
रण्डित नहीं होता (अर्थात् खरप होता है) ॥ ३६ ॥

तादूरभमाउलपुडिअकेसरो गिरिणरिं पूरेण ।

दरधुद्भुत्तुदुणियुग्गुधरो हीरद फलम्यो ॥ ३७ ॥

[जलावर्तभमाकुलपण्डितकेसरो गिरिण्या पूरेण ।

दरागोभ्रमनिमप्रभुधरो द्विपने कदम्ब ॥]

गिरि नदी के जल प्रवाह में कदम्ब वृक्ष दूर रहा है, उसका केस-कदम्ब
जलावर्त के भ्रम से भाकुल हो रण्डित हो रहा है एवं इसमें स्त्री कद-
म्बप्रभ, कभी उन्मत्त एवं कभी निमत्त हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

अद्विभाभ्रमणिणो दुग्गभस्तु छार्दि पिभस्स रक्खन्नां ।

जिमपन्धवाणो जूरर घरिणी विहवेण पत्तावं ॥ ३८ ॥

[भाभिजात्यमानिनो दुर्गंतस्य छायां पत्यु रचन्ती ।

निजयान्धयेभ्यः क्लृप्यति गृहिणी विभवेनागच्छन्नयः ॥]

अपने कुलाभिमानी दरिद्र पतिकी छाया रचा करनेके लिए गृहिणी धन-समृद्धि लेकर आगत यान्धवजनोंके प्रति विरक्ति प्रकानित करती है ॥ ३८ ॥

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि रणे ण मण्डिओ अप्पा ।

दुग्गअपउत्थवइअं सअज्जिअं सण्ठन्वतीए ॥ ३९ ॥

[स्वाधीनेपि प्रियतमे प्राप्तेपि एणे न मण्डित भारमा ।

दुर्गंतप्रोपितपतिवां प्रतिपेदिनीं संस्थापयन्त्या ॥]

पतिके दुर्गंत एवं प्रवासी होने पर भी अपनेको इद रखने वाली यह महिला अपने प्रियतमके स्वाधीन होने पर भी एवं उसवर्गमें उपस्थित होने पर भी अपने शरीरको मण्डित नहीं कर रही है ॥ ३९ ॥

तुज्ज वसइ त्ति हिअअं इमेहिं दिट्ठो तुमं ति अच्छीहिं ।

तुह विरहे किसिआइं ति तीएँ अह्माइं वि पिआइं ॥ ४० ॥

[तव वसतिरिति हृदयमाभ्यां दृष्टस्वमित्यधिणी ।

तव विरहे कृशितानीति तस्या भद्रान्यपि प्रियाणि ॥]

उसका हृदय तुम्हारा वास स्थान है, उसके नेत्रद्वय द्वारा तुम देखे जाते हो, एवं उसके अंग तुम्हारे विरह में कृश हैं। इस कारण ये सभी उसे प्रिय प्रतीत होते हैं ॥ ४० ॥

सज्जावणेहभरिए रक्ते रज्जिज्जइ त्ति जुत्तमिणं ।

अणहिअअे उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो हसइ ॥ ४१ ॥

[सज्जावस्नेहभरिते रक्ते रग्यते इति युक्तमिदम् ।

अन्यहृदये पुनर्हृदयं यहीयते सज्जनो हसति ॥]

संसार सज्जाव एवं स्नेह से पूर्ण जनों पर अनुरक्त होता है यह तो ठीक है किन्तु तुम जो हृदयहीन व्यक्ति को अपना हृदय दे रही हो, इसपर तो लोग हँसेंगे ॥ ४१ ॥

आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं वि होइ पुरिसस्स ।

तं मरणमणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होइ ॥ ४२ ॥

[आरम्भमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीमरणं वा भवति पुरुषस्य ।

तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ॥]

यह तो निश्चय है कि कार्यारम्भकारीको लक्ष्मीलाभ हो सकता है, मृत्यु भी हो सकती है, किन्तु वह मृत्यु तो कार्यारम्भ हुए बिना भी हो जाती है तथापि लक्ष्मी विना आरम्भ हुए उपस्थित नहीं होती ॥ ४२ ॥

विरहाणलो सद्दिज्जइ आसावन्धेण वल्लहजणमस ।
एकग्रामप्रवासो माए मरणं विसेसेइ ॥ ४३ ॥

[विरहानलः सञ्जत आशावन्धेन वल्लभजनस्य ।

एकग्रामप्रवासो मातर्मरणं विशेषयति ॥]

प्रियजनो का विरहानल आशाके कारण सहन किया जाता है, किन्तु, हे मातः, एक ही ग्राममें घाम करनेके कारण यदि प्रवास हो जाय तो यह मृत्युसे भी बढ़कर है ॥ ४३ ॥

अफण्डइ पिआ द्विअए अण्णं महिलाअणं रमन्तस्स ।
दिट्ठे सरिस्समि गुणे असरिस्समि गुणे अईस्सन्ते ॥ ४४ ॥

[आस्त्रलति प्रिया हृदये अन्यं महिलाजनं रममाणस्य ।

दृष्टे सहसो गुणे अतदो गुणे अदृश्यमाने ॥]

अन्य महिलाओं के साथ रमण करनेवाले हृदयके सहस गुण दितायी पढ़नेपर भी असदृश गुण दिवनेपर प्रिया जाग उठती है ॥ ४४ ॥

णइऊरसच्छहे जोव्वणम्मि अइपवसिपसु दिअसेसु ।
अणिअत्तासु अ राईसु पुत्ति किं इहमाणेण ॥ ४५ ॥

[नदीपूरतदो यौवने अनिमोपितेषु दिवसेषु ।

अनिवृत्तासु च सपिषु पुत्रि किं दग्धमानेन ॥]

नदीकी यादकी भौति यौवन अल्पस्थायी है, दिन बीतते जाते हैं एवं रात भी अब लौटकर नहीं आयेगी । हे पुत्रि, दग्धमान द्वारा क्या मिलेगा ? ॥ ४५ ॥

कहें किल खरहृदयो पवसिइहि पिओत्ति सुण्णइ जणम्मि ।

तद्ध यद्द भअयइ णिसे जह्द से कह्लं विअ ण होइ ॥ ४६ ॥

[कदयं किल खरहृदयः प्रवस्यति प्रिय इति श्रूयते जने ।

तथा वर्धस्व भगवति निशे यथा तस्य कदयमेव न भवति ॥]

ऐसा सुना जाता है कि मेरा मूरहृदय प्रियतम प्रातः ही प्रवासाय जायेगा, हे निशादेवि, तुम इस प्रकार घड़ जाओ कि प्रातः ही वे हो ॥ ४६ ॥

होन्तपद्विअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सं ।
पुच्छन्ती भमइ घरं घरेण पिअविरहसहिरीओ ॥ ४७ ॥

[भविष्यैरधिकस्य जाया अपृच्छनजीवधारणरहस्यम् ।

पृच्छन्ती भमति गृहं गृहेण प्रियविरहसहनशीलाः ॥]

भविष्यमें प्रवासगमनेच्छु इयक्तिकी जाया, घर-घर घूमकर विदाईके समय प्राण-धारण करनेका रहस्य उनसे पूछ रही है जिन्होंने प्रियका विरह सहन किया है ॥ ४७ ॥

अण्णमद्वित्तापसङ्गं दे देव करेसु अह्म दइअस्स ।

पुरिस्सा एकन्तरसा ण हु दोषगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्धमद्विलाप्रसङ्गं हे देव कुर्वस्माकं दयितस्य ।

पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

हे देव, हमारे प्रियतमके निमित्त दूसरी महिलाकी प्रसक्तिका विधान करो, नहीं तो पुरुष एक-रसास्वादी हो जायेंगे एवं किसीके दोष तथा गुणको विरोध भावसे नहीं समझ पायेंगे ॥ ४८ ॥

थोअं पि ण णीसरई मज्झण्णे उह सरीरतल्लुका ।

आअवभण्ण छाई वि पद्विअ ता किं ण वीसमस्सि ॥ ४९ ॥

[स्तोकमपि न निःसरति मध्याह्ने परय शरीरतल्लीना ।

आतपभयेन च्छायापि पथिक तत्किं न विश्राम्यति ॥]

हे पथिक, मध्याह्नमें धूपके भयसे छाया भी शरीरमें छिप जाती है, बाहर नहीं निकलती, अतः हमारे यहाँ तुम भी विश्राम क्यों नहीं करते? ॥ ४९ ॥

सुहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्त ।

उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कभावराहोस्सि ॥ ५० ॥

[सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।

उपकारकं जर जीवमपि नयन्न कृतापराधोऽपि ॥]

हे ज्वर, तुमने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया । दूरसे हमारे सुखलिप्त सुलभ जनको हमारे निकट लाकर तुम यदि हमारे प्राणको भी ले जा सको तो भी तुम्हें अपराधी नहीं कहूँगी ॥ ५० ॥

आमजरो मे मन्दो अहव ण मन्दो जणस्स का तन्ती ।

सुहउच्छअ सुहअ सुअन्ध अन्ध मा अन्धिअं छियसु ॥ ५१ ॥

[भामोऽवरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता ।

सुखदृष्टक सुभग सुगन्धगन्ध मा गन्धितौ स्पृश ॥]

हे सुप्रजिज्ञानाकारिन्, हे सुभग, हे सुगन्ध-गन्ध युक्त, मेरा आम ज्वर मन्द है अथवा नमन्द इस विषयमें संसारको चिन्ता क्यों है ? तुम ज्वर की गन्धसे युक्ताको मत छूना ॥ ५१ ॥

सिद्धिपिच्छलुलितकेशे वेद्यन्तोऽह विणिमीलिबद्धच्छि ।

दरपुरिसाइरि धिसुमरि जाणसु पुरिसार्णं अं दुःखं ॥ ५२ ॥

[सिद्धिपिच्छलुलितकेशे वेपमानोऽह विनिमीलितार्षाधि ।

ईपसुहपायिते विभ्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यद्दुःखम् ॥]

हे ईपसुहपायित कार्यमें विराम करनेवाली, तुम्हारे केश मयूरपुच्छके समान लुलित हैं, तुम्हारे करुण्य कम्पमान हैं एवं तुम्हारी भाषी शैल विशेष भावसे मुँदी हुई दिवती है । समस्त एो पुरुषों को कितनी पीड़ा है ॥ ५२ ॥

पेम्मस्त विरोहिअसंधिअस्स पच्चअदिट्ठवित्तिअस्स ।

उअअस्स च ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥

[प्रेम्णो विरोधितसंधिनस्य प्रत्यक्षः प्रवलीकस्य ।

उदकरयेव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥]

जो प्रेम पहले विच्छिन्न होकर बाद में सन्धानयुक्त होता है, एवं जिस प्रेम में अपराध प्रत्यक्षतः दिखायी पड़ रहा है, उस प्रेमका रस पहले गरम किये और बाद में ठण्डे किये हुए जलकी भांति विरस हो जाता है ॥ ५३ ॥

वज्जवडणाइरिक्कं पइणो सोऊण सिज्जिणीघोसं ।

पुत्तिआइं करिमरिणें सरिसचन्दीणं पि णअणाइं ॥ ५४ ॥

[वज्रपतनातिरिक्तं पर्युः ध्रुवा सिज्जिणीघोषम् ।

श्रोन्द्रितानि यन्त्या सहस्रचन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्रपातके शब्द की अपेक्षा अधिक गम्भीर स्वामीके धनुष टंकार शब्द को सुनकर चन्दी अपने जैसे अन्य चन्द्रियोंके नपनोंको पोंढ़ दे रही है ॥ ५४ ॥

सहइ सहइ त्ति तह तेण रामिआ सुरअदुग्धिअद्वेण ।

पम्माअसिरीसाइं च जह से जाआइं अंगाइं ॥ ५५ ॥

[सहते सहत इति तथा तेन रामिता सुरतदुर्विदग्धेन ।

प्रम्लानशिरिषाणीव यथास्या जातान्यहानि ॥]

सहन कर रही है, सहन कर रही है इस प्रकार सुरतकार्यमें दुर्विदग्ध
 यह वेश्यानायिका पुरणों द्वारा इस प्रकार रमित होती है कि उसके अङ्ग प्रगल्भान
 शिरीषपुष्पकी भांति हो गये हैं ॥ ५५ ॥

अगणितसेसञ्जुआणा चालअ चोलीणलोअमज्जाआ ।

अद्द सा भमद्द दिसामुद्दपसारिअच्छी तुद्द कपण ॥ ५६ ॥

[अगणितारोपयुवा घालक ध्वनिक्रान्तलोकमर्यादा ।

अथ सा अमति दिसामुन्वप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

हे घालक, घय अन्यान्य युवकोंकी गणना नहीं करती, केवल तुम्हारे
 अभ्येपणमें लोकमर्यादा को खागर्भ दिव्युत्पत्ती ओर नेत्र प्रसारित कर घूम
 रही है ॥ ५६ ॥

करिमरि अआलगज्जिरजलभासणिपडनपडिरधो एसो ।

पद्दणो धणुरवकङ्किरि रोमञ्चं किं मुद्दा वहसि ॥ ५७ ॥

[वन्दि अकालगर्जनशीलजलदाशनपतनप्रतिरव एषः ।

परयुर्धनूरवाकाङ्क्षगशीले रोमाञ्चं किं मुद्दा वहसि ॥]

हे वन्दि, जो सुन रही हो वह तो अकाल गर्जनशील मेघके अशनपतन
 की प्रतिध्वनिमात्र है । हे पतिके धनुष-बाणके रवको सुननेकी अभिलाषिणि,
 व्यर्थ ही रोमाञ्चको क्यों वहन करती हो ॥ ५७ ॥

अज्ज व्येअ पउटथो उज्जाअरओ जणस्स अज्जे थ ।

अज्जे अ हल्लिहापिअराइँ गोलाणरतडाइँ ॥ ५८ ॥

[अद्यैव प्रोपित उजागरको जनस्याद्यैव ।

अद्यैव हरिद्राविअराणि गोदानदीतटानि ॥]

आज ही (मेरा पति) प्रवाममें गया है, आज ही सपन्नियोंका जागना आरंभ
 हुआ है एवं आज ही गोदावरीका तट प्रदेश हरिद्रा से पिअरवर्ण हुआ है ॥ ५८ ॥

असरिसच्चित्ते दिअदे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।

ण कद्दद्द कुटुम्भविहडणभएण तणुआअप सोहा ॥ ५९ ॥

[असदृशचित्ते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमे विषमशीले ।

न कथयति कुटुम्भविघटनभयेन तनुकायने क्षुपा ॥]

देवके दूषित चित्त होनेपर भी यादमें कुटुम्भ-विघटन होनेके भयसे शुद्ध-

चित्ता बधूने अग्यन्त विपम स्वभाव घाले पतिसे कुछ कहा नहीं, फिर भी वह कृत होती जा रही है ॥ ५९ ॥

चित्ताणिअद्दइअस्समागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण ।

सुण्णं कलहाअन्ती सहोहिँ दण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

[चित्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।

शून्यं कलहापमाना सखीभी रुदिता नोपहसिता ॥]

चित्तमें आनीत मियतमका समागम होनेपर उसके अपने क्रोधके कारणोंको यादकर मृधा कलहकारिणी होनेपर अन्य सखियाँ उसके लिए रोती ही हैं, उसका उपहास नहीं करती ॥ ६० ॥

द्विअअण्णपहिँ समअं अस्समत्ताइँ पि जह सुहायन्ति ।

कजाइँ मणे ण तहा इअरेहिँ समाविआइँ पि ॥ ६१ ॥

[हृदयज्ञैः समसमाप्तान्यपि यथा सुगयन्ति ।

कार्याणि मध्ये न तथा इतरैः समापितान्यपि ॥]

मुझे प्रतीत होता है कि हृदयज्ञ पुरुषोंके साथ अचरितार्थ कार्यकलाप जितना सुगदायक होता है, अहृदयज्ञ पुरुषोंके साथ चरितार्थ कार्यकलाप भी उतना सुखदायक नहीं होता ॥ ६१ ॥

दरकुडिअसिप्पिसंपुडणिलुकहालाहलगाछेप्पणिइँ ।

पकम्यट्टिविणिग्गअकोमलमग्गुङ्करं उअह ॥ ६२ ॥

[ईसगफुटितशक्तिसगपुटनिलीनहालाहलाप्रपुच्छनिभम् ।

पकाआस्थिविनिर्गतकोमलमाग्राङ्करं परयत ॥]

पके हुए आमसे निकले हुए इस अंकुरको देखो । यह जैसे ईपव स्फुटित शक्तिसंपुटमें निलीन हलाहलके अग्रपुच्छ सी दिखायी पड़ती है ॥ ६२ ॥

उअह पडलन्तरावतीण्णिअतन्तुद्धपाअपडिलग्गं ।

दुल्लपखसुत्तगुत्थेकवउलकुसुमं च मकडअं ॥ ६३ ॥

[परयत पटलान्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्ध्वपादप्रतिलम्भम् ।

दुर्लभसूत्रप्रथितैकवकुलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

पटलके अन्तरामे विलंबित अपने तन्तुके ऊर्ध्वपादमें प्रतिलग्न मर्कटकको देखो । यह दुर्लभ सूत्रमें प्रथित एक वकुलकुसुम सा लक्षित हो रहा है ॥

उअरि दरदिट्ठधण्णुअणिलुकपारावआणँ विरुपहिँ ।

णित्थणइ जाअरेवेअणँ सुत्ताहिण्णं च देअउलं ॥ ६४ ॥

[उपरीपरदृशंकुनिलीनपारावतानां विरुतैः ।

निरतनति जातवेदनं शूलाभिधमिव देवकुलम् ॥]

मन्दिरके ऊपरकी ओर कुछ-कुछ दिखायी पड़नेवाली कीलकमें निलीन पारावत गण कृजन द्वारा जैसे देवकुल शूलद्वारा भिन्न हो वेदनासे रव कर रहा है ॥ ६४ ॥

जइ ह्योसि ण तरुस पिआ अणुदिअहं णोसहेहिं अङ्गेहिं ।

णवसूअपीअपेऊसमत्तपाडि व्व किं सुवसि ॥ ६५ ॥

[यदि भयति न तस्य प्रियानुदिवस निःसहैरङ्गैः ।

नवसूतपोतपीयूपमत्तमहिपीवत्सेव किं स्वपिपि ॥]

यदि तुम उसकी प्रिय नहीं हो तो प्रतिदिन निःसह अंग लेकर नवप्रसूत पीयूप पानेमें मत्त महिपीवत्सा की भाँति क्यों सोती हो ? ॥ ६५ ॥

हेमन्तिआसु अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिहा ।

चिरअरपउत्थयइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ६६ ॥

[हेमन्तिकास्वतिदीर्घासु रात्रिषु त्वमस्यविनिद्रा ।

चिरतरप्रोपितपतिके न सुन्दरं यद्विवा स्वपिपि ॥]

हे रमणी, तुम्हारा प्रिय बहुत समयके लिए प्रवासमें गया है, तुम हेमन्त ऋतुकी इस अतिदीर्घ रात्रिमें निद्राविच्छेदका अनुभव न करके भी दिनके समय सोई रहती हो, यह सुन्दर कार्य नहीं है ॥ ६६ ॥

जइ चिक्खल्लुभउप्पअपअमिणमलसाइ तुह पए दिण्णं ।

ता सुहअ कण्टइज्जन्तमंगमेहिं किणो वहसि ॥ ६७ ॥

[यदि कर्दमभयोत्प्लुतपदमिदमलसया तव पदे दत्तम् ।

तरसुभगकण्टकितमङ्गमिदानीं किमिति वहसि ॥]

यदि वह अलसायमान पङ्कके भयसे छुलाङ्ग मारकर तुम्हारे पैरपर यह पैर निचेप कर रही है, ऐसा होने पर, हे सुभग, अब तुम अपने रोमाञ्चित अङ्ग क्यों घहन कर रहे हो ? ॥ ६७ ॥

पत्तो लुणो ण सोहइ अइप्पहा एव्व पुण्णिमाअन्दो ।

अन्तविरसो व्व कामो असंपआणो थ परिओसो ॥ ६८ ॥

[प्राप्तः षणो न शोभते अतिप्रभात इव पूर्णिमाचन्द्रः ।

अन्तविरस इव कामोऽसम्प्रदानश्च परितोषः ॥]

अत्यन्त सधेरे पूर्णिमाका चन्द्र, अवसानपर रसशून्य कामना एवं संप्रदान-रहित परितोष, जिस प्रकार शोभा नहीं पाते, उसी प्रकार उरसव उपस्थित हो जानेपर ही शोभा नहीं बढ़ जाती ॥ ६८ ॥

पाणिग्रहणे विव्रत्र पश्यईपे णाअं सदीहिं सोहमं ।

पसुवइणा वासुइकङ्कणम्मि ओसारिप दूरं ॥ ६९ ॥

[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञातं सखीभिः सौभाग्यम् ।

पशुपतिना वासुकिकङ्कणोऽपसारिते दूरम् ॥]

पाणिग्रहणके ही समय पशुपतिको वासुकिरूप कङ्कण दूर करते देख सखियोंने पार्वतीका सौभाग्य जान लिया ॥ ६९ ॥

गिल्ले दधगिमसिमइलिआइं दीसन्ति विज्झसिहराइं ।

आससु पउत्थवइए ण ह्योन्ति णवपाउसम्भाइं ॥ ७० ॥

[ग्रीष्मे दधामिमपीमलिनितानि हरयन्ते विन्ध्यशिलरानि ।

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भवन्ति नवप्रायुदभागि ॥]

हे प्रोषितपतिके, आश्वसन हो जाओ, ग्रीष्मकालमें दधानलकी मसिद्वारा मलिनित वे विन्ध्यशिलर समूह दिखायी पड़ते हैं, ये नववर्षाकी मेघमाला नहीं हैं ॥

जेत्तिअमेसं तीरइ णिव्योहं देसु तेत्तिअं पणअं ।

ण अणो विणिअत्तपसाअदुक्खसहणस्समो सज्जो ॥ ७१ ॥

[यावन्मात्रं शक्यते निर्घोहं देहि तावन्तं प्रणयम् ।

न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षमः सर्वं ॥]

जितना प्रणय निःशेष भावमे वहन किया जा सकता है, उतना ही प्रणय हो । कारण, प्रसादविनिवृत्त होनेपर तत्रनित दुःख सहनेमें सभी समर्थ नहीं होते ॥ ७१ ॥

बहुबल्लहस्स जा होइ बल्लहा कइ वि पञ्च दिवइइं ।

सा किं छट्ठं भग्गइ कत्तो मिट्ठं च बहुअं न ॥ ७२ ॥

[बहुबल्लभस्य या भवति बल्लभा कथमपि पञ्च दिवसानि ।

सा किं षष्ठं मृगयते कुतो मृष्टं च बहुकं च ॥]

जो नायक अनेक प्रियाओंको अनुगृहीत करता है, उसकी जो कोई प्रिया हो वह पाँच दिन तक ही उसकी परीक्षा करती है । वह क्या छठे दिन तक

प्रतीक्षा करती है, कारण जो अनुकूल वा मधुर होता है उसे अधिक पाना सुरृतसापेक्ष है ॥ ७२ ॥

जं जं सो णिज्जाअह् अह्णोआसं महं अणिमिसच्छो ।

पच्छापमि अं तं तं इच्छामि अ तेण दीसन्तं ॥ ७३ ॥

[यद्यत्स निष्प्रायसद्भावकाशं ममानिमिषाक्षः ।

प्रच्छादयामि च तं तामिच्छामि च तेन इत्यमानम् ॥]

मेरे जिन जिन अद्भावकाशोंकी ओर वह एकटक देखता है, उन अद्भावकाशों को मैं प्रच्छादित भी करती हूँ, और फिर यह भी इच्छा करती हूँ कि वह उन्हें देखे ॥ ७३ ॥

दिढमण्णुदूणिआपे वि गद्धिओ दइअम्मि पेच्छद इमाए ।

ओसरइ वालुआमुट्ठि उच्च माणो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दृढमन्युद्गनयापि गृहीतो दयिते पश्यतानया ।

अपसरति थालुकामुष्टिरिय मानः सुरसुरायमाणः ॥]

देखो, कोपवश अत्यन्त व्यथित हो उसने प्रियतम से मान किया है, किन्तु वह मान थालुकामुष्टि की भाँति सुर-सुर कर अपसृत हो जाता है ॥ ७४ ॥

उअ पोम्मराअमरगअसंवलिआ णहअत्ताओ ओअरइ ।

णह सिरिकण्ठअमट्टु एव कण्ठिआ कीररिइछोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसंवलिता नभस्नलादवतरति ।

नभःश्रीकण्ठभ्रष्टेव कण्ठका कीरपंक्तिः ॥]

देखो, नभलक्ष्मीके कण्ठदेशसे अवतरित, पद्मराग एवं मरकतद्वारा संवलित कण्ठिकानामक हारपट्टीके समान आकाशतलसे शुकपंक्ति उतर रही है ॥ ७५ ॥

ण वि तह विपसवासो दोग्गच्चं मह जणेइ संतापं ।

आसंसिअत्थविमणो जह पणइज्जणो णिअत्तन्तो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्गन्थं मम जनयति सन्तापम् ।

आशंसितार्थविमना यथा प्रणयिजनो निवर्तमानः ॥]

मेरा विदेशमें वास एवं अपनी दुर्गति उतना सन्ताप नहीं उत्पन्न करती जितना प्रणयी जन आशंसित विषयसे विमुक्त वा विमना होनेके उपरान्त प्रत्यावर्त्तन कर संताप उत्पन्न करते हैं ॥ ७६ ॥

खन्धग्गिणा वणेसुं तणेहिं गामम्मि रक्खिओ पहिओ ।

णअरवसिओ णडिअइ सासुसपण एव सीएण ॥ ७७ ॥

[रूग्णान्निना घनेषु गृणैर्मि रथितः पथिकः ।

नगरोपिनः खेपने सामुशयेनेष शीतेन ॥]

जो पथिक वनोंमें स्थूल काष्ठानि द्वारा एवं ग्रामोंमें गृण द्वारा शीतमें अपनी रक्षा करता है वह नगरमें वास करने जाकर अनुशययुक्त शीत द्वारा जैसे खिल हो रहा है ॥ ७७ ॥

भरिमो से गद्दिआहरधुभसीसपद्दोलिरालआडलिअं ।

यअणं परिमलतरलिअभमरालिपद्दणफमलं य ॥ ७८ ॥

[स्मरामरतरपा गृहीताधरधुतशोर्पमघूर्णनशीलालकाकुलितम् ।

यदनं परिमलतरलितभमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

सुम्बनार्थ अधर गृहीत हो जानेपर, शीर्षकम्पनके साथ एवं कुण्डलघूर्णनसे आकुलित उसका मुख स्मरण करता हूँ, मानो वह परिमलके लोभसे तरलित अमरकुलद्वारा प्रकीर्ण पत्र कमलके समान दिखायी पदा या ॥ ७८ ॥

द्वल्लफलपद्धानपसाद्दिआणं छणवासरे सयत्तीणं ।

अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कद्दिअं य सोद्दग्गं ॥ ७९ ॥

[उरसाहतरलवस्त्रानप्रसाधितानां षणवासरे सपत्नीनाम् ।

आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

उसत्रके दिन उरसाहचाश्रयमें स्त्रानद्वारा प्रसाधित सपत्नीयोंके निकट केवल उस आर्याने ही मज्जनमें अनादर दिखाकर अपना सौभाग्य सूचित किया है ॥ ७९ ॥

द्धानहलिदाभरितान्तराहँ जालाहँ जालवलअस्स ।

सोहन्ति किलिच्चिरुण्टण कं कादिसी कअत्थं ॥ ८० ॥

[स्नानहरिद्राभरितान्तराणि जालानि जालवलयस्य ।

शोधयन्ती धुदऋण्टकेन कं करिष्यमि कृतार्थम् ॥]

स्नान-हरिद्रासे भरितान्तर सुम्बन द्वारा केशसम्भारजनीके जालोंको धुद वंशकण्टक द्वारा शोधित कर तुम किस सौभाग्यवान्को कृतार्थ करोगी ॥ ८० ॥

अहंसणेण पेम्मं अवेइ अहंसणेण चि अवेइ ।

पिसुणजणजम्पिपण चि अवेइ पमेअ चि अवेइ ॥ ८१ ॥

[अदर्शनेन प्रेमापैत्यतिदर्शनेनाप्यपैति ।

पिशुनजनजहिसतेनाप्यपैत्येवमेवाप्यपैति ॥]

प्रेम बिना देखे दूर हो जाता है, अत्यन्त देखनेपर भी दूर हो जाता है, खलों की कुवाणीसे भी दूर हो जाता है और अनायास भी दूर हो जाता है ॥८१॥

अहंसणेण महिलाअणस्स अहंसणेण णीअस्स ।
मुक्खस्स पिप्पुणअणजम्पिणएण एमेअ वि खलस्स ॥ ८२ ॥
[अदर्शनेन महिलाअनरयातिदर्शनेन नीघस्स ।
मूर्खस्य पिप्पुनजनजत्पितेनैवमेवापि खलस्य ॥]

महिलाओंका प्रेम बिना देखे, नीचोंका प्रेम अधिक देखे ।जानेपर, मूर्खोंका प्रेम दुष्टोंके वाक्य से पूर्व बलका प्रेम अकारण ही दूर हो जाता है ॥ ८२ ॥

पोट्टपडिण्हिं दुःखं अचिच्छद्दइ उण्णएहिं होऊण ।
इअ चिन्तआणं भण्णे थणाणं कसणं मुहं जाअं ॥ ८३ ॥
[उदरपतिताभ्यां दुःखं स्वीयत उन्नताभ्यां भूत्वा ।
इति चिन्तयतोर्मन्ये स्तनयोः कृष्णं सुखं जातम् ॥]

पहले उन्नत रहनेपर भी प्रसवके अन्तमें उदरपर्यन्त गिर जानेपर भी कष्टमें रहना होगा; ऐसा लगता है कि यही सोचकर दोनों स्तनोंका अगला भाग काटा हो गया है ॥ ८३ ॥

सो तुज्झ कए सुन्दरि तह छीणो सुमहिला हलियउत्तो ।
जह से मच्छरिणीएँ वि दोशं जाआएँ पडिचण्णं ॥ ८४ ॥
[स तव कृते सुन्दरि तथा क्षीणः सुमहिलो हालिकपुत्रः ।
यथा तस्य मासरिण्यापि दौत्यं जायवा प्रतिपन्नम् ॥]

हे सुन्दरि, तुम्हारे लिए यह रूपवद्भार्यं हालिकपुत्र इतना क्षीण हो गया है कि उसकी जायाने मासरिणी होनेपर भी उसके लिए स्वयं दूतीका कार्य करना स्वीकार किया है ॥ ८४ ॥

दक्खिणणेण वि एत्तो सुहअ सुहावास अहअ द्विअआइं ।
णिक्कइअवेण जाणं गओसि का णिण्डुदी ताणं ॥ ८५ ॥
[दाक्षिण्येनाप्यागच्छन्सुभग सुखयस्यस्माकं हृदयानि ।
निष्कैतवेन चासां गतोऽसि का निर्द्वैतिस्तासाम् ॥]

हे सुभग, दाक्षिण्यवश हमलोगों के निकट उपस्थित होकर भी हमलोगों को इतना सुखी करते हो और जिनके निकट अकपट ही चले जाते हो उनको न जाने कितना आनन्द होता होगा ॥ ८५ ॥

एकं पहरुद्विषणं हस्तं मुहमारुपण वीजन्तो ।

सो वि हसन्तीर्षे मप गहिओ वीण कण्ठमि ॥ ८६ ॥

[एकं प्रहारोद्विग्नं हस्तं सुखमारुतेन वीजयन् ।

सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

प्रहारकार्यमें उद्विग्न मेरे एक हाथको सुखमारुतद्वारा वीजन किये जानेपर मैंने हँसते-हँसते दूसरे हाथ द्वारा उसका कण्ठग्रहण कर लिया ॥ ८६ ॥

अवलम्बितमानपरम्मुहीर्षे पन्तस्तमाणि विअस्स ।

पुट्टपुलउग्गमो तुह कहेइ संमुहट्टिअं द्विअअं ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या भागच्छनो मानिनि प्रियस्य ।

पुट्टपुलकौट्टमस्तव कथयति सम्मुखस्थितं हृदयम् ॥]

हे मानिनि, मान अवलंबन कर पराङ्मुखी होनेपर भी तुम अपने पीठपर रोमांचके उद्गमद्वारा भागमनकारी प्रियतमके निकट अपना हृदय सम्मुखस्थित रूपसे ही सूचित करती हो ॥ ८७ ॥

जाणइ जाणायेउं अणुणअविह्विअमाणपरिसेसं ।

अहरिकम्मि वि विणआवलम्बणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविद्रापितमानपरिशेषम् ।

विज्ञनेऽपि विनयावलम्बनं सैव कुर्वती ॥]

एकान्तमें सुरतके समय विनयका अवलंबनकर प्रियतमके अनुनयसे दूरीकृत भागके परिशिष्टको स्थापित करना केवल वही जानती है ॥ ८८ ॥

मुहमारुपण तं कल्ल गोरअं राहिआर्षे अघणेन्तो ।

एताणं वल्लवीणं अण्णाण वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[सुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकया अपनयन् ।

एतासां बह्वीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥]

हे कृष्ण, तुम अपने सुखमारुतद्वारा राधिकके बधुसे धूलि भयवा गोधूलि हटाकर, पुरोवर्तिनी अन्यान्य गोपीगणोंका गौरव वा गौरवाहरणकरते हो ॥ ८९ ॥

किं दाय कआ अहया करेसि कारिसि सुहअ एत्ता हे ।

अवराहाणं अह्वज्जिर साहसु कअए खमिज्जन्तु ॥ ९० ॥

[किं तावत्कृता भयवा करोपि करिष्यासि सुभगोदानीम् ।

अपराधानामलज्जाशील कथय कतरे चन्दन्ताम् ॥]

हे सुभग, जिन अपराधोंको तुमने किया है, क्षमा कर रहे हो एव आगे करोगे, हे निर्दम, उनमेंसे किन अपराधोंको मैं क्षमा कर सकती हूँ, यह बताओ तो ॥

णूमेन्ति जे पदुस्तं कुविभं दासा व्व जे पसाअन्ति ।
ते व्विअ महिल्लाणं पिआ सेसा सामि व्विअ घराआ ॥ ९१ ॥

[गोपायन्ति ये प्रभुस्य कुवितां दासा इव ये प्रसादयन्ति ।
त एव महिलानां प्रिया शेषा स्वामिन एव वराका ॥]

जो पुरुष का-ता विषयमें अपना प्रभुस्य गोपन कर रखते हैं एव जो दासकी भाँति कुविता कान्ताको अनुनय द्वारा प्रसन्न रखते हैं, वे ही महिलाओंके प्रिय होते हैं, और इतर पुरुष वित्त्य स्वामी शब्द द्वारा पुकारे जाते हैं ॥ ९१ ॥

तइआ कअग्घ महुअर ण रमसि अण्णासु पुप्फजाईसु ।
यद्धफलभारिगुरुई मालई पद्धि परिचअसि ॥ ९२ ॥

[तदा कृतार्थं मधुकर न रमसेऽन्यासु पुष्पजातिषु ।
यद्धफलभारगुर्वी मालतीमिदानीं परित्यजसि ॥]

हे मधुकर, उस समय कृमिल होकर भयवा मालतीके प्रति आश्चर्यस्य तुम अ-दान्य पुष्पोंमें अनुरक्त नहीं हुए। अब यद्धफलभारमे विनत मालतीका परित्याग कर रहे हो ॥ ९२ ॥

अविअहपेक्खणिज्जेण तक्खणं मामि तेण दिट्ठेण ।
सिचिणअपीएण थ पाणिएण तण्ह व्विअ ण फिट्ठा ॥ ९३ ॥

[अद्वितृष्णाप्रेषणीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन ।
स्वप्नपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव न अष्टा ॥]

हे मामी, स्वप्नमें पीये हुए जल द्वारा व्यासके मित्रनेकी भाँति, अतृप्तमयनसे लसे देवनेकी मेरी व्यास दूर नहीं हुई है ॥ ९३ ॥

सुअणो जं वेसमलंकरेइ तं विअ करेइ पयसन्तो ।
गामासण्णुम्मूलिअमहावडट्टाणसारिच्छं ॥ ९४ ॥

[सुजनो य देशमलकरोति तमेव करोति प्रवसन् ।
ग्रामास-नोन्मूलितमहावटस्थानसदृशम् ॥]

अच्छे व्यक्ति जिस देशको अपने निवास द्वारा अलकृत करते हैं उसी देशसे

प्रवामार्थं जाकर ये ही प्रामासन्न उन्मूलित महावटवृक्षस्थानकी भाँति उसे दुग्द्वयक कर डालते हैं ॥ ९४ ॥

सो णाम संभरिज्जइ पञ्चसिओ जो खणं पि द्विअथाहि ।
संभरिअव्यं च कअं गअं च पेम्मं निरात्थम्यं ॥ ९५ ॥

[स नाम संस्मर्यते प्रअथो यः खणमपि हृद्वात् ।
स्मर्तव्यं च कृतं गत च प्रेम निरात्थम्यम् ॥]

स्मरण रखनेकी बात उमके ही विषयमें अँपती है, खणमरके लिए भी हृदयमे त्रिमके निकल जानेकी संभावना है । त्रिप्त खण प्रेम स्मरणबोरप हो जाता है, उसी खण वह आलस्यनशून्य हो जाता है ॥ ९५ ॥

णासं च सा कपोले अज्ज वि तुह दन्तमण्डलं वाला ।
उन्निमण्णपुल्लअचरयेढपरिगअं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमिव सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डलं वाला ।
उन्निमण्णपुल्लकवृत्तिवैष्टपरिगत रक्षति वरायी ॥]

वह दीना वाला आज्ञात्मक अपने कपोलपर तुम्हारे द्वारा दिये हुए मण्डलकृति दन्तचक्रको न्यासके रूपमें मगहालकर रखे हुए है, जैसेकि वह चतस्थान चतुर्दिग् में विकसित रोमांचवृत्ति वेदा द्वारा वेष्टित है ॥ ९६ ॥

ट्टिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।
कज्जाहं द्विअ गरुआई मामि को वट्ठहो फस्स ॥ ९७ ॥

[दृष्टाश्चूता आघ्राता सुरा दक्खिणाणिलो सोद ।
कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को वट्ठमः कस्य ॥]

आम्राँकुर देखा गया है, सुरा पीयी गयी है एवं दक्षिणपवनको भी सहन किया गया है । उसका अर्थान् नायकका कार्यसमूह ही गुरुतर प्रतीत होता है, अतः हे मामी, कौन किसका प्रिय है ॥ ९७ ॥

रमिऊण पअं पि गओ जाहे उचरुहिऊं पडिणित्तो ।
अहअं पउत्थपइआ व्य तन्पणं सो पवासि व्य ॥ ९८ ॥

[रमवा पद्मपि गतो यदोपगूहितुं प्रतिनिष्ठत ।
अहं प्रोषितपतिकेव तरक्षणं स प्रवासीव ॥]

रमणके उपरांत वह एक दग भी चलकर जब आलिंगनके लिए प्रतिनिवृत्त होता है, तब मैं अपनेको प्रोषितपतिका एवं उसको प्रवासी समझती हूँ ॥ ९८ ॥

अविद्वेषद्वेषेच्छपिञ्जं समसुहृदुःखं विद्वेषणसम्भावं ।

अण्णोण्णद्विअअलग्गं पुण्णेहिँ जणो जणँ लहइ ॥ ९९ ॥

[अविद्वेषद्वेषणीयं समसुखदुःखं विद्वेषणसद्भावम् ।

अण्योण्यद्वयलम्न पुण्यैर्जनो जनं लभते ॥]

जो पुरुष प्यासे नयनोंसे दर्शनीय, सुखदुःखके समय सद्भाववितरणमें समर्थ एवं परस्परके हृदयोंमें लग्न होने योग्य है, ऐसे पुरुषको कोई स्त्री बड़े भाग्यसे ही पाती है ॥ ९९ ॥

दुःखं देन्तो वि सुहृ जणेइ जो जरस वल्लहो होइ ।

दइअणहदूणिआणं वि वहइ थणाणँ रोमञ्चो ॥ १०० ॥

[दुःखं ददपि सुखं जनयति यो यस्य बल्लभो भवति ।

दयितनल्लदूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाञ्चः ॥]

जो जिसका प्रिय है, वह दुःख दिये जानेपर भी सुख उत्पन्न करता है ।

प्रियके नल्लद्वारा सिद्ध स्तनद्वय भी रोमांचमें फूल जाते हैं ॥ १०० ॥

रसिअजणद्विअअइए कवइच्छलपमुहसुकइणिम्मविप ।

सप्तसअम्मि समत्तं पढमं गाहासअं एअं ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवरसलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं प्रथमं गाथाशतकमेतत् ॥]

कविवरसलप्रमुखसुकविरचित, रसिकोंके हृदयहार सप्तशतीमें यह प्रथम

गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

द्वितीय शतक

घरिओ घरिओ चिअलइ उअएसो पिहसहीहिं दिज्जस्तो ।

मअरद्धअथाणपहारजजरे तीएँ द्विअअग्गि ॥ १ ॥

[ध्रुनो ध्रुनो विगल्युपदेशः प्रियसखीभिर्दीयमानः ।

मकरध्वजवाणप्रहारजजरे तस्या हृदये ॥]

कामदेवके वाण-प्रहारसे जर्जरित उसके हृदयमें प्रियसखियोंद्वारा दीयमान मान करनेका उपदेश बारबार ग्रहण करने पर भी विगलित हो जाता है ॥ १ ॥

तड्संदिअणीडेक्कन्तपीलुआरप्पखणेक्कदिण्णमणा ।

अगणिअदिणियाअभया पूरेण समं चहइ काई ॥ २ ॥

[तटसंस्थितनीडैकान्तशावकरणैकदत्तमनाः ।

अगणितविनिपातभया पूरेण समं वहति काकी ॥]

तटसंस्थित नीड़में वर्तमान शावककुलके रक्षणमें एकान्त मनोनिवेशकारिणी काकी तट तरुके मञ्जनान्तर अपने गिरनेके भयको न गिनकर जलप्रवाहके साथ हूँसती जा रही है ॥ २ ॥

बहुपुप्फभरोणामिअभूमीगअसाह सुणसु विण्णस्सि ।

गोलातड्विअडकुडइ महुअ सणिअं गलिज्जासु ॥ ३ ॥

[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशाख शृणु विशसिम् ।

गोदातटविकटनिकुञ्जमधूरु शनैरंगलिप्यसि ॥]

हे गोदावरीके तटस्थ विकटनिकुञ्जस्थित मधूकवृक्ष, तुम्हारी शाखाएँ अनेक पुष्पोंके भारसे पृथ्वीपर्यन्त झुक गयी हैं, तुम मेरी विशति सुन लो— तुमको धीरे-धीरे विगलितपुष्प होना पड़ेगा ॥ ३ ॥

णिप्पच्छिमाई असाई दुःखालोआई महुअपुप्फाई ।

चीए वन्धुस्स व अट्टिआई रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्पश्चिमान्यसती दुःखालोकानि मपूकपुष्पाणि ।

धितार्या वन्धोरिषारपीनि रोदनशीला समुच्चिनोति ॥]

भसती चित्तमें अवस्थित संशुभ्रोंके सर्वपरिशिष्ट अस्थिममूहकी नाईं
दुःखावलोकित सर्वपरिशिष्ट मधूक पुष्पसमूह रोदन करते-करते घयन
कर रही है ॥ ४ ॥

ओ द्विभ्रम मडहसरिआजलरअहीरन्तदीहदारु द्य ।

ठाणे ठाणे द्विभ्र लग्गमाण केणाचि डडिहहसि ॥ ५ ॥

[हे हृदय स्वल्पसरिजलरयद्वियमाणदीर्घदारुवत् ।

स्थाने स्थाने एव लगरकेनापि धचयसे ॥]

हे हृदय, स्वल्पतोया नदीके जलके वेगमें क्षिपते हुए दीर्घ काष्ठकी भाँति
जगह-जगह ठोकर स्थानेपर भी किसीके द्वारा तुम दग्ध होओगे ॥ ५ ॥

जो तीर्थ अधरराओ रत्त उव्यासिओ पिअभमेण ।

सो द्विअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेसु संकन्तो ॥ ६ ॥

[यस्तस्या अधररागो रात्राबुद्धासित प्रियतमेन ।

- स एव दृश्यते प्रातः सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

उसका जो अधरराग रातमें प्रियतमद्वारा निरन्तर अधरपानवश पोंछ डाला
गया है, वही रक्तिमा प्रातः काल होनेपर सपत्नियोंके नेत्रोंमें संक्रान्त देखी
जाती है ॥ ६ ॥

गोलाअडट्टिअं पेड्डिऊण गहवइसुअं हलिअसोण्हा ।

आढत्ता उत्तरितुं दुःखुत्तारापे पअंघीए ॥ ७ ॥

[गोदावरीतटस्थित प्रेक्ष्य गृहपतिसुतं हलिकस्तुषा ।

: आरब्धा उत्तरीतुं दुःखोत्तरया पदभ्या ॥]

हालिककी पुत्रवधूने गृहपतिपुत्र अर्थात् अपने कान्तको गोदावरीतटपर
खड़ा हुआ देखकर अत्यन्त कष्टसे उत्तरीमागंसे अवतरण करना प्रारम्भ किया ॥

चलणोआसणिसण्णस्स तस्स भरिमौ अणालवन्तस्स ।

पाअङ्कुट्टावेड्डिअकेसदिहाअहणसुद्धेहिं ॥ ८ ॥

[चरणावकाशनिपण्णस्य तस्य स्मरामोऽनालपतः ।

पादाङ्कुट्टावेष्टितनेशदढाकर्पणसुप्तम् ॥]

मेरे चरणोंमें सुपचाप बँडे हुए एवं भयसे निर्वाकू उसके मनमें मेरे
पादाङ्कुट्टद्वारा आवेष्टित उसके वेशगुच्छके रद आकर्षणसे जो सुप्त वापस हुआ
था, वही मुझे याद आ रहा है ॥ ८ ॥

फालोर् अच्छमहं च उअह कृगामदेउलद्वारे ।
 हेमन्तभालपद्विभो विज्झाअन्तं पलालग्गि ॥ ९ ॥
 [पाठपायः पद्ममहमिष परवत् कुग्रामदेवगुलद्वारे ।
 हेमन्तकालपधिको विष्णायमानं पलालाग्गिम् ॥]

गुम लोग देवो, सुरे ग्रामके मन्दिर द्वारपर हेमन्तकालीन पधिक निर्वाण-
 प्राय पलालाग्गिको भालकी भौंनि पाठ रहा है ॥ ९ ॥

कमलाभरा ण मलिभा हंसा उड्ढाविमा ण अ पिउच्छा ।
 केणोवि गामतडाप् अन्मं उत्ताणअं च्चूढं ॥ १० ॥
 [कमलाभरा न मृदिता हंसा उड्ढाविता न च विवृष्वमः ।
 केनापि ग्रामनद्यागे अभ्रमुत्तानितं क्षितम् ॥]

हे सुभा, नहीं जानता गाँवकी तल्लैयामें आशको तानकर किसने गिरा
 दिया है, तथापि वहाँपर कमलकुल उपमर्दित नहीं हुआ है, हंस भी वहाँसे
 उड़ नहीं गये हैं ॥ १० ॥

केण मणे भग्गमणोरहेण संलाविअं पवासोत्ति ।
 सविसाई च अलसाअप्पित्ति जेण बहुआपे अद्दाई ॥ ११ ॥
 [केन मण्ये भग्गमनोरथेन संलापितं भगवत् इति ।
 सविषाणीवालसायन्ते येन नवपत्रा भद्धानि ॥]

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किमीने भग्नमनोरथ होकर भवासगमत्के
 सम्बंधमें धात किया है । इसी कारण, वधूके अंग-प्रायंगोने जैसे विपदग्र्य होनेसे
 कार्यपटुताको छोड़ दिया है ॥ ११ ॥

अज्जवि वालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिप्प जसोआप ।
 कळमुहपेसिअच्छं णिहुअं हसिअं चअचहृदि ॥ १२ ॥
 [अद्यापि वालो दामोदर इति इति जल्पिते यशोदया ।
 कृष्णमुखप्रेषितासं निमृतं हसितं मज्जवधूमिः ॥]

आजतक दामोदरका मेरे निकट मचपन ही रह गया है, यशोदाके देसा
 कहनेपर मज्जवधूटियों कृष्णके मुखकी शोरझौल फिराकर गोपनभावसे हँसी ॥ १२ ॥ ✓

ते विरला सप्पुरिस्ता जाण सिणेहो अदिणमुहराओ ।
 अणुदिअह वहमाणो रिणं च पुत्तेसु संकमइ ॥ १३ ॥

[ते विरला सापुरुषा येषां स्नेहोऽभिन्न मुखरागाः ।

अनुदिवसवर्धमान ऋणमिव पुत्रेषु संक्रामति ॥]

ये सापुरुष विरले ही हैं जिनका अमन्दीभूत मुखरागयुक्त स्नेह प्रतिदिन सवर्द्धित होकर विन् ऋणकी भाँति पुत्रोंमें भी सक्रान्त होता है ॥ १३ ॥

णश्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी ।

सरिसगोविआणं चुम्वइ कपोलपडिमागअं कण्हं ॥ १४ ॥

[नर्तनस्त्राघननिमेन पार्श्वपरिसंस्थिता निपुणगोपी ।

सदृशगोपीनां सुरवति कपोलप्रनिमागत कृष्णम् ॥]

पासमें खड़ी हुई निपुण गोपी नृत्यस्त्रावाके बहाने अनुराग सम्पन्न अपनी जैसी गोपियोंके कपोलपर प्रतिबिम्बित कृष्णकी प्रतिमाकी अलङ्कितभावसे चूम रही है ॥ १४ ॥

सन्वत्थ दिसामुहपसोरिप्पहिं अप्पोपणकडअलग्गेहिं ।

छलिं व्व मुअइ विञ्झो मेद्वेहिं विसंघटन्तेहिं ॥ १५ ॥

[सर्वत्र दिशामुलप्रसृतैरन्योन्यकटकलप्रै ।

छल्लीमिव मुञ्चति विन्ध्यो मेघैर्विसंघटमानै ॥]

पर्वतके प्रतिनिसम्बमें छत्र, बादमें विघटमान होकर सारी दिशाओंमें फैले हुए मेघसमूहको देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है मानो विन्ध्यपर्वत अपने शरीरसे सिन्धी छोड़ रहा है ॥ १५ ॥

आलोअन्ति पुलिन्दा पन्वअत्तिहरट्टिआ धणुणिसण्णा ।

हत्थिउल्लेहिं घ विञ्झं पूरिज्जन्तं णवग्गेहिं ॥ १६ ॥

[आलोकपन्ति पुलिन्दा पर्वतशिखरस्थिता धनुर्निषण्णा ।

हस्तिकुलैरिव विन्ध्यं पुर्यमाण भवाग्नै ॥]

पर्वतके शिखर पर धनुष लेकर बैठे हुए पुलिन्दगण विन्ध्य पर्वतको हस्तिकुल सदृश कृष्णकाय नव मेघमाला द्वारा परिपूर्णमाण देखते हैं ॥ १६ ॥

वणद्वमसिमइलङ्को रेहइ विञ्झो गणेहिं धजलेहिं ।

खीरोअमन्थणुच्छलिअदुञ्जसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[वनद्वयमयीमलिनाहो राजते विन्ध्यो धनैर्धवलै ।

खीरोदमयनोच्छलितदुग्धसिक्च इव महुमधन ॥]

दावाग्निही मसि द्वारा मलिनित देह वाला विन्ध्याचल वपल मेघसमूह

द्वारा आभूत होकर, चौरसागरके मथनमें उछाले हुए दुग्ध द्वारा सिक्त मधु मथनविष्णुकी भक्ति शोभा पा रहा है ॥ १७ ॥

चन्दीअणिह्रअवन्धचविमणाइ चि पकलो त्ति चोररुज्जा ।

अणुरापण पलोइओँ, गुणेषु को मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥

[यन्था निहितधान्यवविमनस्कयापि प्रवीर इति चोरपुत्रा ।

अनुरागेण प्रलोकितो गुणेषु को मत्सरं वहति ॥]

धान्यत्रोंके मारे जाने पर विमनस्का चन्दिनी युवती चोर युवकको शौर्यादि-
गुण सम्पन्न प्रवीर समझकर अनुरागमे देख रही थी—गुणवैभव देखने पर
मात्सर्य प्रदर्शन कौन करता है ॥

अज्ज कइमो पि दिअहो वाहवहू रुचजोव्वणुम्मत्ता ।

सोहगं घणुरुम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥

[अथ कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपवौवनोन्मत्ता ।

सौभाग्यं धनुस्तष्टवक्षलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

आज कितने दिन हो गए, रूप एवं वौचनमें उन्मत्त व्याधवधू धनुके सूक्ष्म-
स्वक्के निचेपके सहाने अपने सौभाग्यको रथ्यापर निक्षेप कर रही है ॥ १९ ॥

उक्खिप्यइ मण्डलीमारुण गेहङ्गणाहि वाहीय ।

सोहनवअवडाअ व्व उअह घणुरुम्परिञ्जोली ॥ २० ॥

[उरिष्यते मण्डलीमारुतेन गेहाङ्गणाद्रवाधस्त्रियाः ।

सौभाग्यध्वजपताकेव परयत धनुः सूक्ष्मत्वशक्तिः ॥]

व्याधवधूके गृहाङ्गणसे अपने सौभाग्यके ध्वजपताकाह्विणी धनुकी सूक्ष्म-
स्वक्पंक्ति मण्डलवायुद्वारा उदायी जा रही है—देखो ॥ २० ॥

गअगण्डरथलणिह्रसणमअमइलीकअकरअसाहाहि ।

पत्तीअ कुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणं ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलीनिघर्षणमदमलिनीकृतकरजशाराभिः ।

आगच्छन्त्या कुलगृहाज्जातं व्याधस्त्रियापतिमरणम् ॥]

विताके घरसे छूटकर व्याधवधूने हार्थीके गण्डस्थलकेघर्षणसे उत्पन्न
मदद्वारा मलिनीकृत करज शालासमूहको देखकर अपने पतिके मृत्युको समझा था ॥

णववहुपेम्मत्तणुइओ णणअं पदमअरणीअ रक्कन्तो ।

आलिह्विअदुप्परिञ्जं पि णेइ रणं घणुं वाहो ॥ २२ ॥

[नववधूप्रेमतनूकृतः प्रथमं प्रथमगृहिण्या रचन् ।
तनूकृतदुराकर्षमपि नयत्परम्यं धनुर्घातः ॥]

नववधूके प्रेममें अत्यन्त कृततनु होनेपर भी व्याध प्रथमगृहिणीके प्रणयकी रक्षाकरनेके निमित्त तनुकृत एवं दुराकर्ष धनुषको अरुण्यमें बहन कर लेता है ॥ २२ ॥

हासाविभो जणो सामलीभ पढमं प्रसूभमाणाय ।
बल्लुहवापण अलं मम च्चि बहुसो भणन्तीय ॥ २३ ॥

[हासितो जनः रयामया प्रथमं प्रसूयमानया ।
बल्लभवादेनालं ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

प्रियतमकी बातोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं, अनेकवार ऐसा कहकर प्रथमप्रसवकारिणी रयामलाने सबको हँसाया है ॥ २३ ॥

कइजवरहियं पेम्मं ण त्थि विअ मामि माणुसे लोय ।
अइ ह्योइ कम्मस विरहो विरहे ह्योत्तमि को जिअइ ॥ २४ ॥

[वैतवरहितं प्रेम नास्त्येव मातुलानि माणुसे लोके ।
अथ भयति कस्य विरहो विरहे भवति को जीवति ॥]

हे मामी, मानवजगतमें कपटताशून्य प्रेम जैसे एकदम नहीं है—यदि ऐसा होता तो क्या किसीको विरह होता ? विरह होनेपर भी क्या कोई जीवित रहता ॥ २४ ॥

अच्छेरं च णिहिं विअसग्गे रज्जं थ अमअपाणं थ ।
आसि म्हे तं महत्तं विणिअंसणइंसणं तीय ॥ २५ ॥

[आश्चर्यमिव निधिमिव स्वर्गो राज्यमिवाभृतपानमिव ।
आसीदस्माकं तन्मुहूर्त्तं विनिवसनदर्शनं तथाः ॥]

विवलावरथामें डमका दर्शन मुझे उसी चण अद्भुतरूप, निधिप्राप्तिरूप, स्वर्गराज्यलाभरूप, यहाँतक कि अभृतपानरूप प्रतीयमान हुआ था ॥ २५ ॥

सा तुज्झ बल्लुह्वा तं सि मज्झ वेसो सि तीअ तुज्झ अहं ।
वाल्लभ फुडं भणामो पेम्मं किर बहुविआरं च्चि ॥ २६ ॥

[सा तव बल्लभा त्वमसि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तथाहम् ।
वाल्लक स्फुटं भणामः प्रेम किल बहुविकारमिति ॥]

वह अन्य रमणी तुम्हारी मित्रा है, तुम हमारे प्रिय हो, तुम उसके द्वेष्य हो

पुत्रों में तुम्हारा द्वेष है—हे बालक, स्पष्टतः कहती हूँ कि प्रेम अनेक प्रकारोंसे विकार युक्त होता है ॥ २४ ॥

अहं सञ्जालुक्षणी तस्स अ उम्मच्छरारुं पंम्मार्ह ।
सद्धिआमणो नि पिउणो अत्ताहि किं पावरापण ॥ २७ ॥
[अहं सञ्जालुक्षणी अहंमरवराणि प्रेमाणि ।
सखीजनोऽपि निपुणोऽपगच्छ किं पादरागेण ॥]

मैं स्वयं लज्जाशीला हूँ, उसका प्रेम भी अत्यंत उच्छट है एवं सखियों भी प्रेमाविकारमें अगम्यत निपुण हैं । अतः निषेध करती हूँ, पादरागप्रयोगकी आवश्यकता नहीं है ॥ २७ ॥

महुमासमायआह्वममहभरद्वंधारणिम्मरे रणणे ।
गाभइ विरहअपररौमदपद्धिममणमोहणं गोपी ॥ २८ ॥
[मधुमाममाहवाहृतमपुकासंकारनिभरेऽण्ये ।
गायति विरहापरावदपधिकमनोमोहन गोपी ॥]

यस्यन्त-वायुमें आहत हो भौरे भगवत्को संकारसे परिपूर्णकरते हैं । यहाँ उनके साथ साथ गोपी भी विरहापरायुक्तगदशा। आहृत पथिकोंके मन मुग्धकर गान गा रही हैं ॥ २८ ॥

तद्द माणो माणधणापें तीअ प्पमेअ दूरमणुयद्धो ।
जह से अणुणीअ पिओ पणम्माम विवम पउरथो ॥ २९ ॥
[तथा मानो मानधनया तथा प्यमेव दूरमनुबद्ध ।
यथा तस्या अनुनीय विष पक्काम प्प मंविता ॥]

मानधना उस प्रियाका मान इतनी दूरतक अनुबद्ध हुआ है कि उसका विष उसका अनुनय करनेके उपरान्त एक ही गाँव में प्रयासीकी भाँति हो गया है ॥ २९ ॥

सातोपें विअ सूरें धरिणी धरसाभिअम्स घेत्तून ।
णेच्छन्तस्स वि पाप धुअइ हसन्ती दसन्तस्स ॥ ३० ॥
[सातोःक एव सूरें गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीरवा ।
अविद्वगोऽपि पादौ धावति हसन्ती हसतः ॥]

सूर्यका आलोक रहते ही गृहिणी हँसमुख होकर हँसते हँसते अनिष्टयुक्त गृहस्वामीके दोनों चरणोंको धो बाल रही है ॥ ३० ॥

घाहरउ मं सहीओ तिस्सा गोत्तेण किं त्थ भणिप्पण ।
थिरपेम्मा द्दोउ जहिं तहिं पि मा किं पि थं भणह ॥ ३१ ॥

[ग्याहरतु मां सद्यस्तस्या गोत्रेण किमत्र भणितेन ।
स्थिरप्रेमा भवतु यत्र तत्रापि मा किमप्येनं भणत ॥]

अरी सखियो, उस (सपत्नी) के नामद्वारा मुझे पुकारता है तो पुकारने दो, उससे इसरूप पुकारेजानेपर मेरी क्या चति ? जिसतिसके प्रति वह स्थिरप्रेमा हो—तुमलोग उससे कुछ कहना मत ॥ ३१ ॥

रुअं अच्छीसु ठिअं फरिसो अद्धेसु जम्पिअं कण्णे ।
हिअअं हिअप्प णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ ३२ ॥

[रूपमपगोः स्थितं स्पर्शोऽङ्गेषु जल्पितं कर्णे ।
हृदयं हृदये निहितं वियोजितं किमत्र दैवेन ॥]

देव क्या हमारे नयनद्वयमें स्थित प्रियका रूप, अंगोंमें स्थित उसका संस्पर्श, कानोंमें निहित उसकी धातें एवं हृदयमें निहित उसके हृदय इन सबको मेरी भावनासे वियोजित करनेमें समर्थ होगा ? ॥

सअणे चिन्तामइअं काऊण पिअं णिमीलिअच्छीप्प ।
अप्पाणो उचऊढो पसिठिलवलआहिं वाहाहिं ॥ ३३ ॥

[शयने चिन्तामयं कृत्वा प्रियं निमीलिताप्या ।
आत्मा उपगूढः प्रशिथिलवलयाम्यं बाहूभ्याम् ॥]

नेत्र निमीलितकर शय्याकेऊपर वह कामिनी अपनेप्रियको चिन्तामयकर विरह प्रशिथिल बलययुक्त बाहुद्वयद्वारा अपना ही आलिंगन कर रही है ॥ ३३ ॥

परिहूप्पण वि दिअहं घरघरभमिरेण अण्णकज्जम्मि ।
चिरजीविप्पण इमिणा खविअहो द्दुक्काप्पण ॥ ३४ ॥

[परिभूतेनापि दिवसं दुग्दुग्दभ्रमणशीलेनान्वकार्यं ।
चिरजीवितेनानेन चपिताः स्मो दग्धकार्येन ॥]

दूसरेका कार्य-साधनेकेलिए सारेदिन एकघरसे दूसरे घर आ जाकर अज्ञान्वेपी दग्धकारकी भाँति पराभूत अपनी इस वृद्ध दग्धदेहद्वारा मैं उद्वेजित हो गयी हूँ ॥ ३४ ॥

घसइ जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेहदाणेहिं ।
तं चेअ आलअं वीअओ व्व अहरेण मह्लेइ ॥ ३५ ॥

[वसति यत्रैव खलः पोष्यमाणः स्नेहदानैः ।

समेवालयं दीपक इवाधिरेण मलिनयति ॥]

जिस घरमें स्नेहदानद्वारा खलजन संबर्द्धित होते हैं, स्नेहदानद्वारा पोषित दीपककी मूर्ति वे उसी घरको शीघ्र ही मलिन बनादेते हैं ॥ ३५ ॥

होन्ती वि णिष्फलञ्चिअ धणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।

गिह्हाअवसंतत्तस्स णिअथद्याहि व्व पट्टिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवन्त्यपि निष्फलैव धनञ्चद्धिर्भवति कृपणपुहपरस्य ।

ध्रीप्मातपसंतत्तस्य निजकच्छायेव पथिकंस्य ॥]

कृपणकी प्रभूत धनवृद्धि होनेपर भी यह प्रोष्मके आतप से संतप्त पथिककेलिप अपनी छायाकेनमान निष्फल सिद्ध होती है ॥ ३६ ॥

फुरिय वामच्छि तुय जइ पट्टिइ सो पिओ ज ता सुइरं ।

संमीलिय दाहिणअं तुइ अयि पट्टं पलोइस्सं ॥ ३७ ॥

[स्फुरिते वामाक्षि स्वयि यद्येव्यति स प्रियोऽथ तरसुचिरम् ।

संमील्य दक्षिणं त्वयैवैतं प्रेक्षित्ये ॥]

हे बायें नेत्र, तुम्हारे स्फुरित होनेसे यदि वह मिय आजही आज्ञाय तो मैं अपनी दायें नेत्रको मँदिरहकर केवल तुमसे बहुतदेरतक उसे देखूंगी ॥ ३७ ॥

सुणअपउरम्मि गामे हिण्डन्ती तुह कपण सा घाला ।

पासअसारिव्व्य धरं घरेण कइआ वि खज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शुनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव कृतेन सा घाला ।

पाशकशारीव गृहं गृहेण कदापि खादिष्यते ॥]

कुक्कुरबहुलग्राममें वह बाला तुम्हारेलिप इस घरसे उस घर जाते-जाते कभी न कभी पासाकी गोटी अथवा पाशमेंभावद्द सारिकापचीकीमूर्ति खा डाली जायगी ॥ ३८ ॥

अणणणं कुसुमरसं जं किर सो महइ महुअरो पाउं ।

तं णिरसाणं दोसो कुसुमाणं णेअ भमरस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्यं कुसुमरसं यत्किल स इच्छति मधुकरः पादुम् ।

तधीरत्तानां दोषः कुसुमानां नैव भमरस्थ ॥]

वह मधुकर जो अन्यान्य पुष्पोंसे रस चूसनेकी इच्छा करता है, इसमें रसशून्य पुष्पोंका ही दोष है, मधुकरका किसीप्रकार दोष नहीं है ॥ ३९ ॥

रत्थापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छप एत्तं ।
 दावणिहिपहिं वोहिं वि मङ्गलकलसेहिं व थणेहिं ॥ ४० ॥
 [रथ्याप्रकीर्णनयनोपला र्वां सा प्रतीक्षयते आयान्तम् ।

द्वारनिहिताम्यां द्वाभ्यामपि मङ्गलकलशाम्यामिव रतनाभ्याम् ॥]

राजपयकीभोर नयनपत्रको विस्तारित रत्नकरमी वह रमणी अपने
 लुबद्धयको मङ्गलकलशद्वयकी भाँति द्वारपर निहितकर तुम्हारे आगमनकी
 प्रतीक्षा कर रही है ॥ ४० ॥

ता रुण्णं जा ख्यइ ता छीणं जाव छिज्जप अङ्गं ।
 ता णीससिभं चराइअ जाव अ सासा पडुप्पन्ति ॥ ४१ ॥

[तावद्भुदितं यावद्भुद्यते तावच्छीणं यावच्छीयतेऽङ्गम् ।

तावन्नि शमितं चान्द्रया यावत् [च] आसा प्रमचभित् ॥]

जितनीदर रोया जासकता है उतनीदर अभागिन रोवी है, जितना चीज
 हुआ जा सकता है उसके अङ्ग उतने चीज हुए हैं एवं जितनीदर सौँस लेतीसे
 चल सकती है उतनीदर उसने उछ्वास लिया है ॥ ४१ ॥

समसोपखदुपखपरिवट्ठिआणं कालेण रुट्ठपेम्माणं ।
 मिहुणाणं मरइ जं तं खु जिअइ इअरं मुअं होइ ॥ ४२ ॥

[समसौख्यदुःखपरिवर्धितयोः कालेन स्वप्नेणोः ।

मिथुनपोर्त्रियते यत्तत्पल्लु जीवति इतरन्मृतं भवति ॥]

सुख एवं दुःखमें समानभावसे परिवर्द्धितहोकर कालान्तरमें इदमेममें
 आशुद्ध दम्पतिमेंसे जो एक मर जाता है, वस्तुतः वही जी जाता है एवं दूसरे
 शक्तिबोधद्वारा मृत गिना जाता है ॥ ४२ ॥

हरिहिइ पिअस्स णवचूअपल्लवो पदममअरिसणाहो ।
 मा खवसु पुत्ति पत्थाणकलसमुदसंठिओ गमणं ॥ ४३ ॥

[हरिप्यति प्रियस्य नवचूतपल्लवः प्रथममअरिसनाथः ।

मा रोहीः पुत्रि प्रस्थानकलशमुत्संस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, प्रस्थानमङ्गलकलशकेऊपर संस्थित प्रथम मङ्गरीयुक्त नवआम्र-
 पल्लव ही प्रियजनके गमनका हरण अथवा निवारण करेगा, अतः तुम रोना
 मत ॥ ४३ ॥

जो कहँ वि मद्द सहीहिं छिहं सदिऊण पेसिओ दिअए ।
 सो माणो चोरिअकामुअ व्व विट्ठे पिप णट्ठो ॥ ४४ ॥

[यः कथमपि मम सखीभिरिच्छद्रं लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।
स मानधोरकामुक इव इष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहरूप छिद्र देखकर सखियोंने मेरे हृदयमें जो मान प्रविष्ट करा दिया है, वह मान प्रियवरको देखते ही खोर कामुककी भाँति भाग गया है ॥ ४४ ॥

सहिआहिं भण्णमाणा थणप लग्गं कुसुम्भपुप्फं ति ।
मुज्जयहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइं ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्तने लग्नं कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवधूर्हस्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

स्तनमें क्या कुसुम्भ कुसुम लगा हुआ है ?—सखियों द्वारा ऐसा पृष्ठा जाने पर मुग्धवधूने स्तनपरसे नखचिह्नको हटानेकी चेष्टाकी जिससे सखियों हँस पड़ीं ॥ ४५ ॥

उम्मूलैन्ति घ हिअअं इमाइं रे तुह विरज्जमाणस्स ।
अवह्वीरणवसविसंठुल्लयलन्तणअणद्धदिट्ठाइं ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीष हृदयं ह्यमानि रे तव विरज्यमानस्य ।

अवघीरणवशविसंठुल्लयलनार्धरथानि ॥]

अरे तुम्हारे मेरेप्रति विमुखहोनेपर तुम्हारी उपेक्षावश लक्ष्यविहीन हो परावर्तनशील नयनार्द्रक्षिति मेरे हृदयको उन्मूलित कर रही है ॥ ४६ ॥

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिरं ण ह्योन्ति फिसिआओ ।
धण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमं ॥ ४७ ॥

[न मुञ्चन्ति दीर्घश्वासान्नरुन्ति चिरं न भवन्ति कृशाः ।

धन्यास्ता यासां बहुवल्लभ वल्लभो न खम् ॥]

हे बहुवल्लभ, तुम जिसके प्रिय नहीं हो—ऐसा कहकर जो तुम्हारे विरहमें दीर्घनिश्वास नहीं छोड़तीं, बहुतदेरतक रोदन भी नहीं करतीं एवं कृश भी नहीं होतीं—वे ही रमणी धन्य हैं ॥ ४७ ॥

निहालसपरिधुम्भिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ ।

कामस्स वि दुव्विसद्धा दिट्ठिणिआया सस्सिमुहीए ॥ ४८ ॥

[निहालसपरिधूर्मनशीलतिर्यावल्लभतारकालोकाः ।

कामस्यापि दुर्विपश्च इष्टिनिपाताः शक्तिमुख्याः ॥]

चन्द्रवदनाकी पक्षी हुईं दृष्टि मदनदेवके धैर्यकोभी तोड़ देती है क्योंकि यह दृष्टि अर्द्धतारकाके आलोकनिर्दामें अलस, परिपूर्णमान एवं मानवेतरभावसे प्रेरित ही दिखायी पक्षती है ॥ ४८ ॥

जीविभ्रसेसाइ मप गमिआ कहुँ कहुँ वि पेम्भदुहोली ।

एहिं विरमसु रे डहहिअभ मा रज्जसु कहिं पि ॥ ४९ ॥

[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेमदुदौली ।

इदानीं विरम रे दग्धहृदय मा रज्यस्व कुत्रापि ॥]

रे दग्धहृदय, मैंने किसीप्रकार जीवनमाश्रावशेष होकर प्रेमकी दूहौली अर्थात् निष्फल प्रेम प्रस्थि निर्वाहित की है, तुम अब विरत हो जाओ एवं अन्य किसीसे अनुराग मत करो ॥ ४९ ॥

अज्जाएँ णवणहक्खअण्णिरीक्खणे मद्यअजोव्वणुत्तुङ्गं ।

पडिमागअणिभणअणुत्पलच्चिअं होइ थणवट्ठं ॥ ५० ॥

[आर्याया नवनरक्षतनिरिचणे गुरुषौवनोत्तुङ्गम् ।

प्रतिमागहनजनयनोत्पलाक्षितं भवति स्तनपृष्ठम् ॥]

वररमणीके अत्यन्त गुरु एवं यौवनोत्तुङ्गस्तनपृष्ठ, उसके नूतन मल्लक्षत वर्णनके समय, उसके प्रतिविम्बित नयनपद्म द्वारा अर्चित हो रहा है ॥ ५० ॥

तं णमह जस्स यच्छे लच्छिमुहं कोरथहम्मि संक्रन्तं ।

दोसइ मअपरिहीणं सस्सिच्चिअं सूर्यच्चिअं व्व ॥ ५१ ॥

[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संक्रान्तम् ।

हरयते मृगपरिहीनं शशिच्चिअं सूर्यच्चिअं इव ॥]

उस नारायणको ही प्रणाम करो, जिसके वक्ष स्थितकौस्तुभमणिमें संक्रान्त लक्ष्मीदेवीका मुखका, सूर्यच्चिअमें प्रतिफलित मृगशून्य अर्थात् निष्कलङ्क चन्द्रच्चिअकी नाई शोभायमान दृष्टिगत होता है ॥ ५१ ॥

मा कुण पडियक्खसुहं अणुणेहि पिअं पसाअलोहिस्सं ।

अहगहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासिं व्व छिज्जिहिसि ॥ ५२ ॥

[मा कुर्व प्रतिपक्षमुखमनुनय प्रियं प्रसादलोभयुतम् ।

अतिगृहीतगुरुकमानेन पुत्रि राशिरिव ऋणा भविष्यसि ॥]

हे पुत्रि, शत्रुओंका मुख बदाना मत, अपने प्रसादलोत्प्रेरितको अनुनय-साध्य करो, नहीं तो अतिगुरुमानका ग्रहणकर दुःख (सोलनेके लिए माता आदि) राशिकी नाई ऋण एवं न्यून हो जाओगी ॥ ५२ ॥

विरहकरवत्तदूसहफालिञ्जन्तमिमि तीथ द्विअममिमि ।
अंसू कज्जलमइलं पमाणसुत्तं एव पडिदाइ ॥ ५३ ॥

[विरहकरवप्रदु सहपाठ्यमाने तरया हृदये ।

अश्रु कज्जलमलिनं प्रमाणसूप्रमिव प्रतिभाति ॥]

दु सह विरहरूप करवप्रदाता वापाठ्यमान उसके हृदयकेऊपर उसका कज्जलमलिन अश्रु प्रमाणसूप्रकी नाई प्रतिभात हो रहा है ॥ ५३ ॥

दुणिणरुत्तेवअमेअं पुत्तअ मा साहसं करिज्जासु ।
एत्थ गिद्धिताइँ मण्णे द्विअआइँ पुण्णे ण लभन्ति ॥ ५४ ॥

[दुर्निशेषकमेतापुत्रक मा साहसं करिष्यसि ।

अत्र निहितानि मन्ये हृदयानि पुननं लभ्यन्ते ॥]

दो पुत्रक, यह हृदय रूप निशेष वा अपेण दुर्निशेष कहा जा सकता है, अर्थात् तुम्हारे हृदयके फिर लौट पानेकी संभावना नहीं है, सुतरां तुम साहसपूर्ण कार्य करना मत । जान पड़ता है कि इस नायिकामें निहित मन फिर पाया नहीं जाता ॥ ५४ ॥

णिब्बुत्तरआ वि यह सुरअविरामट्टिइँ अआणन्ती ।
अविरअद्विअआ अण्णं पि किं पि अरिथ सि चिन्तेइ ॥ ५५ ॥

[निर्वृत्तरतापि षष्ठी सुरतविरामस्थितिमजानंती ।

अविरतहृदयान्यदपि किमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

अनुभूतामणा होनेपर भी षष्ठी सुरतावसागर क्या काना चाहिए, यह न जानकर अविरत हृदय लेकर, इसके बाद और कुछ है, ऐसा विचार करती है ॥ ५५ ॥

णन्दन्तु सुरअसुखरसतद्वायहराइँ सअललोअस्स ।
यदुकेअवमग्गाविणिम्मिआइँ येसाणं पेम्माइँ ॥ ५६ ॥

[नन्दन्तु सुरतसुखरसतृण्यपहराणि सकललोकस्य ।

बहुकैतवमारंविनिमितानि वेश्यानां प्रेमाणि ॥]

सभीके सुरतसुखरसकी तृण्यका अहरगकरनेवाला एवं अनेक प्रकारके कपटमार्गद्वारा रचित वेश्याओंका प्रेम रत्नकोंकेलिपु अभितन्वनीय हो ॥ ५६ ॥

अप्यत्तमण्णुदुक्खो किं मं किसिअत्ति पुच्छसि हसन्तो ।

पावसि जइ चलचित्तं पियं जणं ता तुह फहिस्सं ॥ ५७ ॥

[अप्राप्तमन्युदुःख किं मां कृतेति पृच्छसि हसन् ।

प्राप्तपसि यदि चलचित्तं म्रियं जनं तदा तव कथयिष्यामि ॥]

चित्तफोमजन्म दुःख कभी मुझे नहीं मिला है, इसीसे हँसकर पूछती हो, 'मैं कृपा क्यों हो गयी हूँ।' चलचित्त प्रिय जब मुझे मिल जाया तभी मुझारे प्रश्नका उत्तर दूंगी ॥ ५७ ॥

अचद्वत्थिऊण सहिजम्पिआहँ जाणं कएण रमिओसि ।

एआहँ ताहँ सोक्खाहँ संसओ जेहिँ जीअस्स ॥ ५८ ॥

[अपहरतदिखा सखीअल्पितानि येथां कृते न रमितोअसि ।

एतानि तानि सैख्यानि संशोप येअविस्व ॥]

जिन सुखोंकेलिप तुमने सखियोंकी बात न मानकर मेरे साथ रमण कर रही है, वे ही ये सारे सुख हैं। किन्तु इन सचचेद्वारा मेरा जीवन संशयापन्न हो जाता है ॥ ५८ ॥

ईसात्तुओ पई से रत्तिं महुअं ण देइ उच्चैउं ।

उच्चैइ अप्पण च्चिअ माप अइउज्जुअसुद्धाओ ॥ ५९ ॥

[ईर्प्याशीलः पतिस्तस्या राज्ञौ मधूकं न ददात्युच्चेतुम् ।

उच्चिनोरत्यात्मनैव मातरतिश्रुतुक्स्वभावः ॥]

ईर्प्यापरायणपति उसे रात्रिमें मधूकपुष्प नहीं चुनने देता। हे माँ, अप्रपन्न मरलस्वभाववाला वह पति अपने आपही मधूकचयन कर रहा है ॥ ५९ ॥

अच्छोडिअवत्थदन्तपत्थिप मन्थरं तुमं घच्च ।

चिन्तेसि थणहराआसिअस्स मज्झस्स वि ण भइं ॥ ६० ॥

[बलादाकृष्टवद्वार्धान्तप्रस्थिते मन्थरं त्वं मज्ज ।

चिन्तयसि स्तनभरायासितस्य मध्यपयापि न भज्जम् ॥]

भरी, बलान्ति आकर्षणपूर्वक प्रस्थानशीले, मन्थरगतिसे जा। स्तनभारसे कायासित मध्यका भज्ज हो सकता है, यह नहीं सोच रही हो क्या ॥ ६० ॥

उद्धच्छो पिअहँ जलं जइ जइ विरलङ्गुली चिरं पहिओ ।

पावालिआ वि तइ तइ धारं तणुइं वि तणुपइ ॥ ६१ ॥

[ऊर्ध्वार्धः विवति जलं यथा यथा विरलाङ्गुलिभिरं पथिकः ।

प्रयापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनूकरोति ॥]

ऊपरकी ओर तपन सटाकर हाथकी अङ्गुलियोंको विरलकर पथिक जैसे-

जैसे काष्ठ-विलम्बके साथ जलपान कर रहा है, प्याऊपालिका जैसे-वैसे ही चीणजलधाराको चीणतर कर जल ढाल रही है ॥ ६१ ॥

मिच्छाधरो पेषुच्छद्वादिमण्डलं सावि तस्स मुदमन्दं ।

तं चटुधं च करद्धं दोहं चि कामा यिलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥

[भिचाधरा प्रेषते मामिमण्डलं सापि तस्य सुखचन्द्रम् ।

तच्छटुकं च करद्धं द्वयोरपि कासा विलुम्पन्ति ॥]

भिचात्रीवी नायिकाके मामिमण्डलकी ओर दृष्टिपात कर रहा है, यह नायिका भी उसके सुखचन्द्रकीओर देखरही है । इस अधसरपर कौए दोनोंके चटुक एवं करद्ध अर्थात् भिचादान पात्र एवं भिचाग्रहण पात्रसे अन्नको ले भागते हैं ॥ ६२ ॥

जेण विणा ण जिविज्जद्द अणुणिज्जद्द सो कआयराद्धो वि ।

पत्ते वि णअरदाद्धे भण कस्स ण चल्लद्धो अग्गी ॥ ६३ ॥

[येन विना न जीव्यतेऽनुनीयते स कृतापराधोऽपि ।

प्राप्तेऽपि नगरदाहे भण करय न पचलभोऽग्निः ॥]

जिसे छोड़नेपर जीवनदापन संभव नहीं है, कृतापराध होनेपर भी उसे अनुनीत करना उचित है । यथाशे तो, सारेनगरके जलनेपर भी अग्नि किते प्रिय नहीं है ॥ ६३ ॥

चपकं को पुलइज्जउ कस्स कदिज्जउ सुहं च दुप्पवं धा ।

केण समं च हसिज्जउ पामरपउरे हवग्गामे ॥ ६४ ॥

[चक्रं कः प्रलोक्यतां करय कथ्यतां सुखं वा दुःखं वा ।

केन समं वा हस्यतां पामरप्रचुरे हतप्रामे ॥]

किमकी ओर मैं चक्रभावसे देखूँ, किससे सुखदुःखकी बातें कहूँ एवं इस पामरबहुल दुष्ट प्राम मैं किसके साथ परिहास करूँ ? ॥ ६४ ॥

फलहीयाहणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीय ।

असईअ मणोरहगन्धिणीअ हत्या यरहरन्ति ॥ ६५ ॥

[कार्पासीश्लेष्मकपर्णपुण्याहमङ्गलं लाङ्गले कुर्वाणाः ।

असत्या मनोरथगर्भिन्या हतौ परधरापेते ॥]

कपासका श्वेत पुत्रनेके शृंगारम्भदिवसकी मङ्गलक्रिया सत्यादन करनेकेसमय मनोरथधारिणी असतीके हस्तद्वय धरधरा रहे हैं ॥ ६५ ॥

पदिउत्तुरणसङ्काउलाहिँ असईहिँ वहलतिमिरस्स ।
 आइप्पणेण णिहुअं यडस्स सित्ताइँ पत्ताइँ ॥ ६६ ॥
 [पथिकच्छेदनशङ्काकुलाभिरसतीभिर्बहलतिमिरस्य ।
 आलेपनेन निमृत्त वटस्प सिक्तानि पत्राणि ॥]

अन्धकार बहुतबटबूचके पत्तोंको अन्धकार दूर करनेके लिए पथिकगण कहीं छेद न दें, इस आशङ्कासे आकुल असती झियोंने आलेपनद्वारा उन्हें क्षिपाकर सिक्त कर रखा है अर्थात् काकविष्टाकी आशङ्कासे पथिकगण माने पत्तोंका छेदन नहीं करते ॥ ६६ ॥

भज्जन्तस्स वि तुह सग्गामिणो णइकरअसाहाओ ।
 पाआ अज्ज वि धम्मिअ तुह कहँ धरणि विह छिवन्ति ॥ ६७ ॥
 [भज्जतोऽपि तव स्वर्गगामिनो नदीकरअसाहा ।
 पादावद्यापि धार्मिक तव कथ धरणीमेव स्पृशत ॥]

हे धार्मिक, स्वर्गगमनके अभिलाषी होकर तुम मदीतटस्थित करअबूचकी साहा दन्तधावनार्थ भ्रमकर रहे हो, किन्तु अभीतक तुम्हारे दोनों पैर पृथ्वीपर ही कैसे रये हैं ॥ ६७ ॥

अच्छउ दाव मणहरं पिआइ मुहदंसणं वइमद्दघं ।
 तग्गामछेत्तसीमा वि झत्ति दिट्ठा सुद्धाघेइ ॥ ६८ ॥
 [अस्तु ताव-मनोहर मियाया मुखदर्शनमतिमहार्घम् ।
 तद्ग्रामक्षेत्रसीमापि क्षत्ति इष्टा सुखवति ॥]

प्रेमसी के अति मूल्यवान मनोहर मुख दर्शनकी बात तो दूर रहे, उसके ग्रामकी क्षेत्रसीमा भी यदि कहीं अचानक दिख जाय तो यह भी मनमें सुख उत्पन्न करती है ॥ ६८ ॥

णिकम्ममाहिँ वि छेत्ताहिँ पामरो जेअ घघप वसइँ ।
 मुआपिअजाआसुण्णइअगेहदु फलं परिहरन्तो ॥ ६९ ॥
 [निष्कर्मणोऽपि क्षेत्रापामरो नैव मज्जति वसतिम् ।
 मृतमियजायाशून्यीकृतगेहदु स परिहारम् ॥]

प्याती जायाके मर जानेपर शून्य गृहके दुखको दूर करनेके लिए पामर कार्यशून्यक्षेत्रसे भी अपने घर नहीं जा रहा है ॥ ६९ ॥

इअहावाउत्तिण्णिअघरविघरपलोट्टसलिलधाराहिँ ।
 कुट्टुलिहिँओहिदिअहं रक्खइ अज्जा करअलोहिँ ॥ ७० ॥

[सप्तश्रावातो वृणीकृतगृहविवारप्रपत्तासलिलधाराभिः ।

कुक्ष्यलितितावधिद्विपसं रक्षापायां करतलैः ॥]

सप्तश्रावातमें 'वृणके उद्वजावेपर गृहविवारद्वारपर्यन्त जल बह रहा है, साधवी भाषां मिलिलिखित स्वामीके प्रवासकाल भवधिसूचक दिनसंख्याको दोनों हाथोंद्वारा रक्षा कर रही है ॥ ७० ॥

गोलाणरूप कच्छे चक्ष्यन्तो राह्वाह पत्ताइं ।

उप्फडइ मकाडो योफक्षपइ पोष्टं अ पिट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरी नद्याः कश्ये श्वर्गनराजिकायाः पत्राणि ।

उत्पतन्ति मकंटः लोकलशब्दं करोत्युदरं च ताटपति ॥]

गोदावरीके किनारे राजिकाका पत्र श्वर्गकर चन्द्र ऊड़ल रहे हैं, लोक शब्द कर रहे हैं एवं अपने पेट पीट रहे हैं [सकेत स्थानमें भयकी आशङ्का है] ॥ ७१ ॥

गहघरणा मुअसैरिहडुण्डुअदामं चिरं वदेऊण ।

घग्गसआइं णोउण णचरिअ अजाघरे यद्धं ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिभृहदृष्टादाम विमूढ्वा ।

वर्गशतानि नीत्थानन्तरमायां गृहे पदम् ॥]

गृहपतिने मृत महिषके बृहत् घण्टाकी मालाको अनेकदिन तक सुरक्षित रखकर शतशतपद्मार्थको खरीदकर भी, पूर्व सदश महिष न पाकर उस मालाको भाषांके भाषतनमें बाँध रखा । [सुभगा पूर्वपत्नीके आभूषणदिको अन्य प्रेयसीको देना उचित नहीं] ॥ ७२ ॥

सिद्धिपेदुणावअंसा वटुआ वाहस्स गविरी भमइ ।

गअमोत्तिअरइअपसाहणाणं मज्जे सवत्तीणं ॥ ७३ ॥

[सिद्धिपिच्छावतंसा यधूस्यांघस्य गर्विता भ्रमति ।

गअमोत्तिकरचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

मयूरपुच्छद्वारा विभूषित होकर भी व्याधवपू गर्वके साथ गजमुक्तासे निर्मित आभूषणोंको धारणकर सपत्नीयोंके बीच भ्रमण कर रही है ॥ ७३ ॥

वड्डुच्छिपेच्छिरीणं उड्डुह्विरीणं वड्डुममिरीणं ।

उड्डुह्विरीणं पुत्तअ पुण्णेहिं जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[वक्राक्षिप्रेक्षणशीलानां वक्रोद्धपनशीलानां वक्रभ्रमणशीलानाम् ।

वक्रहामशीलानां पुत्रक पुण्यैर्जनः रिपो भवति ॥]

हे पुत्रक, जो रमणी तिरछैकटाचसे देखनेवाली, वक्रवचनसे उद्दीपनशीला, वक्रगतिसे भ्रमणशीला एवं वक्रहँसी से हँसनशीलाका मिय होनेकेलिपु लोकोके पुण्यका बल होना भावरपक है ॥ ७४ ॥

भम धम्मिअ धीसत्थो सो सुणओ अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाअडविअडकुडङ्गयासिणा दुरिअसोहेण ॥ ७५ ॥

[भ्रम धार्मिक विस्त्रम्भः स श्रुनकोऽथ मारितस्तेन ।

‘ १ १ गोदातटविकटकुञ्जवासिना वससिहेन ॥]

हे धार्मिक, तुम प्रशान्तभावसे अन्यत्र भ्रमण करो, गोदावरीके तीरवर्ती विकटकुञ्जमें वास करनेवाले उस दस सिंघद्वारा वह कुप्ता आज ही मारा गया है ॥ ७५ ॥

वापरिपण भरिअं अन्धिअं कणऊरउण्णलरपण ।

फुकन्तो अविइहं सुम्यन्तो को सि देवाणं ॥ ७६ ॥

[वातेरितेन भृतमणि कर्णपूरोत्पत्तरमसा ।

फुकुवंप्रविसुण्णं सुम्बन्कोऽसि देवानाम् ॥]

वायुद्वारा उरिषसकर्णपुररूपमें व्यवहृतपद्मरागसे पूर्णनयनमें फूकार करने जाकर अतृप्तभिलापसे सुग्धन करनेवाले तुम देवोंमेंसे कोई देव हो ॥ ७६ ॥

सद्धि दुम्मेन्ति कलम्बाइं जह मं तद्ध ण सेसकुसुमाइं ।

पूर्णं श्मेसु दिअहेसु वहइ गुडिआधणुं कामो ॥ ७७ ॥

[सखि स्वधयन्ति कदम्बानि यथा मां तथा न शेषकुसुमानि ।

नूनमेषु दिवसेषु वहति गुटिकाधनुः काम ॥]

। अरी सखी, कदम्बके फूल हमें जितना मन कष्ट देते हैं, अन्य फूल उतना नहीं देते । वर्षाके दिनोंमें कामदेव निश्चय ही कदम्बकुसुमरूप गुटिका वा निषेपकारीधनुष व्यवहारमें ला रहे हैं ॥ ७७ ॥

णाहं दूईं अ तुमं पिओ सि को अम्ह परय अण्णारे ।

सा मरइ तुज्झ अअसो तेण अ धम्मपखरं भणिमो ॥ ७८ ॥

[नाहं दूती न खं मिय इति कोऽस्माकमथ व्यापारः ।

‘ १ १ सा निमतो तवायशस्तेन च धर्माचरं भणामः ॥]

मैं स्वयं दूती नहीं हूँ, तुम भी उसके मिय नहीं हो, सुतारों इसविषयमें हमलोगोंकी कुछ नहीं करना है । तब वह मारी जायगी और तुम्हारे अपवसात्री

बर्चा भी चलेगी, इसीसे मैंने खीबधनिवारणके निमित्त यह धर्मवार्ता
चलायी ॥ ७८ ॥

तीअ मुहार्हि तुह मुहं तुज्ज मुह्वाओ थ मज्ज चलणम्मि ।
हत्थाहत्थीअ गओ थइदुक्करआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुखात्तव मुखं तव मुखाच्च मम चरणे ।

हस्ताहस्तिकया गतोऽतिदुष्करकारकस्तिलकः ॥]

आयन्त दुष्कर कार्यकरनेवाली उस नायिकाका तिलक आलिङ्गन करते
समय उसके मुखसे तुम्हारे मुखमें एव प्रणतिके समय तुम्हारे मुखसे मेरे चरणोंमें
प्रतियोगिताभावसे हस्तान्तरित हो सलझ हुआ है ॥ ७९ ॥

सामाइ सामलिज्जइ अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।

जम्बूदलकअकण्णावअंसभरिण हत्तिअपुत्ते ॥ ८० ॥

[श्यामायाः श्यामलायतेऽर्धाधिप्रलोकनशीलाया मुलशोभा ।

जम्बूदलकृतकर्णावितसभ्रमणशीले हलिकपुत्रे ॥]

जम्बूकिसलयको कर्णावतंसरूपमें श्ववहृतकरनेवाले हालिकपुत्रको देखकर
अधबुले नयनोंसे देखनेवाली श्यामाकी मुलशोभा सौवली हो गई ॥ ८० ॥

दूइ तुमं विअ कुसला कक्खउमउआइं जाणसे चोळ्हुं ।

कण्णइअपण्णुरं जइ ण होई तइ तं करेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दूति त्वमेव कुशला कर्कशमृदुकानि जानासि चक्षुम् ।

कण्णयितपाण्डुरं यथा न भवति तथा त करिष्यसि ॥]

हे दूती, तुम्हीं यही कुशला हो, एव तुम्हीं जानती हो कि किस प्रकार
कर्कश एवं मृदुवचन बोलाजाता है, किन्तु देखो, उसे बात तो लगे पर वह
पीला न पढ़ जाय ॥ ८१ ॥

महिलासहस्सभरिण तुह दिअप सुहअ सा अमाअन्ती ।

दिअहं अणण्णकम्मा अहं तणुअं पि तणुअइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रकृते तव हृदये सुभग सा अमाअन्ती ।

दिवसमनम्यकर्मा अहं तनुकमपि तनुकरोति ॥]

हे सुभग, सहस्रों महिलाओंद्वारा भरे हुए तुम्हारे हृदयमें स्थान न पाकर
वह अन्य दैनिक कृत्योंको छोड़कर अपने कृश अहोंको कृशतर कर रही है ॥ ८२ ॥

रणमेत्तं पि ण फिट्ठइ अणुदिअह्विइण्णगरुअसंतावा ।

पच्छण्णपायसइे च्च सामली मज्ज दिअआओ ॥ ८३ ॥

[चञ्चमात्रमपि नापयारवनुदिवसवितीर्णगुरुकसंतापा ।

मच्छन्नपापशङ्खेव श्यामला मम हृदयात् ॥]

मच्छन्न पापकी भाशङ्काकी भौंति प्रतिदिन गुरु सन्ताप उत्पादन करके भी
वह श्यामा मेरे हृदयसे पृथक् वा अपघृत नहीं होती ॥ ८३ ॥

अञ्जना गार्हं कुचिआ अवऊहस्तु किं मुधा प्रसापसि ।

तुह मण्युसमुष्पाअर्पेण मज्झ माणेण वि ण कर्जं ॥ ८४ ॥

[अञ्जनाहं कुचिता उपगूह किं मुधा प्रसादयसि ।

तव मनुसमुत्पादकेन मम मानेनापि न कार्यम् ॥]

अरे अञ्ज, मैं तुमपर कुपित नहीं हुई हूँ, मेरा आलिङ्गन करो, मुझे वृथा
ही क्यों प्रसन्न करना चाहते हो । मेरी ओरसे तुम्हारे ऊपर कोप करनेवाले
मनका अवलम्बन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ ८४ ॥

दीहुहूपउरणीसासपआविओ^० वाहसलिलपरिसित्तो ।

साहेइ सामसवलं च तीर्णे अहरो तुह विओप ॥ ८५ ॥

[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वासप्रतप्तो चाप्पसलिलपरिसिक्क ।

साधयति श्यामशबलमिव तस्या अधरस्तव विपोने ॥]

तुम्हारे विरहमें उत्पन्न अधर दीर्घ, उष्ण तथा प्रचुरनिःश्वासे तप्त एवं
चाप्पजलसे परिसिक्क होकर मानो 'श्यामशबल' नामक व्रतविशेषका आचरण
कर रहा है [व्रत प्रतमें पहले अग्नि और यादमें जलके भीतर प्रवेश करने की
विधि है] ॥ ८५ ॥

सरप महज्जदाणं अन्ते सिसिराइं वाहिरुह्कारं ।

जाआइं कुविअसज्जणहिअसरिच्छाइं सलिलाइं ॥ ८६ ॥

[शारदि महाइदानामन्तः सिसिराणि वहिरुग्गानि ।

जातानि कुपितसज्जनहृदयसङ्घाणि सलिलानि ॥]

शारदकालमें महाइदसमूहोंकी अन्तराशि कुपित सज्जनहृदयके समान
भीतर शरितल, किन्तु बाहर गर्म रहती है ॥ ८६ ॥

आमस्स किंणु करिद्धिमि किं चोलिस्सं कहं णु होइदिइमिति ।

पडमुग्गमसाहसआरिआइ दिअअं थरहरेइ ॥ ८७ ॥

[आगतदय किं नु करिष्यामि किं घणामि कथं नुम विप्यति [इदम्] इति ।

प्रथमोऽत्रतसाहसकारिकाया इदं परधरायते ॥]

नायकके भा जानेपर मैं क्या कहूँगी, उसे क्या कहूँगी एवं कैसे अभिसार होगा ? ऐसा सोचकर प्रथमोद्भूतसादम अवलम्बनकरनेवालीका हृदय धरधर काँपता है ॥ ८७ ॥

णेउरकोटिविलगं चिउरं दद्वअस्स पाअपट्टिअस्स ।
द्विअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ती विअ फहेइ ॥ ८८ ॥
[नूपुरकोटिविलगं चिउरं ददितरय पादपतितरय ।
हृदयं प्रोपितमानमुन्मोचयन्त्येव कथयति ॥]

नूपुरके अग्रभागमें संलग्न पादपतितप्रियजनके केशका उन्मोचनकरके ही, वह नायिका अपने हृदयके मानयुक्त होनेकी सूचना दे रही है ॥ ८८ ॥

तुज्झङ्गराअसेसेण सामली तह खरेण सोमारा ।
सा किर गोलाऊले हाआ जम्बूकसाएण ॥ ८९ ॥
[तथाङ्गराग रोपेण रथामला तथा खरेण मुकुमारा ।
सा किल गोदाकूले स्नाना जम्बूकपायेण ॥]

मुकुमाराङ्गी वह रथामा तुम्हारे अङ्गरागरोप तीक्ष्ण जम्बुकपायद्वारा गोदा-वरीनदीके किनारे गइला भी गयी है ॥ ८९ ॥

अज्ज इवेअ पउत्थो अज्ज विअ सुण्ण माइँ जामाइँ ।
रथामुहदेउलचत्तराइँ अहं च द्विअआइँ ॥ ९० ॥
[अथैव प्रोपितोऽथैव शून्यकानि जातानि ।
रथामुलदेवकुलचत्तराण्यरमाकं च हृदयानि ॥]

आज ही वह नायक प्रवासाथं चला गया है और आज ही गाँवका मार्गमुण, देवकुल तथा प्राङ्गणसमूह एवं साथ-साथ हमलोगोंका हृदयसमूह शून्य हो गया है ॥ ९० ॥

चिरडिं वि अआणन्तो लोआ लोपहिँ गोरवन्भद्विअ ।
सोणारतुले व्य णिरखखरा वि रन्वेहिँ उम्मन्ति ॥ ९१ ॥
[वर्णावलीमप्यजानन्तो लोका लौकैर्गौरवाभ्यधिकाः ।
सुवर्णकारतुला इव निरक्षरा अपि स्कन्धैरद्व्यन्ते ॥]

अनेक व्यक्ति वर्णमालाके ज्ञानरहित अनेक व्यक्तियोंको गौरवमें अधिक समझकर, स्वर्णकारकी निरक्षरतुलाकी भाँति, कन्धेपर तुलाकर होने हैं ॥ ९१ ॥

आअमरग्गतकवोलं खलिअकयरजम्पिंरिं फुरन्तोट्टिं ।
मा छिवसु त्ति सरोसं समोसरन्ति विअं मरिमो ॥ ९२ ॥

[आताम्रान्तः कपोलां स्वलिताचरज्वरनशीलां स्फुरदोहीम् ।
मा स्फुरोति सरोपं समपत्तपन्तीं प्रियां स्मरामः ॥]

ईपय् ताम्रायमान कपोलविशिष्टा, स्वलिताचरमें ज्वरनकारिणी, स्फुरिता-
धा एवं 'सुसे दूना मत' कहकर रोपसहित भलग हटनेवाली अपनीमियाका
में स्मरण करता हूँ ॥ ९२ ॥

गोलायिसमोआरच्छलेण अप्पा उरम्मि से मुक्को ।
अणुअम्पाणिहोसं तेण वि सा वाढमुवज्झा ॥ ९३ ॥
[गोदावरी विषमावतारच्छलेनात्मा उरसि तरय मुक्का ।
अनुकम्पानिर्दोषं तेनापि सा गालमुपगृह्णा ॥]

गोदावरीका अवतरणस्थान विषम है, इसी बहाने नायिकाने अपने
शरीरको नायकके वक्षःस्थलपर छोड़ दिया एवं उसने भी अनुकम्पासे निर्दोष-
समझकर उसे प्रेमसे आलिंगित किया ॥ ९३ ॥

सा तुह सदत्थदिण्णं अज्ज धि रे सुहृअ गन्धरहिअं पि ।
उव्वसिअणअरघरदेवदे व्व ओमालिअं वहह ॥ ९४ ॥
[सा स्वया स्वहस्तदत्तामणापि रे सुमग गन्धरहितामपि ।
उहसितनगरगृहदेवतेव अवमालिकां वहति ॥]

हे सुमग, सम्प्रति गन्धरहित होनेपरभी, तुम्हारे हाथद्वारा पायी हुई
मालाको वह परित्यक्ता नगरगृहदेवताकी नाई, आज भी ढो रही है ॥ ९४ ॥

केलीअ धि रुसेउं ण तीरए तम्मि सुअविणअम्मि ।
जाहअपहिं व माए इमेहिं अवसेहिं अज्जेहिं ॥ ९५ ॥
[केव्यापि दयितुं न शक्यते तस्मिन्व्युत्थितये ।
याचितकैरिव मातरेभिरवशैरङ्गे ॥]

अरी माता, उसके वित्तव्ययुत्तहोनेपरभी, दूसरेद्वारा नीलाममें लायी
हुई वस्तुकी भाँति मेरे अवश अङ्गोंको केलिकेबहानेभी क्रुद्ध नहीं किया
जा सकेगा ॥ ९५ ॥

उप्फुह्तिआइ खेह्हुउ मा णं धारेदि होउ परिऊढा ।
मा जहणभारगहई पुरिसाअन्ती किलिम्मिहिइ ॥ ९६ ॥
[उप्फुह्तिरूपा खेह्हु मैनं धारयत भवतु परिणामा ।
मा जघनभारगुर्वी दुष्पापितं कुपंती कृमिप्यति ॥]

यह बालिका उरुचिका नामक क्रीड़ाकर खेले, इसे रोकना मत, इसे कुछ चीग होने दो, जिससे जघनभारकीगुदता लेकर विपरीतविहार करते समय क्लान्ति अनुभव न करे ॥ ९६ ॥

पउरञ्जुवाणो गामो मधुमासो जोअणं पर्दं ठेरो ।
जुण्णसुरा स्वाधीणा असई मा ह्योउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

[मधुरयुवा ग्रामो मधुमासो यौवनं पतिः स्वविरः ।
जोर्णसुरा स्वाधीना असती मां भवतु किं भ्रियताम् ॥]

गाँवमें अनेक युवक रहते हैं, मास भी मधुमास है, नायिकाका यौवन पूर्ण है, किन्तु उसका पति स्वविर है, सुरामी पुरानी है, जिसको इतनी स्वाधीनता है, यह युवती असती नहीं होगी तो क्या मरेगी ? ॥ ९७ ॥

यहुसो वि फदिज्जन्तं तुह वअणं मज्झ हत्थसंदिट्ठं ।
ण सुअं त्ति जम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[बहुदोऽपि कथ्यमानं तव वचनं मम हस्तसंदिष्टम् ।
न धृतमिति जल्पन्ती पुनरुत्तसतं करोष्यार्या ॥]

मेरेद्वारा प्रेरित तुम्हारी बात अनेक बार अनेक प्रकारसे उससे कहे जानेपर भी, 'यह नहीं सुना गया' ऐसा कहकर यह भार्या ही सैकड़ोंबार पुनरुक्ति कर रही है ॥ ९८ ॥

पाअडिअणेहसम्भावणिग्भरं तीअ जह तुमं दिट्ठो ।
संवरणचावडाए अण्णो वि जणो तह व्येअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसद्भावनिर्भरं तथा यथा त्वं इष्टः ।
संवरणव्याघृतया अन्योऽपि जनस्तथैव ॥]

स्नेहप्रकटन एवं पूर्णसद्भावसे नायिका जिसप्रकार तुम्हें भी देख रही है, प्रेमको छिपानेकेलिए बाध हो, वह अन्यदोस्तोंको भी उसीप्रकार देखती है ॥ ९९ ॥

गेहह पलोअह इमं पद्दसिअयअणा पइस्स अप्पेइ ।
जाआ सुअपदमुग्ग्मिण्णदन्तजुअलद्धिअं योरं ॥ १०० ॥

[गृहीत प्रलोकयतेदं महसितवदना पायुरपंपति ।
जाया सुतप्रपमोन्निष्ठदन्तयुगलाङ्कितं यदरम् ॥]

‘इसे ग्रहण करो एवं देखो’—पेसा कहकर जायाने पुत्रके प्रथमोद्गत युगदन्तद्वाराचिह्नित बेरफलको हँसते हुए पतिको समर्पित किया ॥ १०० ॥

रसिभजणहिअददप कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइप ।
सत्तसम्मि समत्तं यीअं गाहासअं पअं ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविबसलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं द्वितीय गाथाशतकमेतत् ॥]

कविबसल प्रमुख सुकविरचित रसिकजनोंके हृदयहार सप्तशतीमें यह द्वितीय गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥



तृतीय शतक

अच्छउ ता जणवाओ द्विअअं विअ अत्तणो तुह पमाणं ।

नह तं सि मन्दणेहो जह ण उवालम्भजोग्गो सि ॥ १ ॥

[भरतु तावज्जनवाओ हृदयमेवागमनस्तथ प्रमाणम् ।

तथा स्वमसि मन्दस्नेहो यथा नोपालम्भयोऽसि ॥]

लोग भयस्नेह कहकर तुम्हारी निन्दा करते हैं, वह घात तो जानै दो, उस विषयमें तो तुम्हारा हृदय ही प्रमाण है । तुम इतने मन्दस्नेह हो गए हो कि तुम तिरस्कारके पात्र भी नहीं रह गए हो ॥ १ ॥

अप्पच्छन्दपद्दाविर दुह्हल्लम्भं जणं वि मग्गन्त ।

आथासपद्देहिं भमन्त द्विअअ कइआ वि भज्जिदिसि ॥ २ ॥

[आत्मच्छन्दप्रधानशील दुर्लभलम्भं जनमपि मृगयमाण ।

आकाशपथैर्ग्रामदृहृदय कदापि भङ्गयसे ॥]

ऐ हृदय, तुम स्वेच्छासे प्रियजनकी प्राप्तिकी भाशामें दौड़ रहे हो, जिसकी प्राप्ति दुर्लभ है, उसके अन्वेषणमें तत्पर हुए हो, तुम आकाशमार्गमें विचरणशील हो गए हो । संभवतः ऐसा करनेसे तुम किसी समय टूटकर गिर पड़ोगे ॥ २ ॥

अद्वय गुणद्विअ लहुआ अद्वया गुणअणुओ ण सो लोओ ।

अद्वय खि णिग्गुणा या बहुगुणवन्तो जणो तस्स ॥ ३ ॥

[अथवा गुणा एव लघवोऽथवा गुणज्ञो न स लोकः ।

अथवास्मि निर्गुणा या बहुगुणवाञ्जनस्तस्य ॥]

संभवतः मेरे गुण ही लघु या अनादरणीय हैं, या वह व्यक्ति ही गुणज्ञ नहीं है, अथवा मैं ही गुणशून्य हूँ, अथवा उसका प्रिय व्यक्ति ही अनेक गुणोंसे सम्पन्न होगा ॥ ३ ॥

फुट्टन्तेण द्वि द्विअपण मामि कइ णिन्वरिज्जप तम्मि ।

आदंसे पडिविम्भं द्वि जम्मि दुःखं ण संकमइ ॥ ४ ॥

[स्फुटितापि हृदयेन मातुलामि कथं निवेद्यने तस्मिन् ।

आदर्शं प्रतिविम्बमिव परिमन्दु खं न संकमति ॥]

हे मामी, दुःखसे विदीर्यमान हृदय लेकर भी किस प्रकार उससे मनोव्यथा व्यक्त करूँगी ? दर्पण में प्रतिबिम्बकी नाई उसी व्यक्तिमें मेरा अनुभूत दुःख संक्रान्त हो जायगा न ॥ ४ ॥

पासासङ्की काओ णेच्छदि दिण्णं पि पद्दिअधरणीए ।
ओअन्तकरअलोगलिअवलअमज्झट्टिअं पिण्डं ॥ ५ ॥

[पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृह्णिया ।
अवनतकरतलावगलितवलयमभ्यस्थितं पिण्डम् ॥]

विरहकृष्टा पथिकवनिताद्वारा प्रदत्त पिण्डको अपने लटकेहुए करतलसे विगलित बलयके मध्यस्थित देखकर, पाशाशङ्कासे उद्दिग्ध काक उसे ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥

ओद्धिदिअद्दागमासंकिरीहिं सहिआहिं कुड्ढलिहिआओ ।
दोतिपिण्ण तहिं विअ चोरिआपे रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ६ ॥
[अवधिदिवसायमाशङ्किनीभिः सखीभिः कुड्यलिहिताः ।
द्वित्रास्तत्रैव चोरिकयारेखाः प्रोन्वयन्ते ॥]

प्रियतमके प्रयागमनकी अवधिदिवसको निकवर्ती समझकर सखियोंने दिवसगणनाकी अद्वित रेखाओंसे दोतीनको अलक्षित भावसेही पोंडू रखा है ॥ ६ ॥

तुह मुहसारिच्छं ण लहइत्ति संपुण्णमण्डलो विधिणा ।
अण्णमअं द्य घटइउं पुणो वि खण्डिज्जइ मिअड्डो ॥ ७ ॥

[तवमुखसादृश्य न लभत इति संपूर्णं मण्डलो विधिना ।
अन्यमयमिष घटपितु पुनरपि खण्डयते मृगाङ्क ॥]

‘आजतक चन्द्रमा तुम्हारे मुखके का सादृश्य प्राप्त न कर सका’, इसी कारण विधाता संपूर्ण मण्डल चन्द्रकोभी अन्य प्रकारसे निर्मितकरनेके लिए उसे खण्डित कर डालता है ॥ ७ ॥

अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए ।
पढम द्विअ दिअदद्वे कुड्ढो रेहाहिं चित्तलिओ ॥ ८ ॥

[अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया ।
प्रथम एव दिवसार्धे कुड्यं रेखाभिरिषप्रितम् ॥]

‘प्रियतम आज ही गया है, आज ही गया है, आज ही गया है’, इस

प्रकार गणनाकर प्रथम दिनार्द्धमें ही मेरी सपनीने गृहमिक्षिको रेखाङ्कन द्वारा चित्रित किया है ॥ ८ ॥

ण वि तद्द पढमसमागमसुरअसुद्धेपाविएवि परिओसो ।

जद्द घीअदिअहसविल्लखल्लिखण वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

[नावि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।

यथा द्वितीय दिवससविल्लखल्लिखिते वदनकमले ॥]

प्रथम समागममें सुरतसुखसे भी उस प्रकारका सुख नहीं मिला, जिस प्रकारका सन्तोष दूसरे दिन उसके सलज्ज अवलोकनसे भूषित वदनकमलको देखकर मिला था ॥ ९ ॥

जे सँमुद्दागअवोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिचिच्छोहा ।

अम्हँ ते मअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥

[ये समुत्थागतव्यतिक्रांतवलितप्रियप्रेषिताचिविचोभाः ।

अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

अन्य लोगोंके निकट जैसा हो होवे, हमारे निकट किन्तु प्रथमतः अनुनयार्थ समुत्थागत होकर तत्पश्चात् व्यतिक्रांत होनेके समय विचलित होकर प्रियतम जब विचोभित दृष्टि डालने हैं, तब वे मदनशर जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

इअरो जणो ण पायइ तुद्द जहणारुहणसंगमसुद्धेहिं ।

अणुद्दवइ फणअडोरो हुअवहवरुणाणँ माहण्णं ॥ ११ ॥

[इतरौ जनो न प्राप्नोति तव जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।

अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तुम्हारे जघनपर आरोहणरूप सङ्गमसुखकेलि अन्य कोई अनुभव नहीं कर पाता । केवल कनकसूत्रही अग्नि एव वरुणके माहात्म्यका अनुभव कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो जस्स विहयसारो तं सो देइ त्ति किं त्थ अउत्तेरं ।

अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहण्णं तइ सवत्तीणं ॥ १२ ॥

[यो यस्य विभवसारस्तं स ददातीति किमप्रारचर्यम् ।

अभवदपि खलु दत्त दौर्भाग्यं श्रया सपत्नीनाम् ॥]

जिसका जो वैभव है वह उसे ही देसकता है, इसमें क्या आश्चर्य ? किन्तु तुम्हारे पास जो नहीं है, ऐसा प्रियप्रणयमें वञ्चितता तुम सपत्नियोंको दे सके हो, यही आश्चर्यका विषय है ॥ १२ ॥

चन्द्रसरिसं मुहं से सरिसो अमअस्स मुहरसो तिरसा ।
 सकअग्गदरहसुजलचुम्बणअं कस्स सरिसं से ॥ १३ ॥
 चन्द्रसदृशं मुखं तस्याः सदृशोऽमृतस्य मुखसदृशतस्याः ।
 सकृच्चप्रहरभसोऽज्वलचुम्बनकं कस्य सदृश तस्याः ॥]

उसका मुख चन्द्रसदृश है, उसका अधररस अमृतके समान है, किन्तु उसके केशप्रहरके साथ वैगोज्वल चुम्बन किस वस्तु के तुल्य है? यह कहते नहीं बनता ॥ १३ ॥

उत्पण्णत्थे कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।
 चिरआलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जं ॥ १४ ॥
 [उत्पन्नार्थे कार्येऽतिचिन्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।
 चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हस्ति कार्यम् ॥]

उस फलभिमुख कार्यसे गुणदोषका अत्यधिक विचार काने जाकर, बहुतदेरतक केवल मन्द दिशाके प्रेक्षणद्वारा पुरुष कार्यको नष्ट कर देता है ॥ १४ ॥

वालअ तुमाहि अहिअं णिअअं विअ चहुहं महं जीअं ।
 तं तइ विणा ण होइ त्ति तेण कुविअं पसापमि ॥ १५ ॥
 [बालक स्वतोऽधिकं निजक्रमेव बलम मम जीवितम् ।
 तत्रव्या विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]

भरे बालक, मेरेलिपू मेरा अपना जीवन तुम्हारे जीवन से भी मिय है, वह जीवन तुम्हारे विना नहीं रहना चाहता; इस कारणसे कुपित तुम्हें प्रसन्न करनेकेलिपू उद्यत हुई हूँ ॥ १५ ॥

पत्तिअ ण पत्तिअन्ती जइ तुज्झ इमे ण मज्झ रुअईए ।
 पुट्ठीअ वाइविन्दू पुल्लउच्चेपण भिज्जन्ता ॥ १६ ॥
 [प्रतीहि न प्रतीयन्ती यदि तवेमे न मम रोदनशीलायाः ।

पृष्टस्य वापयिन्दुव' पुलकोद्ग्रेदेन भिद्यमानाः ॥]
 सलका बचन छोड़कर मेरा विरवास करो, यदि पीठके बल गिरे हुए रोदनशील तुम्हारे अधुविन्दु मेरे पुलकोद्गम द्वारा भिन्न न हो जायँ तो तुम मेरे अनुरागमें विश्वास मत करना ॥ १६ ॥

तं मिसं काज्जवं जं किर वसणम्मि देसआलम्मि ।
 आत्तिहिअभित्तिवाउल्लअं च ण परम्मुहं उइ ॥ १७ ॥

[तन्मित्रं कर्तव्यं यत्किञ्च व्यसने देशभालेषु ।
आलिखितभित्तिपुस्तकमिव न पराङ्मुखं तिष्ठति ॥]

जो मित्र उपयुक्त देश एवं कालमें व्यसन उपस्थित होनेपर भित्तिपर आलिखित पुस्तकिकाके समान पराङ्मुख हो खड़ा नहीं होता, ऐसा ही मित्र बनाने योग्य है ॥ १० ॥

बहुआह णशुणुञ्जे पढमुग्गअसीलपण्डणविलक्खं ।
उद्धेद विहंगउलं दाहा पक्खेहिं य भणन्तं ॥ १८ ॥
[यथा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्भूतशीलखण्डनविलम्बम् ।
उद्धोषते विहंगकुलं हा हा पक्षैरिव भणत् ॥]

निभूत नदीतटस्थित निकुञ्जमें वपूके प्रथम संघटित शीलभङ्गसे उज्वित हो ✓
पंखा संचालनद्वारा ही जैसे 'हा हा' करते-करते पक्षी उड़ गये ॥ १८ ॥

सद्यं भणामि बालअ णत्थि असन्कं वसन्तमासस्स ।
गन्धेण कुरवआणं मणं पि असइत्तणं ण गआ ॥ १९ ॥
[सद्यं भणामि बालक नारत्यशक्यं वसन्तमासस्य ।
गन्धेनकुरवकरणाननागप्यसतीत्यं न गता ॥]

अरे बालक, सब ही कह रहा हूँ कि वसन्त मासकेलिए अकरणीय कार्य कोई भी नहीं है, तथापि कुरवककुसुमके गन्धसे यह रमणी ईष्य असतीत्यको भी प्राप्त नहीं हुई ॥ १९ ॥

एकेकमयइवेठणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाय ।
तइ योलन्ते बालअ पञ्जरसउणाइअं तीप ॥ २० ॥
[एकैकवृत्तिवेष्टनविवरान्तरदत्ततरलणयनया ।
एवमि व्यतिक्रान्ते बालक पञ्जरशकुनावितं तथा ॥]

हे बालक, तुम घले गए, एक-एक कमसे वृत्तिवेष्टनके समस्त विवरान्तरमें तरल नेत्र प्रकाशकर तुम्हें देखते-देखते लिए यह रमणी पिच्छेमें स्थित रहिणी जैसा आचरण कर रही थी ॥ २० ॥

ता किं करेउ जइ तं सि तीअ वइवेट्टपेलिअथणीय ।
पाअङ्कुट्टुअक्खित्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥
[तर्किकं करोषु यदि स्वमसि तथा वृत्तिवेष्टनप्रेरितस्तनया ।
पादाहुष्ठाप्यचित्ति-सहाह्वयापि न श्यः ॥]

श्रुतिवैद्यनके ऊपर दोनों स्तनोंको स्थापितकर, पैरके आधे अँगूठेसे नि स्रष्ट
अङ्गरसापूर्वक खड़ी होनेपर भी, यदि वह रमणी तुम्हें न देखे तो, वह और क्या
कर सकती है ? ॥ २१ ॥

पिअसंभरणपलोदृन्तवाहधाराणिवाअमीआए ।

दिज्जइ चङ्कगीवापें दीयओ पद्धिअजाआए ॥ २२ ॥

[प्रियसंभरणप्रलुठद्वाप्यधाराणिपातभीतया ।

क्षीयते चक्रग्रीवया दीपकः पथिक ज्ञायया ॥]

प्रियजनका स्मरण आनेपर नयनमें झुलके वाष्पधाराके दीपकपर गिरनेके
अमङ्गल भयसे भीत हो, पथिकजाया ग्रीवाको टेढ़ाकर सांध्यदीप जला रही है ॥

तइ चोलत्ते थालअ तिस्साअद्दाइँ तह णु चलिआइँ ।

जह पुट्टिमज्झणिवतन्तवाहधाराओ दीसन्ति ॥ २३ ॥

[स्वयि स्वतिक्रामति बालक तरया अद्धानि तथा नु चलितानि ।

यथापृष्ठमध्यनिपतद्वाप्यधारा इत्यन्ते ॥]

हे बालक, तुम्हारे चले जानेके समय, तुम्हें देखनेकेलिए उसने अपने अङ्गोंको
इस प्रकार विचलित एवं परिवृत्त किया था कि ऐसा लगा उसकी वाष्पधारा
उसकी पीठके ऊपर ही गिरी ॥ २३ ॥

ता मज्झिमो द्विअ वरं दुज्जनसुअणोहिँ दोहिँ विण कज्जं ।

जह दिट्ठो तवइ खलो तहेअ सुअणो अईसन्तो ॥ २४ ॥

[तन्मध्यम एव वरं दुर्जनसुजनाभ्यां द्वाभ्यामपि न कार्यम् ।

यथा दृष्टस्तापयतिखलस्तथैव सुजनोऽदृश्यमानः ॥]

दुर्जन एवं सज्जन इन दोनोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं, मध्यम वा साधारण
व्यक्ति ही हमारे लिए श्रेष्ठ हैं कारण, खल वा दुर्जन दिखायी पड़ते ही जैसा
संताप उत्पन्न करते हैं, वैसा ही सज्जन भी अदृश्य होते ही करते हैं ॥ २४ ॥

अद्धच्छिपेच्छिअं मा करेहि साहाविअं पलोएहि ।

सो वि सुदिट्ठो होहिइ तुमं पि मुद्धा कलिज्जिहिंसि ॥ २५ ॥

[अर्द्धाक्षिमेक्षितं मा कुरु स्वाभाविकं प्रलोकय ।

सोऽपि सुदृष्टो भविष्यति स्वमपि मुग्धा कलिष्यसे ॥]

कटाचद्वारा मत्त देखना, स्वाभाविक दृष्टिसे ताकना, इससे वह भी अर्द्धी
प्रकार दिखायी पड़ेगा एवं लोग तुम्हें भी कटाचमें असमर्थ 'मुग्धा' गिनेंगे ॥ २५ ॥

विअहं ग्नुदक्किआए तीए काऊण गेहयावारं ।

गरए वि मण्णुदुःभे भरिमो पाअन्तत्तुत्तम्म ॥ २६ ॥

[दिवसं रोपमूकायास्तस्याः दृष्या गेहयावारम् ।

गुरुदेऽपि मन्मुदुःखे स्मरामः पादान्तमुत्तरम् ॥]

सारे दिन घरके काम-काजमें एगे रहकर रोपमे भीरवा मेरी प्रिय कामिनीका विचखलेत अत्यन्त भारी होनेपर भी, अपने पादान्तमें उसके शपनकी बात स्मरण करता हूँ ॥ २६ ॥

पाणउट्ठीअ वि जल्लिऊण हुअयहो जल्लइ जण्णवाडम्मि ।

ए ह्नु ते परिह्वरिअव्या विसमदसासंठिआ पुरिस्ता ॥ २७ ॥

[पानकुट्यामपि ज्वलिष्या इतवहो ज्वलति यज्ञवादेऽपि ।

न खलु ते परिहर्ष्या विषमदशासंस्थिताः पुराणः ॥]

मद्यपानकुटीमें प्रज्वलित होकर भी अग्नि यज्ञ वेदीमें भी प्रज्वलित होती है । विषम अवस्थामें संस्थित जैसे पुरुषोंका भी कभीत्याग नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥

जं तुज्झ सई जाआ असईओ जं च सुहअ अहो वि ।

ता किं फुट्टउ वीअं तुज्झ समाणो जुआ णरिथ ॥ २८ ॥

[यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुभग ययमपि ।

तरिकि इपुट्टतु धीजं तव समानो युवा नास्ति ॥]

हे सुभग, तुम्हारी जाया तो सती है और मेरी असती, इसका मूल कारण क्या प्रकट होता है ? तुम्हारे समान युवक कोई नहीं है, क्या यही कारण नहीं है ? ॥ २८ ॥

सत्यस्सम्मि वि द्दे तहवि ह्नु द्विअअस्स णिअुदि उचेअ ।

जं तेण गामडाहे हत्थाहत्तिय कुटो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्वस्वेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निवृत्तिरेव ।

यत्नेन प्रामदाहे हरताहरितकया कुटो गृहीतः ॥]

गौवके जलने में सबकुछ जल जानेपर भी मेरे हृदयमें अत्यन्त मुक्त अनुभूत हो रहा था, कारण, उसने मेरे हाथसे अपने हाथ में घड़ा ग्रहण किया था ॥ २९ ॥

जाएज्ज वणुदेसे कुज्जो वि ह्नु णीसाहो सडिअपत्तो ।

मा माणुसम्मि लोए ताई रसिओ दरिहो अ ॥ ३० ॥

[मायतीं यमोद्देशे कुञ्जोऽपि खलु निःकायः शिथिलपत्रः ।
मा मानुषे लोके त्यागी रसिको हरिद्वज ॥]

वनभूमिमें शाखाशून्य एवं गलितपत्र कुञ्जवृक्ष यदि उपलब्ध होता है तो
हो, किन्तु मानवलोकोमें त्यागशील एवं रसिकजन कहीं हरिद्वज न हों ॥ ३० ॥

तस्स अ सोद्दामगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ ।
जाणइ गोलाऊरो चासारत्तोद्धरत्तो अ ॥ ३१ ॥

[तस्य च सौभाग्यगुणममहिलासदृशं च साहसं मन ।
जानाति गोदापूरो वर्षारात्रार्धरात्रश्च ॥]

गोदावरीका प्रचण्ड जलप्रवाह एवं वर्षाकालकी समग्र रात्रि भी आधी
रातमें उसके सौभाग्यकी बात एवं मेरे अमहिला सरस साहसकी बात
जानते हैं ॥ ३१ ॥

ते वोलिआ वअस्सा ताण कुडङ्गाण थाणुआ सेसा ।
अहो वि गअवआओ मूलुच्छेअं गअं पेम्मं ॥ ३२ ॥

[ते भवतिक्रान्ता वपस्यास्तेषां कुञ्जानां स्थानवः शेषाः ।
वपमपि गतवयस्का मूलोच्छेद्य गतं प्रेम ॥]

वे सारे वयस्क चले गए हैं, वन कुञ्जोंमें टूटवृक्षसमूह ही शेष रह
गया है । मुझ विगतवयस्काके भी प्रेमका मूलोच्छेद हो गया है ॥ ३२ ॥

थणजहुणणिअम्योधीर णहरङ्गा गअवआणो वणिआणं ।
उव्वसिआणङ्गणिदासमूलवन्ध व्व वीसन्ति ॥ ३३ ॥

[स्तनजघननितम्बोपरि नखराङ्गा गतवयसां वनितानाम् ।
वद्वसितानङ्गनिवासमूलवन्धा इव हरपन्ते ॥]

गतवयस्का वनितानोंके स्तन, जघन एवं नितम्बप्रदेशके ऊपर नायकका
नखचिह्नसमूह मानो शून्धीकृत भद्रननिवासके मूलवन्धनके पिहसरूप
बराबरे हैं ॥ ३३ ॥

जस्स जहं विअ पढमं तिस्सा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तस्स ताहिं चेअ डिआ सव्वङ्गं केण चि ण दिट्ठं ॥ ३४ ॥

[यस्य यत्रैव प्रथमं तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टिः ।
तस्य तत्रैव स्थिता सर्वाङ्गं केनापि न दृश्य ॥]

वस नायिकाके जिस अङ्गपर जिसकी दृष्टि प्रथमतः पड़गयी है, उसी अङ्गमें

बसकी दृष्टि गड़गयी है, इसी कारण, कोई उसके सारे अङ्गोंको नहीं देख सका है ॥ ३४ ॥

विरहे विसं घ विसमा अमममआ दोर संगमे यद्विमं ।
 किं विहिणा सममं विम दोदि वि पिमा विणिमिममआ ॥ ३५ ॥
 [विरहे विपमिष विपमामृतमषा भवति संगमेऽधिकम् ।
 किं विभिना सममेण द्वाग्पामपि विणा विनिर्मिता ॥]

विना विरहावस्थामें विपके समान विषया एवं सङ्गमें अत्यधिक अमृतमयी समझ पड़ती है, तब क्या विषयात्माने हृदयोंमें वस्तुओंद्वारा समान भावसे ही उसका निर्माण किया है ॥ ३५ ॥

अहंसणेण पुत्तअ सुट्टु वि वेदानुपन्धघटिआरं ।
 हृदयउद्वयाणिआरं घ फालेण गलन्ति पेम्मारं ॥ ३६ ॥
 [अहंसेनेन पुत्रक सुष्टुवि श्लेहानुबन्धपरितापि ।
 हृत्तपुटपाभीषानीष कालेन गलन्ति प्रेमणि ॥]

हे पुत्रक, हस्ताश्लिषित जल जिसप्रकार समय पाकर गलित हो जाता है, उसीप्रकार श्लेहानुबन्धमें सुष्टु संघटित प्रेम भी बहुत दिनतक न दिगयी पड़नेके फलस्वरूप विपुल हो जाता है ॥ ३६ ॥

पापुरओ वियअ णिज्जर विच्छुअद्वेत्ति जारवेत्तदरं ।
 णिउणसदीकरधरिअ भुअज्जअलन्दोलिणी याला ॥ ३७ ॥
 [पतिपुत्र एव नीपते वृथिकद्वेत्ति जारवैद्यपृष्टम् ।
 निपुणसदीकरधृता भुज्जुगलन्दोलनशीला याला ॥]

वृथिक दंशानमे कातर होनेके बहाने वह बाला पतिके समीपमें ही चतुर कवियों द्वारा एन अवस्थामें ही भुज्जुगलको आन्दोलन करते-करते जारवैद्यके पर ले जायी जा रही है ॥ ३७ ॥

विधिणइ माहमासम्मि पामरो पारुडि यइस्तेण ।
 णिज्जमुम्मुरवियअ सामलीअ यणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥
 [विकीर्णते माघमामे पामराः प्रावरजं वलीषद्वेन ।
 निर्धूमपुसुनिधौ रयामदशाः स्वनौ परपन् ॥]

माघके महीनेमें पामरवन, पूमाहित पानकी भूमीकी अग्निके समान

दण्णतादायक रयामाके शतनद्वयकी प्रतीष्ठाकर, धैल खरीदनेकी आशामें अपनी शीतनिवारणकी सामग्रीभी बँचहालता है ॥ ३८ ॥

सच्चं भणामि मरणे द्विअह्नि पुण्णे तडम्मि तावीए ।

अज्ज वि तत्थ कुड्ढे णिवड्ढे दिट्ठी तह च्चेअ ॥ ३९ ॥

[मरत्यं भणामि मरणे स्थितारिम पुण्ये तटे ताप्याः ।

अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतित दृष्टिरतथैव ॥]

सचही कहरहा हूँ कि मरणपथपर सल्लिहित अवरपहो गयी हूँ, किन्तु आज भी तापीनदीके पुण्यतटपर स्थित उस निकुञ्जकीओर मेरी दृष्टि उसी भावसे पड़रही है ॥ ३९ ॥

अन्धअरवोपत्तं व माउआ मह पइं विलुम्पन्ति ।

ईसाअन्ति महं विअ छेप्पाहिन्तो फणो जाओ ॥ ४० ॥

[अन्धकरषदरपात्रमिव मातरो मम पतिं विलुम्पन्ति ।

ईर्ष्यन्ति मद्भामेव लाङ्गूलेभ्यः फणो जातः ॥]

हे माताओ, अन्धके हाथमें स्थित वेरपात्रकी भाँति मेरे पतिके प्रेमको ये असती लूटले जारही हैं एव मेरे प्रति ईर्ष्यापरायण बनरही हैं, मानो पुच्छसे ही फणकी उत्पत्ति होती है (अर्थात् दशन योग्य पुच्छही फणरूप से वंशक हुई) ॥ ४० ॥

अप्पत्तपत्तअं पाविऊण णवरङ्कअं हलिअसोण्हा ।

उअह तणुई ण माअइ रुन्दासु वि गामरच्छअसु ॥ ४१ ॥

[अप्राप्त प्राप्तं प्राप्य नवरङ्गकं हलिकस्तुपा ।

परयत तन्वी न माति विरतीर्णास्वपि प्रामार्ष्यासु ॥]

तुमलोग देखो, अलम्बलाभकुसुम्भवच्च पाकर ही हालिक पुत्रवधू स्वतः तन्वाकृतिहोकर भी विरतीर्णं प्राप्त मागोपर अपनेको संतुलित नहीं रख पा रही है ॥ ४१ ॥

आक्खेअइं पिअजम्पिअइं परहिअअणिअुदिअपाइं ।

विरलो खु जाणइ जणो उप्पण्णे जम्पिअव्याइं ॥ ४२ ॥

[वाक्चेपकाणि प्रियजल्पितानि परहृदयनिर्भूतिकराणि ।

विरलः खलु जानाति जत्र उापन्ने जल्पितव्यानि ॥]

प्रयोजन उपस्थित होनेपर वक्ष्य, प्रतिवादीकेदिप निन्दासूचक, फिर

भी हमारेके हृदयको सन्तोष देनेवाले प्रिययात्रय होनेगिने व्यक्ति ही जानते हैं ॥ ४२ ॥

छज्जइ पहुस्स ललितं पिआइ माणो समा समरयस्स ।
जाणन्तस्स अ भणितं मोणं च अआणमाणस्स ॥ ४३ ॥

[शोभते प्रभोर्ललितं प्रियाया मानः समा समपरय ।
जानतरय भणितं मौनं चाजानातः ॥]

प्रभुकी स्वेच्छाकीबादि, प्रियाके मान, समर्थों की समा, शानियों का कथन एवं अज्ञानीका मौन शोभा पाते हैं ॥ ४३ ॥

घेदिरसिण्णकरुल्लिपरिग्गहपपसिअलेहणीमग्गे ।
सोदिय विवअ ण समाप्पइ पिअसदि सेदम्मि किं लिदिमो ॥ ४४ ॥

[घेपनशीलस्त्रिषक्कराहुलि परिग्रहस्पलितलेषनीमार्गं ।
स्वसपेव न समाप्पते प्रियसति सेवे किं लिहामः ॥]

अरी प्रियसति, लेखमें मैं और क्या लिखूंगी ? मेरे कल्पनशील एवं स्वेद्युक्त अङ्गुलीके परिग्रहसे 'रसलित लेखनीके मार्गमें 'स्वस्वित' लिखना ही समाप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥

देव्यम्मि पराहुत्ते पत्तिअ घडिअं पि चिहडइ णराणं ।
फज्जं चालुअवरणं व्य फहं यन्वं विअ ण पइ ॥ ४५ ॥

[दैवे पराङ्गमुखे प्रतीहि घटिनमपि विघटने नराणाम् ।
कार्यं चालुकावरण इव कथमपि बन्धमेव न ददाति ॥]

दैव यदि पराङ्मुख्य हो तो मानवकृत कार्य भी नष्ट हो जाता है, इसपर विचार करना, इस अवस्थामें यानुकानिमित्त दीवालकी मारुई कोई कार्य रोक नहीं मानता ॥ ४५ ॥

मामि द्विअअं च पीअं तेण जुभाणेण मज्जमाणाय ।
पहाणहसिदरकहुअं अणुसरोत्तजसं पिअस्तेण ॥ ४६ ॥

[मातुलानि हृदयमिध पीतं तेन यूना मज्जन्त्याः ।
श्नानहरिद्राकटुकमनुद्योतो जलं दिशता ॥

हे मामी, मानशीला मेरे शनान-हरिद्रा द्वारा कटुक जलके प्रवाहपन होनेपर उसे पीकर उस पुबकने जैसे मेरेही हृदयकी पी डाला है ॥ ४६ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्र यन्मिरान्तरं व्यसने ।

तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मं ॥]

वही वास्तविक अर्थ है जो हस्तगत हो गया है, वही मित्र है जो व्यसनमें निरन्तर समीप रहे, वही रूप है जिसमें गुणोंका संयोगभी हो, एवं वही विज्ञान है जिसमें धर्मभी रहे ॥ ५१ ॥

चन्द्रमुह्नि चन्द्रध्वजला दीहा दीहच्छि तुह विओअम्मि ।

चउज्जामा सअजामं व्वं जामिणी कइं वि वीलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुखि चन्द्रध्वजला दीर्घा दीर्घाणि तव वियोगे ।

चतुर्थांश शतयामेव यामिनी कथमव्यतिक्रान्ता ॥]

हे शशिवदने, दीर्घलोचने, तुम्हारे विरह में चन्द्रध्वजल दीर्घ एवं चतुर्थांश विरहित होनेपर भी शतयामपरिमित रूपमें प्रतिभासित यामिनीको मैंने किस प्रकार विताया है ? ॥ ५२ ॥

अउलीणो दोमुह्णो ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।

मुरओ व्वं खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥

[अकुलीनो द्विमुखस्तावन्मधुरो भोजनं मुखे यावत् ।

मुरज इव खलो जीर्णं भोजने विरसमारसति ॥]

जब तक मुखमें भोजन द्रव्य रहता है, तभी तक अकुलीन द्विमुख परमाणु मृदङ्गकी नाईं मधुर घातें करते हैं, किन्तु भोज्य वस्तुके जीर्ण होजानेपर विरस घातों में निन्दा आदि करते हैं ॥ ५३ ॥

तह सोण्हाइ पुल्लओ दरवलि अस्तसुतारअं पद्विओ ।

अह वारिओ वि घरसामिण्ण ओलिन्दप्प वसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्नुपदा प्रकोक्तो दरवलितार्धताः एकपथिक ।

यथा वारितोऽपि गृहस्थामिना अलिन्दके सुप्त ॥]

आँलके आधे तारेको थोड़ा चल देकर गृहस्थकी पुत्रवधूने पपिकडो रूप प्रकार देखा है कि गृहस्थामीद्वारा वञ्चितहोकरभी वह गृहके अलिन्दमें ही वास करने लगा ॥ ५४ ॥

लहुअन्ति लहु पुरिसं पन्थअमेत्तं पि दो वि कज्जाइं ।

णिव्वरणमणिव्वूहे णिव्वूहे जं अ णिव्वरं ॥ ५५ ॥

[लघुपतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे अपि कार्ये ।
निर्वारणमनिर्व्यूढे निर्व्यूढे यच्च निर्वारणम् ॥]

पर्वतके समान उन्नत व्यक्तिको भी दो कार्य शीघ्र ही लघु कर डालते हैं—(प्रथम) कार्यके अनिष्पन्न होनेपरभी आत्मगुणोंका निवेदन एवं (द्वितीय) कार्यके निष्पन्न होनेपरभी आत्मरक्षाका निवेदन ॥ ५५ ॥

कं तुङ्गथणुश्लिखत्तेण पुत्ति दारद्विआ पलोएसि ।
उण्णामिअकलसणिवेसि अघकमलेण च मुहेण ॥ ५६ ॥

[कं तुङ्गस्तनोश्चिप्सेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयसि ।
उन्नामितकलशनिवेशितार्घकमलेनेव मुखेन ॥]

हे पुत्रि, उन्नत कलशद्वयके ऊपर निवेशित पूजापत्रकी भाँति अपने तुङ्ग स्तनद्वयकेऊपर उचितसवदनको रख दरवाजेपर खड़ी होकर तुम किसको हेर रही हो ॥ ५६ ॥

चइविवरणिग्गअदलो परण्डो साहइ व्व तरुणाणं ।
परथ घरे हलिअवहू पइहमेत्तरथणी वसइ ॥ ५७ ॥

[वृतिविवरनिर्गतदल परण्डः साधयतीव तरुणभ्यः ।
अत्रगृहे हलिकवधूरेतावन्मात्रस्तनो वसति ॥]

वेदनके द्विद्वसे पत्र निकालकर परण्डवृद्ध तक तरुणजनोंके निकट यह सूचितकर रहा है कि इस घरमें वृद्ध स्तनान्वित हलिकवधू वासकर रही है ॥ ५७ ॥

गअफलह कुम्भसंणिहघणपीणणिरन्तरेहिं तुङ्गेहिं ।
उस्ससिउं पि ण तीरइ किं उण गन्तुं हअयणेहिं ॥ ५८ ॥

[गजकलभकुम्भसंनिभयनपीननिरन्तराभ्यां तुङ्गाभ्याम् ।
उच्छ्वसितुमपि न तीरयति किं पुनर्गन्तुं हतस्तनाभ्याम् ॥]

हस्तिशावकके कुम्भसदृश, घनसञ्जिविष्ट, पीन, निरन्तर एवं तुङ्ग स्तनहतक-द्वयके भारसे यह रमणी श्वास-प्रश्वासका कार्य ही सम्पादित नहीं कर पा रही है, जानेकी बात तो दूर रही ॥ ५८ ॥

मासपसूअं छम्मासगग्भिणिं पक्खदिअहजरिअं च ।
रहुत्तिण्णं च पिअं पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥

[मासप्रसूतां पञ्चासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च ।
रहोत्तीर्णां च प्रियां पुत्रक कामयमानो भव ॥]

हे पुत्रक, मासमात्र प्रभूता, छह मास गर्भिणी, एक दिनके बरसे भाग्य।
एवं रङ्गभूमिसे प्रत्यागता, ह्य प्रकाश प्रियाओंके प्रति कामयमान होना ॥ ५९ ॥

पडिवफरमण्युपुञ्जे स्तावण्णउडे अणङ्गअकुम्भे ।

पुरिससअद्धिअअचरिय फीस थणन्ती यणे चहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपन्नम्युपुञ्जी लावण्यकुटावनङ्गअकुम्भी ।

पुरुपशतद्वयघृती किमिति स्तनन्ती स्तनी यहमि ॥]

सपत्नीरूप प्रतिपन्नके मनस्तापविषादक, लावण्यकलश सदत्त, मदन
हस्तीके कुम्भ मुदय एवं शतशत पुरुषोंके हृदयमें अभिलषित अपने स्तनद्वय
किस कारण कॉखने जैसे शब्दोंके साथ बहन कर रही हो ॥ ६० ॥

घरिणिघणरथणपेह्लणसुहेह्लिपडिअस्स ह्योन्तपडिअस्स ।

अवसउणङ्गारअघारविट्ठिदिअहा सुहायेन्ति ॥ ६१ ॥

[गृहिणी घनस्तनप्रेरणसुखकेलिपतितस्य भविष्यापथितस्य ।

अपभकुनाङ्गारकवारविट्ठिदिवसा सुखपन्ति ॥]

गृहिणीके स्थूलस्तनपीडनजनित सुखकेलिमें निमग्न अचिर भविष्यमें
प्रवासगामी नायकके पथमें शकुनशास्त्र विरोधी मङ्गलवार एवं मद्दादोपमें अशुभ
दिवस यात्राविरोधी होनेके कारण सुखदायक प्रतीत होते हैं ॥ ६१ ॥

सा तुह कपण थालअ अणिसं घरद्दारतोरणणिसण्णा ।

ओससई चन्दणमालिअ अय दिअहं विअ धराई ॥ ६२ ॥

[सा यव कृतेन थालकानिशां गृहद्दारतोरणणिसण्णा ।

भवशुभ्यति चन्दनमालिकेव दिवसमेव वराकी ॥]

हे शालक, तुम्हारे आगमनकी प्रतीचामें यह हीना नायिका सर्वदा
चन्दनमालिकाकी नाईं गृहद्दारके तोरणपर बैठी रहकर एक दिनमें ही शुष्क
होती आ रही है ॥ ६२ ॥

हसिअं सहत्थतालं सुफळवडं उवगपहिं पडिपहिं ।

पत्तअफलाणं सरिसे उड्डीणे सूअविन्दम्मि ॥ ६३ ॥

[हसितं सहस्ततालं शुष्कवटमुपगतै पथिकै ।

पत्रफलानां सहस्रे उड्डीणे शुक्लवृन्दे ॥]

शुष्क वटवृक्षके तले उपस्थित पथिक, पत्र एवं फलके समान शुष्कोंके उद
जानेपर, हाथ से ताली बजाकर हँसे थे ॥ ६३ ॥

अञ्ज गृह्ण हासिता माभि तेण पाप्सु तद्दण्डन्तेण ।
तीप वि जलन्ति दीववत्तिमग्गुण्णअन्तीप ॥ ६४ ॥

[अष्मि हासिता मानुषानि तेन पादयोस्तथा पतता ।
तथापि ज्वलन्ती क्षीपवर्तिमग्गुत्तेअवन्था ॥]

हे मामी, आज सखीके चरणोंपर उसी प्रकार गिर कर उस नायकने एवं जलती हुई दीपवर्तिकाको समधिक उत्तेजितकर सखीने मुझे खूब हँसाया है ॥ ६४ ॥

अणुवत्तणं कुणन्तो घेमे वि जणे अहिण्णमुहराओ ।
अण्वसो वि हु सुअणो परव्वसो आदिआईए ॥ ६५ ॥

[अनुवर्तनं कुर्वन्त्वेऽपि जनेऽभिन्नमुखरागः ।
आत्मवशोऽपि सज्ज सुजनः परवशः कुलीनवापाः ॥]

मुखराग भपरिवर्तित रक्षकरं सुजन अभियजनके अनुवर्तन करनेपर यही समझा जायगा कि यह आत्मवश होनेपर भी कभी कुलीनताका भी वशवर्ती हो सकता है ॥ ६५ ॥

अणुद्विअहवद्विआअरविण्णाणगुणेहिँ जणिअमाहप्पो ।
पुत्तअ अदिआअजणो विरज्जमाणो वि दुल्लुक्खो ॥ ६६ ॥

[अनुदिवसवर्धितादरविज्ञान गुणैर्जनित माहात्म्यः ।
पुत्रकामिजातजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लभः ॥],

हे पुत्रक, प्रतिदिन संवर्द्धित आदरसमन्वित विज्ञानगुणद्वारा अपने माहात्म्यको प्रकाशितकर सारकुल जात महिलाएँ वर्जित होनेपरभी तद्रूप हो अतिकष्टमें दिखती हैं ॥ ६६ ॥

विण्णाणगुणमहग्घे पुरिसे वेसत्तणं पि रमणिज्जं ।
जणणिन्दिए उण जणे पिअत्तणेणावि लज्जामो ॥ ६७ ॥

[विज्ञानगुणमहाघे पुरुषे द्वेष्यावमपि रमणीयम् ।
जननिन्दिते पुनर्जने प्रियत्वेनापि लज्जामहे ॥]

विज्ञानगुणमें भरपूर आदरणीय व्यक्ति के मेरेप्रति द्वेषभाव रखने पर भी यह रमणीय है, किन्तु संसार जिसकी निन्दा करता है, ऐसे व्यक्तिका प्रियत्व पानेपर भी मैं लजित होती हूँ ॥ ६७ ॥

कहँ णाम तीअतह सो सद्दायगुरओ वि थणहरो पडिओ ।
अहघा महित्ताणँ चिरं को वि ण दिअअम्मि संअह ॥ ६८ ॥

[कथं नाम तस्यास्तथास स्वभावगुहकोऽपि स्तनभारः पतितः ।

अथवा महिलानां चिरं कोऽपि न हृदये संतिष्ठते ॥]

उम नायिकाके उतने स्वभावगुह स्तनभार किस प्रकार भवत हूप ?
अथवा महिलाओंके हृदयमें कोई चिरकालतक टिका नहीं रह सकता ॥ ६८ ॥

सुअणु वअणं छिवन्तं सूरं मा साउलीअ वारेहि ।

पअस्स पङ्कअस्स अ जाणउ कअरं सुहण्फंसं ॥ ६९ ॥

[सुतनु वदनं स्पृशन्तं सूर्यं मा वस्राहलेन वारय ।

पुनस्य पङ्कजस्य च जानातु कतरसुखरपदम् ॥]

हे सुतनु, अपने वदनको स्पर्शकरनेवाले सूर्यको तुम वस्राहल द्वारा
रोकना मत, तुम्हारे वदन और कमलमें किसका स्पर्श अधिक सुखद है, यह
सूर्यको जानलेने दो ॥ ६९ ॥

माणोसहं व पिज्जइ पिआइ माणंसिणीअ द्दअस्स ।

करसंपुटवलिउद्धाणणाइ मइराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥

[मानौषधमिव पीयते प्रियया मनरिवन्या दयितस्य ।

करसंपुटवलितीर्ध्वाननया मदिराया गण्डूपः ॥]

प्रियव्यक्तिके करसंगुट द्वारा उपर उठाये गए मुखदेवाली मनरिवनी प्रिया
प्रियतमप्रदत्त मदिरागण्डूपको मान दूर करनेकी औषधिरूप में भी रही है ॥७०॥

कहँ सा णिव्वणिणज्जइ जीअ जहा लोइअम्मि अहम्मि ।

दिट्ठी दुव्यलगाई व्य पङ्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥

[कथ सा निर्बन्ध्यांतां यस्या यथालोकिवेऽग्रे ।

दृष्टिदुर्बला गौरिव पङ्कपतिता नोत्तरति ॥]

जिस रमणीके जिस अङ्गपर जिस किसीकी दृष्टि पड़ जाती है, वहाँसे
पङ्कपतिता दुर्बल गायकी भाँति यह फिर ऊपर नहीं उठती, [उसके समझ
सौन्दर्यका वर्णन किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ७१ ॥

कीरन्तीं विअ णासइ उअण रेह्व व्य खलअणे मेत्ती ।

सा उण सुअणम्मि कभा अणहा पाहाणरेह्व व्य ॥ ७२ ॥

[क्विपमाणैव नरवयुदके रेखेव खलजने मैत्री ।

सा पुनः मुजने कृता क्षनघा पापाणरेखेव ॥]

खलोंमें स्थापित की जानेवाली मैत्री जलमें खींची गयी रेखाकी भाँति लुप्त हो जाती है, किन्तु यही मैत्री सुजनमें स्थापित होने पर पापाजमें खींची गयी क्षतिविहीन रेखाकी भाँति स्थायी होती है ॥ ७२ ॥

अध्वो दुष्करजारथ पुणो वि तन्ति करोसि गमणस्त ।

अज्ञ प्रि ण होन्ति सरला वेणीथ तरङ्गिणा चिउरा ॥ ७३ ॥

[अध्वो दुष्करकारक पुनरपि चिन्ता करोपि गमनस्य ।

अद्यापि न भवन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणाश्चिकुरा ॥]

हे दुष्करकर्मकारक, यह अत्यन्त कष्टका विषय है कि तुम पुन प्रवासमें जानेकी सोच रहे हो, आज तक हमारी वेणीके तरङ्गायित केशसमूह सीधे नहीं हुए ॥ ७३ ॥

ण वि तह छेअरआइं वि हरन्ति पुणरुत्तपअरसिआइं ।

जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सम्भावणेहरमिआइं ॥ ७४ ॥

[नापि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुत्तरागरसिकानि ।

यथा यश्च वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावस्नेहरमितानि ॥]

विदग्धजनोंके आचरित अनुरागरसमें पूर्णरमणभी मनका उतना हरण नहीं करता, जितना जहाँ तहाँ, जिस तिस भावसे आचरित सद्भाव एव स्नेहविशिष्ट रमण करता है ॥ ७४ ॥

उज्झसि पिआइं समअं तह वि हु रे भणसि कोस किसिअं ति ।

उचरिभरेण अ अण्णुअ मुअइ चइहो वि अह्माइं ॥ ७५ ॥

[उद्यसे प्रियया सम तथापि खलु रे भणसि किमिति कुरोति ।

उपरि भरेण च हे अज्ञ मुञ्चति षटीवदोऽप्यहानि ॥]

सुम्हारी अपनी नूतन प्रिया के साथ तुम्हें अपने चित्तपर छो रही हूँ । अरे, फिर भी तुम पूछ रहे हो कि 'मैं कृपा क्यों होती जा रही हूँ' । हे अज्ञ, ऊपर आर लादेनेपर बैलभी शरीरत्याग करडालता है ॥ ७५ ॥

द्विडमूलवन्धगण्ठि व्व मोइआ कइं वि तेण मे षाह ।

अहोहिं वि तस्स उरे सुत्त व्व समुक्खआ थणआ ॥ ७६ ॥

[द्विडमूलवन्धग्रन्थी इव मोचितौ कथमपि तेन मे षाह ।

अस्माभिरपि तस्योरसि निष्ठात्ताविव समुत्खानौ स्तनौ ॥]

उस नायकने अत्यन्तकष्टसे मेरे हृदयभावसे मूलबन्धपन्थिमें ग्रथित दोनों बाहुओंको छोड़ा था, एवं मैंने भी किसी प्रकार उसके वक्षस्थलके ऊपर उभड़े हुए स्तनद्वय को छोड़ दिया है ॥ ७६ ॥

अणुणअपसाइआप तुज्ज घराहे चिरं गणन्तीए ।

अपहुत्तोदअहत्थजुरीअ तीए चिरं वण्णं ॥ ७७ ॥

[अनुनयप्रसादितया तवापराधांश्चिरं गणयस्या ।

अप्रभूतोभयहस्नाद्ब्रुवया तथा चिरं रदितम् ॥]

मेरे अनुनयसे प्रसन्न होकर भी वह बहुत देरतक तुम्हारे अपराधोंकी गणना करते-करते, दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंको असमर्थ जान बहुत देर रोपी थी ॥ ७७ ॥

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अहम्मिसे अमाअन्तं ।

लावणं ओसरइ व्य तिवलिसोपाणवत्तीए ॥ ७८ ॥

[स्वेदच्छलेन पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या अमात् ।

लावण्यमपसरतीव त्रिवलीसोपानपंक्तिभिः ॥]

देखो, उस नायिकाका लावण्य, उसके कृश अङ्गमें समा न सकनेपर जैसे स्वेदके बहाने त्रिवली (उदरभागकी लम्बी रोमरेखा) रूप सोपानपंक्ति द्वारा उत्तर रहा है ॥ ७८ ॥

देव्वाअत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।

कङ्केहिपल्लवाणं ण पल्लवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥

[देवायत्ते फले किं क्रियतामिपुनर्भणामः ।

कङ्केहिपल्लवानां न पल्लवा भवन्ति सदशाः ॥]

कारण, फल देवाधीन है, अतः उस विषयमें और क्या किया जाय, किन्तु इतना कह सकती हूँ कि अशोकके पल्लवके मरीखे पल्लव नहीं होते ॥ ७९ ॥

धुअइ व्य मअकलङ्कं कपोलपडिअस्स माणिणो उअह ।

अणवरअदाहजलभरिअणअणकलसेहि चन्द्रस्स ॥ ८० ॥

[धावतीव मृगकलङ्कं कपोलपणितस्य मानिनी पश्यत ।

अनवरतवापजलभृन्नयनकलशभ्यां चन्द्रस्य ॥]

देखो, मानिनी कपोलपर प्रतिबिम्बित चन्द्रके मृगरूप कलङ्कको अनवात प्रवाही वाष्पजलसे पूर्ण नयनकलशद्वय द्वारा जैसे घो रही है ॥ ८० ॥

गन्धेण अप्पणो मालिआणं णोमालिआ ण फुट्टिहइ ।
अप्पणो को वि हआसइ मंसलो परिमलुग्गारो ॥ ८१ ॥

[गन्धेनारमनो मालिकानां नवमालिका त च्युता भविष्यति ।
अभ्याःकोऽपि हतशया मांसलः परिमलोद्गारः ॥]

अन्यान्य पुष्पोंके साथ मालिकामें स्थित नवमालिका पुष्प कभी भी अपने गन्धसे च्युत वा भ्रष्ट नहीं होता । इस हताशा पुष्पवधूमे किसी धन्य प्रकारका घना परिमल निकलता है ॥ ८१ ॥

फलसंपत्तीअ समोणआइँ तुह्माइँ फलविपत्तीए ।
हिअआइ सुपुरिसाणं महानरुणं व सिहराइँ ॥ ८२ ॥

[फलसंपत्त्या समवनतानि तुह्नानि फलविपत्त्या ।
हृदयानि सुपुरयाणां महातरुणामिव सिखराणि ॥]

महावृक्षके शिखरकी भाँति सशुभ्रयोंका हृदय फल-सम्पत्तिसे धारण्यत अवनन एवं फलविपत्तिसे उद्धत रहता है ॥ ८२ ॥

आसासेइ परिअणं परिवत्तन्तीअ पहिअजाआए ।
णित्थाणुवत्तणे वलिअहत्थमुहलो वलअसइो ॥ ८३ ॥

[आशासयति परिजनं परिवर्त्तमानायाः पथिकजायायाः ।
निःश्यामवर्तने वलितहृत्तमुखरो वलयशब्दः ॥]

पथिककी जाया जब क्षयके ऊपर दुःसह भावसे करावट बड़लती है, तब उसके संबलित हाथसे मुखर वलयका शब्द ही उसके जीवनके सम्बंधमें परिजनोंको आश्वासित करता है ॥ ८३ ॥

तुक्को च्चिअ होइ मणो मणंसिणो अन्तिमामु वि दसासु ।
अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं च्चिअ फुरन्ति ॥ ८४ ॥

[तुङ्गमेव भवति मनो मनास्वनोऽन्तिमास्वपि दशामु ।
अस्तमनेऽपि रवे किरणाऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]

अन्तिम दशामें भी मनस्वीका मन उल्लत ही रहता है, अस्त-गमनके समय भी सूर्यकी किरणें ऊपर ही स्फुरित होती हैं ॥ ८४ ॥

पोट्टं भरन्ति सउणा वि भाउआ अप्पणो अणुविग्गमा ।
विहत्तुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिसा ॥ ८५ ॥

[उदरं विभ्रति दाकुना भवि हे मातर भामनोऽनुद्विभाः ।

विह्वलोद्धारणस्वभावा भवन्ति यदि केऽपि संपुरुषाः ॥]

हे माताओ, भन्पकी उदरपूर्तिकी चिन्ता क्रिये बिना खग बिना किसी उद्वेगके अपना पेट भर लेने हैं, किन्तु कोई यदि संपुरुष हो ता उसका स्वभाव दुर्गन्धनोंके उद्धारमें संलग्न होता है ॥ ८५ ॥

ण विणा सन्भावेण म्येऽपइ परमरथजाणुओ लोओ ।

को जुण्णमज्जरं फज्जिण्ण येआरिउं तरइ ॥ ८६ ॥

[न बिना सद्भावेन गृह्यते परपार्थजो लोकः ।

को जीर्णमार्जरं काञ्जिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

सद्भावेके अतिक्रमे किमीको परमार्थज्ञ नहीं माना जाता । कीन घृद्ध विद्याल को केवल काञ्जिक (भिगोये भातके पानी) द्वारा टग सकता है ? ॥ ८६ ॥

रप्णाउ तणं रप्णाउ पाणिअं सव्वअं सभंग्गाहं ।

तद्द वि मआणं मईणं अ भामरणन्ताइ पेम्माइं ॥ ८७ ॥

[भ्रातृवाप्तृणमरण्यापानीयं सर्वतः स्वयंप्रादम् ।

तथापि गृह्याणां गृहीणां चामरणान्तानि प्रेमामि ॥]

गृह-गृहीको अन्नलसे स्वतः प्राप्त गृह एवं जल ही ग्रहण करना पवता है । फिर भी गृह-गृहीका प्रेम भाजीवन रपायी होता है ॥ ८७ ॥

तावमघयेइ ण तद्दा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणं ।

जद्द दूस्से वि गिम्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुद्धेही ॥ ८८ ॥

[तापंमरणयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिथुनानाम् ।

यथा दूःमहेऽपि प्रीप्ते अग्नोऽप्यालिङ्गन मुखकेलिः ॥]

दिसा चन्दन भी कामिवीका ताप उतना दूर नहीं कर पाता, जितना प्रीप्यकाळमें भी परररालिङ्गनरूप मुखकेलि दूर कर देता है ॥ ८८ ॥

तुप्पाणणा किणां चिट्ठिसि त्ति पडिपुच्छिआपेँ धहुआप ।

विउणायेट्टिअज्जहणत्थसाइ खज्जोणअं हसिअं ॥ ८९ ॥

[शृण्वतिसानना किमिति तिष्ठसीति परिपूरणा कथा ।

श्रिगुणपेष्टिताजघनश्लषा लज्जापनसं हमितम् ॥]

‘वीं मुहमें पोतकर क्यों बैठी हो’, इस प्रकार पूछी जानेपर यधु पहलेकी अपेक्षा अपने जंघोंको रोहरा हककर लज्जापनस मुखसे हँसने लगी ॥ ८९ ॥

द्विअअ ऋचेअ विलीणो ण साहिओ जाणिऊण घरसारं ।
धान्ववदुव्वअणं चिअ दोहलंओ दुग्गअचहूप ॥ ९० ॥

[हृदय एव विलीणो न कथितो ज्ञात्वा गृहसाम् ।

धान्ववदुर्वचनमिव दोहदो दुर्गतवध्वा ॥]

दुर्गत वधू अपने धाकी सामर्थ्य जानती है, इसीलिये गर्भवती अपनी हृद्दा की बात, दान्ववोंके कुटिल वचनकी भाँति अपने हृदयमें ही रखती है, किसीको बघनाती नहीं ॥ ९० ॥

धावइ विअलिअधम्मिहूसिच्चअसंजमणवावडकरग्गा ।

चन्दिअलभअविअलाअन्तडिअभपरिमग्गिणी धरिणी ॥ ९१ ॥

[धावति विगलितधम्मिहूसिचपसयमनव्यावृत्तराग्रा ।

चन्दिअलभयविपलायमानडिअभपरिमार्गिणी गृहिणी ॥]

नाई के मय से भागनेवाले शिशुको खोजनेवाली गृहिणी अपने खुले हुए धारों एव आँचलको सयमित करनेमें निरतहस्ता होकर दौड रही है ॥ ९१ ॥

जह जह उव्वहइ घह णवजोव्वणमणहराई अद्दाई ।

तह तह से तणुआअइ मज्झो दइओ अ पडिअक्खो ॥ ९२ ॥

[यथा यथोद्गते वधूर्नवधौवनमनोहराण्यद्गानि ।

तथा तथा तस्यास्तनूपते मध्यो दयितश्च प्रतिपद्य ॥]

वधू जैसे जैसे अपने नवधौवनसे मनोहर अङ्गोंका बहन करती है, वैसे ही वैसे उसकी कमर, प्रियजन एव सभी शत्रु वृश होने लगते हैं ॥ ९२ ॥

जह जह जरापरिणओ होइ परई दुग्गओ विरुओ वि ।

कुलवालिआणँ तह तह अहिअअरं वल्लहो होइ ॥ ९३ ॥

[यथा यथा जरापरिणतो भवति पतिदुर्गतो विरूपोऽपि ।

कुलपालिकानां तथा तथाधिकतर वल्लभो भवति ॥]

पति निवृत्तना अधिक जराजीर्ण, दुर्गत एव विरूप होता जाता है, कुलपालिका नारियोंके लिए उतना ही प्रिय होता चला जाता है ॥ ९३ ॥

एसो मामि जुवाणो चारंघारेण अं अडअणाओ ।

गिग्घे गामेकरडोअथ व किञ्छेण पावन्ति ॥ ९४ ॥

[एष मातुलानि युवा धारवारेण यमस्यय ।

भ्राम्णे प्रामैकवटोदकमिच कृष्येण प्राप्नुवन्ति ॥]

हे मामी, यही वह युवा पुरुष है जिसे गाँवकी असनी स्त्रियों, प्रोथममें
ग्रामके सन्निकटस्थ कूँके शीतल जलकीभाँति अत्यन्त कष्टसे पाती हैं ॥ १४ ॥

गामवटस्स पिउच्छा आवण्डुमुहीणं पण्डुरच्छाअं ।
द्विअरण समं असईणं पडइ चाआह्वं पत्तं ॥ १५ ॥

[ग्रामवटस्य पितृवस आवण्डुमुहीना पाण्डुरच्छायम् ।

द्वद्वेन समसतीनां पतति वाताहत पत्रम् ॥]

हे बुधा, पीतमुखी असतियोंके मनके साथ ही साथ गाँवके वटवृक्षके
पीतवर्ण पत्रसमूह इवासे आहत हो गिरे जा रहे हैं ॥ १५ ॥

पेच्छइ अलज्जलन्धं वीहं णीससइ सुण्णअं हसइ ।
जइ जम्पइ अफुडत्थं तह से द्विअअट्ठिअं किं पि ॥ १६ ॥

[पश्यामलज्जलन्धं वीहं नि शसिति शुभ्य हसति ।

यथा जहपश्यस्फुगर्थं तथा तस्या हृदयस्थित किमपि ॥]

जब युवती बिना लक्षके ही दृष्टिपात कर रही है, दीर्घनि धास फेंक रही
है, सूनी हँसी हँस रही है, एवं अस्वस्थ भावसे न जाने क्या आलाप कर रही
है, तब ऐसा लगता है कि शायद उसके मनमें कुछ न कुछ है ही ॥ १६ ॥

गहवइ गओम्ह सरणं रक्खसु एअं त्ति अडअणा भणिरी ।
सहसागअस्स तुरिअं पइणो विअ जारमप्पेइ ॥ १७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माक शरण रक्षैतस्मिन्पसती भणित्वा ।

सहसागतस्य वरित पायुरेव जामर्पयति ॥]

हे गृहस्वामी, यह पुरुष हमारा शरणागत हुआ है, इसकी रक्षा करो—
कहकर अमतीने सहसा जाये हुए पतिके हाथों जाको सौंप दिया ॥ १७ ॥

द्विअअट्ठिअस्स विज्जउ तणुआअन्ति ण पेच्छइ पिउच्छा ।
द्विअअट्ठिआम्ह कांतो भणिउं मोहं गआ कुमरी ॥ १८ ॥

[हृदयस्मितस्य दीयता तनूभवन्ती न पश्यति पितृवस ।

हृदयेस्मितोऽस्माक कुतो भणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अरी बुधा, इस कुमारीको इसके मनोवाञ्छित व्यक्तिको ही समर्पित कर,
यह दुर्बल होता जा रहा है, क्या यह मुझे दीर नहीं रहा है ? 'मेरा हृदयहार
पुरुष कहाँ है', यह कहकर कुमारी मोहपरत हो गयी है ॥ १८ ॥

खिणस्सउरे पइणो ठवेइ गिम्हावरण्हरमिअस्स ।
 ओलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारं ॥ ९९ ॥
 [खिणस्सोरसि पयु स्थापयति ग्रीष्मापराहरमितस्य ।
 आर्द्रं गलकुसुम स्नानसुगन्ध विकुरभारम् ॥]

ग्रीष्मकालके अपराह्न समय रमणकरनेवाले खिण पत्रिके वज्र स्थलके ऊपर
 वह अपना आर्द्र, गलितपुष्प एवं स्नानसुगन्धयुक्त केशभार स्थापित
 कर रही है ॥ ९९ ॥

अह सरदन्तमण्डलकपोलपडिमागओ मअच्छीए ।
 अन्तो सिन्दूरिअसङ्खवत्तकरणिं वइइ चन्दो ॥ १०० ॥
 [अमौ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगापया ।
 अन्त सिन्दूरितशङ्खपात्रसादृश्य वहति चन्द्र ॥]

मृगयणीके सरस दन्तचतमण्डलयुक्त कपोलपर प्रतिबिम्बित हो चन्द्र,
 बीचमें सिन्दूरवर्णयुक्त शङ्खपात्र की समानता पा जाता है ॥ १०० ॥

रसिअज्जणहिअअदृए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मअए ।
 सत्तसअम्मि समत्तं तीअं गाहासअं एअं ॥ १०१ ॥
 [रसिकजन हृदयदयिते कविवरसलप्रमुखसुकविनिमिते ।
 सप्तशतक समाप्त तृतीय गाथाशतकमेतत् ॥]

कविवरसल प्रमुख सुकवियों द्वारा रचित, रसिकों के हृदयहार सप्तशती
 में यह तृतीय शतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

चतुर्थ शतक

वह अम्ह थाअदो अज कुलहराओ त्ति छेन्छई जारं ।

सहसागत्रस्स तुरिअं परणो कण्ठं मिलावेइ ॥ १ ॥

[असावस्माकमागतोऽथ कुलगृहादिव्यसती जारम् ।

सहसागतस्य त्वरितं पर्युः कण्ठे लगवति ॥]

‘यह व्यक्ति आज ही मेरे नैहरसे आया है’—ऐसा कहकर असती स्त्री अपने उपपतिको सहसागत पतिके गलेमे लपटा देती है ॥ १ ॥

पुसिआ अण्णाहरणेन्दणीलकिरणाहवा ससिमऊदा ।

माणिणिवअणम्मि सकज्जलंसुसद्धाद दइएण ॥ २ ॥

[शोन्धिताः कर्णाभरणेन्द्रनीलकिरणाहताः दशिमयूषाः ।

मानिनीवदने सकज्जलाधुगङ्गया दयितेन ॥]

प्रिय पति मानिनीके वदनपर कर्णाभरणस्थित इन्द्रनीलमणिके प्रसामिश्रित चन्द्रकिरणसमूहको भीसूकी बूँद समझकर पोंछ दे रहा है ॥ २ ॥

पइहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिला सहस्समरिप वि ।

अणुहरइ णवर तिमसा चामद्धं दाहिणद्धस्स ॥ ३ ॥

[एतावन्मात्रे जगति सुन्दर महिलसहस्रनृतेऽपि ।

अनुहरति केवल तस्या चामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

सहस्रो सुन्दरियोंसे परिपूर्ण हतने बड़े ससारमें सौन्दर्यके विषयमें केवल इसका ही चामार्ध दक्षिणार्धका अनुकरणकर रहा है ॥ ३ ॥

जह जह चापइ पिओ तह तह णचामि चञ्चले पेम्मे ।

बह्णी बलेइ अइं सहावथडे वि रुक्खम्मि ॥ ४ ॥

[यथा यथा वादवति मिथस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।

बह्णी बलयथङ्गं स्वभावस्तब्धेऽपि घृषे ॥]

प्रेम मेरे चाञ्चल्यका विधापक है, वरन् मेरा प्रिय जैसे जैसे बजायेगा, मैं वैसे वैसे नाचूंगी अर्थात् उसकी इच्छाका पालन करूँगी । स्वभावस्तब्ध घृषमें भी चञ्चल लसा लिपटी रहती है ॥ ४ ॥

दुष्पेहि लम्भइ पिओ लब्धो दुष्पेहि होइ साहीणो ।

लब्धो वि अलब्धो विअ जइ जइ द्विअअं तत ण होइ ॥ ५ ॥

[दुष्पेहि भवते प्रियो लब्धो दुष्पेहि भवति स्वाधीन ।

। लब्धोऽप्यलब्ध एव यदि यथा हृदय तथा न भवति ॥]

बड़े षष्टे प्रियजनोंको प्राप्त किया जाता है, प्राप्त करनेपर भी बड़े कष्टसे उन्हें स्वाधीन किया जाता है और यदि वे हृदयके अनुरूप न हों तो लब्ध होनेपर भी उन्हें अलब्ध ही समझा जाता है ॥ ५ ॥

अव्यो अणुणअसुहकहिरीअ अरुअ कअवुणन्तीए ।

सरलसहायो वि पिओ अविणअमगं चलणीओ ॥ ६ ॥

[कष्टमनुनयमुखकाङ्क्षजशीलयाहृत कृतं कुर्वत्या ।

सरलस्वभावोऽपि प्रियोऽविनयमार्गं बलाञ्छित ॥]

हाथ दे, अनुनयन मुखकी आकांक्षाकर मैंने उसके द्वारा न किये गए अपराधको भी किया गया कहकर सरल स्वभाव प्रियको भी बलपूर्वक अविनय के मार्गमें खींच रही हूँ ॥ ६ ॥

हृत्पेसु अ पापसु अ अङ्गुलिगणयाइ अइगओ दिअहा ।

एण्ह उण केण गणिज्जउ त्ति भणेउ रुअइ मुअ ॥ ७ ॥

[इस्तयोश्च पादयोश्चाङ्गुलिगणनयातिगता दिवसा ।

इदानीं पुन केन गणयतामिति भणित्वा रोदिति मुग्धा ॥]

हाथ पर पैरोंमें स्थित अङ्गुलियों द्वारा गणनाकर दिनोंको काटा है । अब किसके सहारे यह दिन गणना करूँगी ? ऐसा कहकर मुग्धा रो रही है ॥ ७ ॥

कीरमुहसच्छवेहि रेहइ वसुहा पलासकुसुमेहि ।

बुद्धस्स च्चलणवन्दणपडिपडिं व भिन्नसुसंघेहि ॥ ८ ॥

[कीरमुखसदृशै राजते वसुधा पलाशकुसुमै ।

बुद्धस्य चाणवन्दनप्रवृत्तैरिव भिन्नसंघै ॥]

बुद्धदेवके चरणवन्दनार्थ धरादायी भिन्नभोंकी भाँति शुक्लमुखसदृश रत्नवर्ण पलाश पुष्पोंसे वसुधा शोभान्वित हो रही है ॥ ८ ॥

जं जं पिटुलं अङ्गं तं तं जाअ क्विस्तोअरि क्विस ते ।

जं जं तणुअ तं तं पि णिट्ठअं किंस्थ माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पुलमङ्गं तत्तज्जात कृशोदरि कृशं ते ।

यद्यत्तनुकं तत्तद्वि निष्ठितं किमत्र मानेन ॥]

हे कृशोदरी, तुम्हारे जो-जो अङ्ग स्थूल होते हैं, वे ही कृश हो गए हैं और जो-जो अङ्ग सूक्ष्मावतः कृश होते हैं, वे-वे अङ्ग कृशताकी चरमसीमा पर पहुँच गए हैं, इसलिये मान द्वारा क्या मिलेगा ? ॥ ९ ॥

ए गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।

मोत्तिण पुलिन्दा मोत्तिआइँ गुज्जाओँ गंहन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन द्वियते जनो द्वियते यो येन भावितस्तेन ।

मुक्खावा पुलिन्दा मौत्तिकानि गुज्जा गृह्णन्ति ॥]

कोई व्यक्ति केवल गुण द्वारा किसी के आकर्षणका विषय नहीं होता । जो व्यक्ति जिस वस्तु द्वारा प्रेम रूप लगता है, वह व्यक्ति उसी वस्तु द्वारा आकृष्ट होता है । उरकल के पर्यंतवासी पुलिन्दगण मुक्खाको श्यामकर गुज्जाको ही प्रहण करते हैं ॥ १० ॥

लङ्कालभाणं पुत्रत्र वसन्तमासेकलक्षपसरणं ।

आपीअलोद्धिआणं चीह्वेइ जणे पलासाणं ॥ ११ ॥

[लङ्कानिवासी पुत्रक वसन्तमासैकलक्ष प्रसराणम् ।

आपीतलोद्धितानां विभेति जनः पलासानाम् ॥]

हे पुत्रक, लङ्कानिवासी चर्षी, अस्त्र एवं मांस में अधिकतर प्रसृत एवं अत्यधिक रुधिरपायी राक्षसोंकी मूर्ति दालास्थायी, वसन्त मासमें ही अधिकतर प्रसृत एवं ईपत् पीत एवं लोहित वर्ण पलाशापुष्पों से सुन्दर नारियाँ दरती हैं ॥ ११ ॥

घेत्तूण चुपणमुट्ठिं हरिस्तूससिआए वेपमाणाए ।

भिसिणेभित्ति पिअअमं हत्थे गन्धोदअं जाअं ॥ १२ ॥

[गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं हर्षोऽमुष्कित्ताया वेपमानायाः ।

अवद्विरामीति प्रियतमं हस्ते गन्धोदकं जातम् ॥]

हंपसे उद्गुसित हो, सात्विक भावमे कौपती हुई नामिका गन्धद्रव्यको चूर्णमुष्टि प्रहणकर प्रियतमके ऊपर विकीर्ण करेगी, ऐसा सोचते ही धर्मभावमे उसके हाथमें गन्धमल द्रव्य हो गया ॥ १२ ॥

पुष्टिं पुससु किसोअरि पडोहरङ्कोह्यपत्तचित्तलित्रं ।
 छेआहिं दिअरजाआहिं उज्जुए मा कलिजिहिसि ॥ १३ ॥
 [पृष्ठं प्रोच्छ हृशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रचित्रितम् ।
 विदग्धाभिर्देवरजायामि श्वलुके मा कलिष्यसे ॥]

हे हृशोदरी, मकानके बादवाले घरमें सज्जिहित अङ्कोट वृक्षके पत्ते द्वारा चित्रित अपनी पीठको पोंछ डालो । नहीं तो, अरी सरले, तेरी चतुर देवरानियों तुसे समझ जायेंगी ॥ १३ ॥

अच्छीईं ता थइस्सं दोहिं वि हत्योद्धिं वि तस्सि दिट्ठे ।
 अङ्गं कलम्भकुसुमं व पुलइअं कहें णु ढक्किस्सं ॥ १४ ॥
 [अचिणी तावरस्पगयिष्यामि द्वाभ्यामपि हस्नाभ्यां तस्मिन्गृहे ।
 अङ्गकदम्बकुसुममिथ पुलकितं कथं नु पद्मादयिष्यामि ॥]

उसके दिखायी पड़नेपर, मैंने हाँना दो हाथों द्वारा दोनों नेत्रोंको ढक लिया, किन्तु कदम्बके पुष्पकी नाईं पुलकित सारे शरीरको कैसे ढक लूँ ? ॥ १४ ॥

स्त्रक्ष्णावाउत्तपिप घरम्मि रोज्जण णीसहणिसण्णं ।
 दावेइ व गअवइअं विज्जुज्जोओ जलहरणं ॥ १५ ॥
 [स्त्रक्ष्णावातोत्तृणिते गृहे हदिश्वा निःसहनिपण्णाम् ।
 दर्शयतीव गतपतिकां विद्युद्द्योतो जलधराणाम् ॥]

स्त्रक्ष्णावात में तृणशून्यीकृत गृहमें दुसहश्लेशवश रोदन करने वैठी हुई प्रोवितपतिका रमणीको विद्युत् की ज्योति आकाशवर्ती मेघके निक्ट दिखायी दे रही है ॥ १५ ॥

भुअसु जं साहीणं कुत्तो लोणं कुगामरिद्धम्मि ।
 सुहअ सलोणेण वि किं तेण सिणेहो जहिं ण तिथि ॥ १६ ॥
 [भुद्धव यस्वशाधीनं कुतो लावणं कुगामरिद्धे ।
 सुभग सलवणेनापि किं तेन स्नेहो यद्य नास्ति ॥]

अपने उद्योग द्वारा जो सुट रहा है, उसीका भोजन करो । इस गौवर्हमें रन्धनकार्यकेलिपु लवण कहाँ मिलेगा ? हे सुभग, जिय वस्तुमें स्नेह (स्निग्धता) नहीं है, उसके केवल लवण (लावण्य) युक्त होनेसे क्या लाभ ? ॥ १६ ॥

सुहृपुच्छिआइ हलिओ मुहपङ्कअसुरहिपवणणिव्यचित्रं ।

तद्ध पिअइ पअइकडुअं पि ओसहं जण ण णिट्ठाइ ॥ १७ ॥

[सुहृपुच्छिकाया हलिको मुखपङ्कजसुरभिषयननिर्वापितम् ।

तथा पिबति प्रकृतिकटुकमप्यौषधं यथा न तिष्ठति ॥]

हलिकने भी अनुरक्त शरीर सुखत्रिशामाकारिणीके मुखकमलके समीर द्वारा शीतल किये हुए स्वभाव कटुऔषधिको इस प्रकार भी डाला कि उसका किञ्चिन्मात्र भी शेष नहीं रहा ॥ १७ ॥

अह सा तद्धिं तद्धिं विवअ वाणोरचणम्मि शुक्कसंकेआ ।

तुह दंसणं विमग्गइ पअभट्टणिहाणठाणं च ॥ १८ ॥

[अथ सा सत्र तर्पैर वानीरवने विस्मृतसद्देता ।

तव दर्शनं विमार्गति प्रभ्रष्टनिधानस्थानमिव ॥]

घादमें वह नायिका मञ्जेनस्थलकी घात भूलाकर विस्मृत आहारस्थानकी भौंति, उसी-उसी घाणीकुअमें तुम्हें खोज रही है ॥ १८ ॥

दडरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कन्तो ।

राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥ १९ ॥

[दडरोपकलुपितस्यापि सुननस्य मुखादप्रियं कुतः ।

राहुमुपेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ॥]

अस्थुकट-रोषवश कलुषित होनेपर भी मले आदमीके मुँहसे अप्रिय बात कहीं निकलती है ? राहुके मुखमें पड़े हुए चन्द्र किरण अमृत ही देते हैं ॥ १९ ॥

अचमाणिओ वि ण तद्दा तुमिज्जइ सज्जणो विहवहीणो ।

पडिमाऊं असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानितोऽपि न तथा दूयते सज्जनो विभवहीनः ।

प्रतिवर्तुंममर्थो मान्यमानो यथा परेण ।

वैभवहीन सज्जन अपमानित होनेपर भी उतने झुग्न नहीं होते, जितना कि दूमरों द्वारा माने जानेपर भी वैभवके अभावमें प्रत्युपकारसे असमर्थ होने पर स्थित होते हैं ॥ २० ॥

कलहन्तरे वि अविणिग्गआइं हिअअम्मि जरमुचगआइं ।

सुअणकआइ रहम्साइं उहइ थाउन्त्तए अग्गी ॥ २१ ॥

[कलहान्तरेऽप्यविनिर्गतानि हृदये जरागुपयन्तानि ।

सुखनञ्जुतानि रहस्यानि दहरपायु संश्रमिः]

सुखनों द्वारा सुनी हुई भेदकी बातें भी कलहमें उसके मुँहसे नहीं निकलतीं, उसके हृदयमें ही ये नष्ट हो जाती हैं और उसके आयुष्यके साथ साथ अग्नि उन्हें दग्ध करती हैं ॥ २१ ॥

सुखीओ अद्गणमाधवीर्णं दारग्लाउ जाआउ ।

आस्मासो पान्थपलोअणे वि पिट्ठो गअवईणं ॥ २२ ॥

[स्वयंका अद्गणमाधवीर्णं द्वारगला जाताः ।

आश्वासः पान्थप्रलोकनेऽपि नष्टो गतपतिकानाम् ॥]

आँगनमें आरुढ़ माधवीलताके गुच्छे घरके दरवाजेके अगलास्वरूप हो गए हैं, धरन् प्रोषितपतिकाओंके कष्टोंकेलिए पथिकोंके प्रति दृष्टिसेपका आश्वास भी हमेशाकेलिए पूर्णतः नष्ट हो गया है ॥ २२ ॥

विअदंसणसुहरसमउलिआई जइ से ण होन्ति णअणाइं ।

ता केण कणणरइअं लक्खिज्जइ कुयलअं तिस्सा ॥ २३ ॥

[विप्रदर्शनसुखरममुकुलिते यदि तस्या न भवतो नवने ।

तदा केन कर्णरचित लक्ष्यये कुशल्यं तस्याः ॥]

उस नायिकाके नेत्र यदि विप्रदर्शन सुखले मुकुलित न होते तो क्या उसके कानोंमें रचित नीलकमलको कोई देख सकता ? ॥ २३ ॥

द्विन्निपल्लुसुत्तहलमुहकड्ढणसिठिले पइम्मि पासुत्ते ।

अप्पत्तमोहणसुहा घणसमअं पामरी सवइ ॥ २४ ॥

[कर्दममग्रहलमुखरूपंशिविले तस्यै प्रसुप्ते ।

अप्राप्तमोहनसुखा घनसमयं पामरी शपति ॥]

कीचड़में कैसे हुए हलही नोकको खींचकर धकेलूँ पतिके सीमानेपर अप्राप्त सुरतसुखापामरवधू वर्षाकालको अभिराग दे रही है ॥ २४ ॥

दुम्मेन्ति देन्ति सोअखं कुणन्ति अणुराअअं रमावेन्ति ।

अरइरइयन्धघाणं णमो णमो मअणघाणार्णं ॥ २५ ॥

[दृग्भक्ति ददति सौख्यं कुचन्त्यजुरागं रमयन्ति ।

अरतिरथाभवेभ्यो नमो नमो मदनवाजेभ्यः ॥]

ध्याकुलता एवं विन्तानुरागनके सहायक मदनके धारणको नमस्कार करती हैं, कारण ये सब प्रियकी अनुपस्थितिमें मनोव्यथा भी उत्पन्न करते हैं और सुख भी प्रदान करते हैं, वा कभी प्रेमानुराग बढ़ा देते हैं एवं कभी सौमनस्य उत्पन्न कर देते हैं ॥ २५ ॥

कुसुममथा वि अहपरा अलक्षणां वि दूस्वपभावा ।
भिन्दन्ता वि रद्वभरा कामस्स सरा बहुविधत्वा ॥ २६ ॥
[कुसुममथा अप्यतिशया अलक्ष्यस्पर्शा अपि दु महप्रतापाः ।
भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शरा बहुविधत्वाः ॥]

कामदेवके वाण नाना प्रकार विशिष्ट अर्थात् परस्पर विरहधर्मी हैं । कारण, कुसुममय होनेपर भी ये अत्यन्त तिप्तग हैं, लक्ष्यवस्तुको रसों क्रिये बिना ही ये उससे दुःसह ताप प्रकट करते हैं एवं हृदय-भेदन करनेपर भी रतिसम्पादन कर्ता होते हैं ॥ २६ ॥

ईसं ज्ञेयन्ति द्वायेन्ति मम्महं विष्पिअं सदायेन्ति ।
विरहे ण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुभग्गा ॥ २७ ॥
ईश्यांजनयन्ति दीपयन्ति मम्मथं विप्रिय साहयन्ति ।
विरहे न ददति मत्तुंमहो गुणास्तरय बहुमार्गाः ॥]

अहो, प्रिय अथवा कामवाण की गुणावली बहुविध है—कभी तं ये ईश्यां उत्पन्न करते हैं, कभी मदनभाव उद्दीपित करते हैं, कभी अप्रियाचरण सहन कराते हैं एवं विरहमें भी मरनेका अवकाश नहीं देते ॥ २७ ॥

णीआइँ अज णिकिय पिणसुणवरङ्गओँ धराईप ।
घरपरिधाडीअ पहेणआइँ तुह दंसणासाप ॥ २८ ॥
[नीतान्यस निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वराक्या ।
गृहपरिधाट्या प्रहेणकानि तथ दर्शनाशया ॥]

हे निर्दय, तुम्हारे दर्शनकी आशामें वह दीनानाथिका नूनन रत्नवस्त्र पहनकर आज वह घर घर बापन बँट रही थी, किन्तु तुम्हारी अनुकम्पा उसे नहीं मिली ॥ २८ ॥

सूइज्जइ हेमन्तम्मि बुग्गजो पुण्णुआसुअन्धेण ।
धूमकविलेण परियिरलतन्तुणा जुण्णनडण्ण ॥ २९ ॥

[सूक्ष्मते हेमन्ते दुरांतः करीपासिसुगन्धेन ।

धूमकपिलेन परिविरलतन्तुना जीर्णवटकेन ॥]

हेमन्तकालमें नायकको गोहूँडे की अग्नि सुगन्धिविधिष्ट, धूँँ के कारण पिङ्गल वर्ण एवं सभी प्रकार से विरलसूत्रमय जीर्णवटद्वारा उसे अत्यन्त दरिद्र सूचित किया जाता है ॥ २९ ॥

खरसिन्धिरउल्लिङ्घिआई कुण्ड पद्मिओ हिमागमपहाए ।

आभ्रमणजलोल्लिङ्घिअहृत्थफंसमसिणाई अङ्गाई ॥ ३० ॥

[तीक्ष्णपलालोल्लिङ्घितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते ।

आचमनजलाद्रितहस्तस्पर्शमसृणान्यङ्गानि ॥]

शिशिरके समागममें प्रभात समय पथिक तीक्ष्ण पुञ्जलद्वारा छत अङ्गोंको आचमन जलसे गीले हाथके स्पर्शद्वारा मसृण अथवा चिकना कर रहा है ॥ ३० ॥

णक्खक्खुडीअं सहआरमज्जति पामरस्य सीसम्मि ।

वन्दिम्मिव हीरन्ती भमरज्जुआणा अणुसरन्ति ॥ ३१ ॥

[नलोत्तण्डितो सहकारमज्जती पामरस्य शीर्षे ।

बन्दीमिव द्विपमार्णो भमरयुवानोऽनुसरन्ति ॥]

नलद्वारा उन्मूलित एवं पामरों द्वारा सिरपर ले जाती हुई आभ्रमज्जियोंको बलद्वारा अपहृत बन्दिनी समझकर भ्रमरयुवा उनका अनुसरण कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

सूरच्छलेण पुत्तज करस तुमं अज्जलि पणामेसि ।

हासकडक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवाणं जेकारा ॥ ३२ ॥

[सूर्यच्छलेन पुत्रक करमै खमज्जलि प्रणामयसि ।

हास्यकराद्योन्मिथान भवन्ति देवानो जयकाराः ॥]

हे पुत्रक, तुम सूर्यके चहाने किये अज्जलिदेतेहुए प्रणामकर रहे हो ? देवताओंकी स्तुति हास्य एवं कटाक्षद्वारा मिथित होने योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

मुह्विज्जुविअपईवं थियज्जसासं ससद्धिओल्लायं ।

सयहस अरन्सिओद्धं चोरिअरमिअं सुहायेइ ॥ ३३ ॥

[मुह्विन्मावितमदीपं निरुद्भासं ससद्धितोऽपं ।

पापयत्तरचित्तोऽं चोरिकारमित्तं सुपयति ॥]

अिमसे मुखमाहा द्वारा दीपक बुझाया जाय, सौत भवरुद्र हो जाय, सशङ्कभायसे मलार चके, एवं शान शपथद्वारा अघरदशन वञ्चित हो, यह चौधरमग सुत्र उरण कराना है ॥ ३३ ॥

गेअच्छलेण भरिउं कम्स तुमं उअसि निम्भदकण्ठं ।

मण्णुपडिरुद्धकण्ठद्वणित्तपल्लिअकउदल्लामं ॥ ३४ ॥

[गेयच्छलेन शृङ्गाका कण्य एव रोद्विपि निर्भरोकण्ठम् ।

मन्युप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यत्त्वलिताशरोदनापम् ॥]

गानेके पहाने बिसे शरणकर तुम रोती हो, इय रोदनसे तुम्हारी उरकण्ठा की अनिश्चयता प्रकट होती है एय इससे तुम्हारे शोकनिरुद्ध कण्ठसे अर्धनि सृत एय रत्नलितापर प्रलाप सुनामी पड़ता है ॥ ३४ ॥

यहलतमा ह्अरार्हं अज्ज पडत्थो पई घरं सुण्णं ।

तह जग्गेसु सअज्जिअ ण जहा अम्हे मुत्तिज्जामो ॥ ३५ ॥

[बलहनमा हतरात्रिरथ प्रोषित पतिगृहं शून्यम् ।

तथा आगृहि प्रतिवेशिष यथा घय मुष्यामहे ॥]

हुभांग्यपूर्णं शत्रि गादान्धकाराच्छ्र है, पति भी आज ही प्रवासाधं गया है, मेरा घर सूना है । हे पड़ोसी (उपपति), इस प्रकार जागृत रहना जिससे हमारे यहाँ चोरी न हो ॥ ३५ ॥

संजीवणोसहिम्मिय सुअस्स रक्खइ अणण्णयापारा ।

सासू णवम्भइंसणकण्ठागअजीविअं सोहं ॥ ३६ ॥

[सञ्जीवनीपथमित्र सुतस्य रक्षयनन्ययापारा ।

अधूनवाध्रदशनकण्ठागतजीवितं श्रुपाम् ॥]

सास नक्षत्रलघर दशनके कारण, कण्ठागत प्राण पुत्रवधूको पुत्रकेलिप संजीवन औपधिके समान समझकर, अनन्यकर्मा होकर रक्षा करती है ॥ ३६ ॥

णूर्णं हिअअणिहित्ताइ घससि जाआइ अम्ह हिअअम्मि ।

अण्णह मणोरहा मे सुहअ कहं तीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥

[नून हृदयनिहितया घससि जाययास्माक हृदये ।

अन्यथा मनोरथा मे सुभग इथ तथा विज्ञाता ॥]

[हे सुभग, तुम निश्चय ही अपने हृदयमें निहित अपनी भायाँको साथ लेकर मेरे हृदय में पास कर रहे हो ; नहीं तो मेरे मनोगतभावको उसने कैसे जान लिया ? ॥ ३७ ॥

तद् सुहृत् अहंसन्ते तिससा अच्छीहिं कण्णलमोहिं ।
दिण्णं घोळिपाहेहिं पाणिअं वंसणमुह्णं ॥ ३८ ॥

[स्वयि सुभग अहरयमाने तरया अहिभ्यां कर्णलमाभ्यां ।

वत्त घूर्णनशीलवात्पाभ्यां पानीयं दर्शनमुखेभ्यः ॥]

हे सुभग, तुम उसके नयनपथ से अहरय होने पर, उसके कर्णपर्यन्त
विरक्त घ्राणसे घूर्णनशील नयनद्वय तुम्हारे दर्शन मुखवेप्रति जलाञ्जलि
देरहे थे ॥ ३८ ॥

उप्पेन्नागत तुह् सुहृदंसण पडिरुद्धजीविआसाइ ।
दुह्दिआइ मए कालो कित्तिअमेत्तो व्व पेअव्वो ॥ ३९ ॥

[उत्प्रेक्षागत स्वमुखदर्शनप्रतिरुद्धजीविताशया ।

दुःखितयामया कालः कियन्मात्रो वा नेतव्यः ॥]

ध्यान वा कल्पनामें प्राप्त तुम्हारे मुखदर्शनद्वारा मेरे जीवनकी आशा
स्थापित रही है ; किन्तु इस प्रकार दुःखी होकर मैं किन्ता समय
बिताऊँगी ? ॥ ३९ ॥

घोलीणाल्लिन्धअरुअजोव्वणा पुत्ति कं ण दुम्मसि ।
दिट्ठा पणट्ठपोरणजणवआ जम्मभूमि व्व ॥ ४० ॥
[स्वतिक्रान्तालचित्तरूपयौवना पुत्रि कं न दुनोषि ।
दट्ठा प्रणष्टपोरण जनपदा जन्मभूमिरिव ॥]

हे पुत्री, तुम्हारा पूर्वकालीन रूप यौवन विगलितहोनेसे अब वैसा दिखायी
नहीं पड़ता एवं तुम विनष्ट पूर्वजोंके निवास (जन्मभूमि) की भाँति दिखायी
पड़कर जिसे दुःख नहीं देती ? ॥ ४० ॥

परिओसविअसिपहिं भणिअं अच्छीहिं तेण जणमज्जे ।
पडिघण्णं तीअ वि उच्चमन्तसेपहिं अहेहिं ॥ ४१ ॥
[परितोषविक्रिस्ताभवा भणितमन्दिभ्यां तेन जनमध्ये ।
मतिपत्रं तयात्पुद्गलत्पेदैरङ्गै ॥]

अनेक लोगोंके बीच उस नायकने अपने परितोषविकसित नयनद्वय द्वारा
अपना अभिमत प्रकाशित किया । उसे नायकने भी उसके चहे हुए श्वेदजल-
विनिष्ट अङ्गों द्वारा उस अभिमतको अङ्गीकार कर लिया था ॥ ४१ ॥

एककमसंदेसाणुराअवड्ढन्त कोउह्हराई ।
दुःखं असमत्तणोरह्हराई अचट्टन्ति भिणुणाई ॥ ४२ ॥

[अन्योन्यसदेशानुशासनधर्मानक्रीणुलानि ।

दुःप्रमत्तमाप्तमनारथानि निष्कृति मिथुनानि ॥]

दोनों प्रेमी परस्पर प्रेरित प्रणय वार्ताद्वारा उत्पन्न अनुरागमें क्रीणुलके
षड्जानेपर मिलन मनोरथ पूरा न कामरुतेके कारण दुःप्रमत्ते रह रहे हैं ॥ ४२ ॥

जइ सो ण घट्टहो विअ गोत्तग्गाहणेण तस्स मद्धि पीम्य ।

होइ मुहं ते रविअरफंसव्विसहं च तामरसं ॥ ४३ ॥

[यदि न न घल्लम एव गोप्रमहणेन तस्य सति किमिति ।

भवति मुष्यं तव रविकरस्यर्थाधिकसितमिव तामरसम् ॥]

हे सखि, यह यदि तुम्हें प्रिय न होगा तो उसका नाम लेनेपर तुम्हारा
मुख सूर्यकिरणके संस्पर्शमें विकसित पत्रकी भाँति प्रतीयमान क्यों होगा ? ॥

माणदुमपरुसपवणस्स मामि सव्वद्वणिब्बुदअरस्स ।

अवऊहणस्स भदं रणाडअपुव्वरहस्स ॥ ४४ ॥

[नातदुमपरुसपवणस्य मालुत्थानि स्वोद्धानिर्घृति करस्य ।

भवगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरहस्य ॥]

मभी भद्रोंके सुखविधायक, रतिनाटकके पूर्वरहस्यकी आश्लिष्टनकी शुभ-
कामना करती हूँ ॥ ४४ ॥

णिअअणुमाणणीसङ्गु द्विअअ दे पसिअ विरम एत्ताहे ।

अमुणिअपरमथ्यजणाणुलग्ग कीस म्हे लहुपसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमाननिःसङ्का हृदय हे प्रसीद विरमेशानाम् ।

अज्ञातपरमार्थजनानुष्ठान किमिष्यस्मांसुखपयि ॥]

हे हृदय, शुभ अपने अनुमानद्वारा ही शङ्काशून्य हुए हो, मग्गति नायककी
सोजसे विरत होओ, ऐसे अज्ञात मर्म व्यक्तिमें भासक होना, हम जैसी
ललनाओंको इतना छोटा क्यों बना देता है ? ॥ ४५ ॥

ओसद्विअजणो पइणा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।

चन्दो त्ति तुज्झ चअणे विइण्णकुसुमाञ्जलिविलक्खो ॥ ४६ ॥

[आवसधिकजनः यथा रलाघमानेनातिचिरं हसिताः ।

चन्द्र इति तव वदने वितीर्णकुसुमाञ्जलिविलसः]

तुम्हारा मुख ही चन्द्र है, ऐसा मोचकर उसके प्रति कुसुमाञ्जलि देनेसे
रुजित अर्घदानार्थमें निषमित गृहस्थकी प्रशंसाकर तुम्हारा पति बहुत देर
तरु हँसा है ॥ ४६ ॥

छिज्जन्तेहिं अणुदिपं पच्चक्खम्मि वि तुमम्मि अङ्गेहिं ।

वालअ पुच्छिज्जन्ती ण अणिमो कस्स किं भणिमो ॥ ४७ ॥

[जीयमाणौरनुदिनं प्रत्यक्षेऽपि स्वदृग्क्षैः ।

बालक पृच्छ्यमाना न जानीमः कस्य किं भणामः ॥]

हे बालक, तुम्हारे स्थापित होनेपर भी प्रतिदिन अङ्गोंको चीण होते देख
इसका कारण पूछे जानेपर मैं किसे क्या उत्तर दूँ ? यह नहीं जानती ॥ १७ ॥

अङ्गाणं तणुसारअ सिक्खावअ दीहरोअव्वाणं ।

विणआइक्कमआरअ मा मा णं पम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[अङ्गानां तनुकारक शिचक दीर्घोदिसंघ्यानाम् ।

विनयातिक्रमकारक मा मा एनां प्रमरिष्यमि ॥]

हे नायक, तुम सखीके अङ्गोंकी कृशताके विधायक हो, उसके दीर्घोदनके
मूल शिचक एवं शीलभङ्ग करनेके कारण हो । तुम अब कभी उसे स्मरण न
करना ॥ ४८ ॥

अण्णह ण तीरइ च्चिअ परिवहन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खं ॥ ४९ ॥

[अग्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

मरणरूप तुष्टि माधनके अतिरिक्त किन्ही दूसरे प्रकारसे प्रियतमके
विरहमें बढ़नेवाला भारी दुःख शान्त न होगा ॥ ४९ ॥

वण्णन्तीहिं तुह गुणे बहुसो अम्हिं छिज्जईपुरओ ।

वालअ सअमेअ फओसि दुद्धहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीभिस्तव गुणान्बहुशोऽग्माभिरसतीपुरतः ।

बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कस्मै कुप्यामः ॥]

असतियों के सामने मैंने ही तुम्हारी गुणावली का अद्भुत वर्णन किया है ।
इसके फलस्वरूप, हे बालक, स्वयं मैंने तुम्हें दुर्लभ बनालिया है । किसे कोप
दिसायें ॥ ५० ॥

जाओ सो वि विलम्बो मय वि हसिऊण गाढमुचगूदो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गर्णिठ विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलम्बो मयापि हसित्वा गाढमुचगूदः ।

प्रथमापर तस्य निवसनस्य ग्रंथि विमार्तवमाणः ॥]

[वचने यचने चलच्छीर्षशून्यावधानहुङ्कारम् ।

सवि ददमी निःश्वासान्तरेषु किमिपरमान्दुनोपि ॥]

हे सवि, प्रत्येक बातमें निःश्वासके समय सिरसञ्चालनकर शून्यावधानके 'हूँ-हूँ' शब्द उच्चारितकर हमलोगोंको संतप्त क्यों करती हो ? ॥ ५६ ॥

सम्भावं पुरुच्छन्ती बालम रोआविआ तुअ पिआप ।

णत्थि च्चिअ कअसवहं हासुम्मिस्सं भणन्तीए ॥ ५७ ॥

[सद्भावं पृच्छन्ती बालक रोदिता तत्र प्रियया ।

नारत्येव कृगशपथं हासोन्मिभं मणन्या ॥]

हे बालक, उसके प्रति तुम्हारे सद्भावके सम्बन्धमें जिज्ञासा करनेपर तुम्हें तुम्हारी प्रियाने खलाया है । शपथ दिलानेपर उसने हँसकर मुझे कारण यतलाया कि तुम्हारा सद्भाव एकदम नहीं है ॥ ५७ ॥

एतथ मए रमिअव्वं तीअ समं चिन्तिऊण हिअएण ।

पामरकरसेओह्ला णिअअइ तुघरी वविज्जन्ती ॥ ५८ ॥

[एतन्न मया रम्यत्वं तथा समं चिन्तयित्वा हृदयेन ।

पामरकरस्वेदार्द्रा निपतति तुघरी उप्यमाना ॥]

इसी अरहरके छेतमें मैं उसके साथ रमण करूँगा; यह सोचते ही पामरके स्वेदोद्गमसे आर्द्र हो उप्यमान (पकमान) अरहरका धीम गिर सड़ा ॥ ५८ ॥

गह्वरसुओच्चिपसु वि फलहीवेण्टेसु उअह यहुआप ।

मोहं भमर पुलइओ विलग्गसेअहली हत्थो ॥ ५९ ॥

[गृहपतिमुतावचितेष्वणिकर्षासृग्नेषु पश्यन मध्याः ।

मोघं भ्रमति पुलकितो विलग्नस्वेदाद्बहुलिहृतः ॥]

तुमलोग देवो, गृहपतिके पुत्र अथवा मेरे पतिद्वारा अयनक्रियेद्वारा कुल्लरार्षस्युक्त वृत्तसमूहमें बधूके विलग्नस्वेदान्वित बहुलिविशिष्ट हाथ पुलकित होकर घृषाही आगे बढ़ रहा है ॥ ५९ ॥

अज्जं मोहणसुद्धिअं मुअत्ति मोत्तू पलाएए हत्तिए ।

दरफुड्डिअवेण्टभारोणआइ हसिअं च फटाहीए ॥ ६० ॥

[आर्षा मोहनसुत्तितां गृन्तेति मुक्ताया पलायिते हलिके ।

दरफुड्डिनवृत्तभारोणनया हयितमिय कार्याया ॥]

सुरतसुत्तिता आर्षाको मशहूआ समस्तकर भयके बारे उसे छोड़ना हलिक

भाग गया, क्रियित् लिका हुआ फूल घुग्गुनसमूहके भारसे भयगत होकर कार्पासी भी मानो हँसने लगा ।

गोसासुकम्पिअपुलरपदिं जाणन्ति णश्चिउं घण्णा ।
अम्हारिसीदिं दिट्ठे पिअम्मि अण्णा वि घीसरिओ ॥ ६१ ॥
[निःश्वासोःकम्पितपुलकितैर्जनन्ति नतितुं धन्याः ।
अस्नादशोभिर्दृष्टे मिये आम्मापि विस्मृतः ॥]

नृत्यके समय प्रेमीके अङ्गस्पर्शसे जो निःश्वास उदङ्ग एवं पुलकके साथ नृत्य करना जानती हैं, वे धन्या हैं, किन्तु मेरी जैसी रगणीके मियको देख पाते ही आम्माविस्मृत हो जाती हैं ॥ ६१ ॥

तणुपण वि तणुइज्झइ खीपण वि किलज्जप वत्ता इमिण ।
मज्झत्येण वि मज्झणे पुत्ति कइं तुज्झ पडिच्चफ्फो ॥ ६२ ॥
[तनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते यत्नादनेन ।
मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तव प्रतिपद्यः ॥]

हे पुत्रि, तुम्हारी कमर दुबली एवं पतली है, इस कमानेद्वारा तुम अपने प्रतिद्वन्द्वियोंकी दुबली-पतली यत्नानेमें किस प्रकार समर्थ हो रही हो ? ॥ ६२ ॥

याद्विव्य वेज्जरहिओ धणरहिओ सुअणमज्झयासो व्व ।
रिउरिद्धिदंसणम्मिव दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥
[श्वाधिरिव वैद्यरहितो धनरहितः स्वजनमध्यवास इव ।
रिदुष्यद्विदवांचमिव दुःसहनीयरतव विभोगः ॥]

तुम्हारा विरह मेरेलिप वैद्यरहित श्वाधिकी भौंति, स्वजनोंके बीच निर्धन हो वामकरनेकी भौंति तथा अपने नेत्रद्वारा प्रायुओंकी समृद्धि देखनेके समान प्रतीत होता है ॥ ६३ ॥

को रथ जअम्मि समरथो थइउं विरिधण्णणिम्मलुत्तुं ।
द्विअरं तुज्झ णराद्विय मअणं च पओहरं मोत्तुं ॥ ६४ ॥
[कोऽत्र जगति समर्थः स्वगयितुं विरतीर्णनिर्मलोत्तुम् ।
हृदयं तव नराधिप गगनं च पयोधरान्मुवत्वा ॥]

हे राजन्, पयोधर (रथन वा मेघ) के अतिरिक्त कौनसी वस्तु हम जगत्में विरतीर्ण, निर्मल एवं उत्तुम् तुम्हारे हृदय एवं गगनपर अधिकार करनेमें समर्थ है ? ॥ ६४ ॥

आअणोइ अडअणा कुडइहोडूमि दिण्णसङ्केआ ।
 अग्गपअपेहिआणं मम्मरअं जुण्णपत्तार्णं ॥ ६५ ॥
 [आकर्णयायसती कुआओ दत्तसङ्केता ।
 अग्रपदप्रेरितानां मर्मरक जार्णयत्राणाम् ॥]

निकुञ्जतले दत्तसङ्केता अमती गुम्हारे पादाग्र द्वार आहत जीर्णपत्रोंका मर-
 मर शब्द सुन रही है ॥ ६५ ॥

अद्विलोत्ति सुरहिणीससिअपरिमलावद्धमण्डलं भमरा ।
 अमुणिअचन्दपरिहयं अपुव्वकमलं मुहं तिस्ता ॥ ६६ ॥
 [अभिलीयन्ते सुरभिनि अस्सितपरिमलावद्धमण्डलं भमरा ।
 अज्ञातचन्द्रपरिभवमपूर्वकमल मुख तरया ॥]

अपूर्व कमलके समान नायिकाका जो मुख कभी भी चन्द्रसे पराजित नहीं
 हुआ, उस मुखसे घटिर्गन सुरभियुक्त नि धामका परिमल पानेके लोभमें भँरि
 (कामुकगण) दल बनाकर मुखकीभोर बंदरहे हैं ॥ ६६ ॥

धीरावलम्बिरीअ वि गुरुअणपुरओ तुममि योलीणे ।
 पडिओ से अच्चिउणिमीलणेण पम्हट्टिओ घाहो ॥ ६७ ॥
 धैर्वावलम्बनशीलाया अपि गुरुजनपुरतसववि पत्तिकान्ते ।
 पत्तितरतरया अच्चिनिमीलनेण पथमस्थितो घाप्य ॥]

गुम्हारे चले जानेपर, गुरुजनोंके समुत्त धैर्वावलम्बनकर स्थिर रहनेपर भी,
 नायिकाकी आँख मुँद जानेपर पटक स्थित घाप्य गिर पड़ा ॥ ६७ ॥

भरिमो से सअणपरम्मुहीअ विअलन्तमाणपसराय ।
 कइअरसुत्तवत्तणथणअलसप्पेव्वलणसुहोहिं ॥ ६८ ॥
 [स्मरामस्तस्या दायनपराहमुक्त्वा विगलन्मानप्रमाया ।
 कैतवसुसोद्धतंनस्तनकलशप्रेरणमुखकेलिम् ॥]

पहले दायन पराह्मुक्ती होवेपर भी, दादमें मानभार विगलित होनेपर
 उस नायिकाने कपटनिद्राका अवलम्बनकर कावट बदलकर कुचकलनोंकी
 प्रेरणासे जित मुखकेलिको उरग्न किया था, उसे स्मरण कारहा है ॥ ६८ ॥

फग्गुच्छणणिहोसं केण वि फद्धमपसाहणं दिण्णं ।
 थणअलसमूहपलोद्धन्तसेअधोअं किणो धुअसि ॥ ६९ ॥

{ काशगुनोत्सवनिर्दोष केनापि षट्मप्रसाधमं दत्तम् ।
स्तनवल्लसमुपप्रसृष्टस्वेदधीतं किमिति घादयति ॥ }

न जाने किसने काशगुनोत्सव में गुग्गुलु निर्दोष विचारे बिना कीचड़ लगा दिया है । अपने स्तनकलशके मुँहसे निकलित स्वेदद्वारा घोड़े हुए स्तन कीचड़को पुन क्यों घो रही हो ? ॥ १९ ॥

किं ण भणितोऽसि बालव रामणिधूव्याइ गुरुवणसमकर्म ।
अणिमित्तमीसीसियलन्तवअणणअणद्धदिट्ठेहि ॥ ७० ॥
{ किं न भणितोऽसि बालक प्रामगीपुग्वागुरुजनसमकर्म ।
अनमिपमीपदीपद्वल्लननवनाधरैः ॥ }

हे बालक, गुरुओंके सम्मुख अनिमिषनयनसे मुझको तिरछाकर कटाव-द्वारा गुग्गुलु देकर रामिणीकी कन्याने तुमसे क्या नहीं कहा ? ॥ ७० ॥

णअणअन्तरघोलन्तवाहभरमन्थराइ दिट्ठीय ।
पुणरुत्तपेलिरीय बालव किं जं ण भणितोऽसि ॥ ७१ ॥
{ नयनाभ्यन्तरघूर्णमानवाष्पभरमन्थराया इच्छया ।
पुनरुत्तप्रेषणशीलया बालक किं वन्नभणितोऽसि ॥ }

नयनाभ्यन्तरमें घूर्णमानवाष्पभरित मन्थर रहिये गुग्गुलु देकर देकर, हे बालक, उस नायिका ने ऐसा क्या है जिसे तुमसे यह न दिया हो ? ॥ ७१ ॥

ओ सीसमिम विइण्णो मज्झ जुआणेहिं गणवइं आसी ।
तं व्विअ एहिं षणमाणि ह्वअजरे द्दोहि संतुट्ठा ॥ ७२ ॥
{ यं शीपैं त्रितोर्णो मम युवमिगणपतिरासीत् ।
तमेवेदार्थो षणमामि ह्वअजरे भव रातुष्टा ॥ }

सुबकीने मेरे मिरपर जिस गणपतिको दान किया था, अथ यौवन रिगत होनेपर उन्हींको प्रणाम कर रही हूँ । हे हतभागे, तुम अन्तुष्ट होओ ॥ ७२ ॥

अन्तोहुत्तं उज्जइ जाआसुण्णे घरे हलिअवत्तां ।
उप्पयाअणिहाणाइं व रमित्तट्ठाणाइं पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥
{ अन्तरभिमुख दहते जापाशून्ये गृहे हालिकपुत्र ।
उत्खातनिधानानीव रमित्तस्थानानि परपत्र ॥ }

जापाशून्य घरमें रमणके स्थानोंको, उत्खात सखिन निधिके उत्पादित

स्थानोंकी भौति समझनेके कारण उसे देखकर हलिकपुत्रके हृदयमें दाहका अनुभव हो रहा है ॥ ७३ ॥

निद्राभङ्गो आवण्डुरस्तर्णं दीहृरा अ पीसास्ता ।
जाअन्ति जस्स विरहे तेण समं कीरिसो माणो ॥ ७४ ॥
[निद्राभङ्ग आवाण्डुरत्वं दीर्घाश्च निःश्रवाणः ।
जायन्ते यस्य विरहे तेन समं कीदृशो मानः ॥]

जिसके विरहमें निद्राभङ्ग, पाण्डुरता एवं दीर्घनिःश्रास उत्पन्न होता है उसके साथ किस प्रकार मानका अवलम्बन करूँ ? ॥ ७४ ॥

तेण ण मरामि मण्णूहिँ पूरिआ अज्ज जेणरे सुहअ ।
तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्झ पुणो वि तग्गिस्सं ॥ ७५ ॥
[तेन न म्रिये मृत्युभिः पूरिताद्य येन रे सुभय ।
स्वद्वृतमना म्रियमाणा मा तत पुनरपि लगिष्यामि ॥]

हे सुभय, तुम्हारी हृदयपेशी होकर मरनेपर भी, कहीं फिर तुम्हें पतिरूपमें न पाऊँ यही सोचकर क्रीधपूर्ण होकर भी मरना नहीं चाहती ॥ ७५ ॥

अवरज्झसु वीसद्धं सद्यं ते सुहअ विसद्धिमो अग्घे ।
गुणणिग्गमरम्मि द्विअए पत्तिअ दोसा ण माअन्ति ॥ ७६ ॥
[अपराप्यस्व विघ्नार्थं सर्वं ते सुभय विपदान्महे वपम् ।
गुणनिर्भरं हृदये प्रतीहि दोषा न माम्बि ॥]

हे सुभय, विघ्नव्य होकर यथाशक्ति अपराध करो, मैं तुम्हारा सब कुछ सहन करूँगी; तुम विश्वास करना कि तुम्हारे गुणोंद्वारा पूर्ण मेरा हृदय तुम्हारे दोषों को स्थान न दे सकेगा ॥ ७६ ॥

भरिउच्चरन्तपसरिअपिअसंभरणपिसुणं यराईए ।
परिघाहो विअ दुफखत्तस चदइ णअणट्ठिओ चाहो ॥ ७७ ॥
[भूतोच्चरन्तमृतमियसंभरणपिशुनो वराक्याः ।
परीवाह इव दुःखस्य वहति नयनस्थितो घापः ॥]

दीनारगणीकी आँसुओंमें स्थित घाप, परिपूर्ण होकर निकलनेके साथ ही साथ बूदावरधामें म्रिय ही स्मृति का चिन्तन करते-करते दुःखके प्रणम्य प्रवाह की नाई प्रवादित हो रहा है ॥ ७७ ॥

जं जं फरेसि जं जं जंपसि जद्ध तुम णिअच्छेसि ।
 तं तमणुसिक्खिपरीए दीदो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥
 [यद्यत्करोषि यद्यज्ज्वरमि यथा एवं निरीक्ष्यते ।
 तत्तदनुसिक्खणशीलाया दीर्घां दिवसो म संरघते ॥]

तुम जो-जो करते हो, जो-जो घोलने हो एवं जिस प्रकार देवने हो उसका अनुसरण करने जानेवा देवती हूँ कि मेरे दिग् दूमर नहीं प्रतीत होते ॥ ७८ ॥

भण्डन्तीअ तणाहं सोत्तुं विण्णाइं जाइं पदिअस्स ।
 ताइं च्चेअ पहाए अञ्जा आअट्टइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥
 [भासंयन्त्या तृणाणि रजसुं वसानि यानि पथिकरय ।
 सान्धेय प्रमाने आर्या आवर्पति रुदती ॥]

भासंयाकर रात्रिमें पथिकको सोनेकेलिपरमणी ने पुआल दिया था, संधेरा होनेपर उसे ही रोने रोते बहोरही है ॥ ७९ ॥

यसणम्मि अणुविअगा विहवम्मि अम्मव्विआ भए धीरा ।-
 होन्ति अद्धिणसहाया समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥
 [एतस्नेऽनुद्विमा विनयेऽनर्किता भवे धीराः ।
 भवन्पभिन्नस्वभावाः समेषुविषयेषु सत्पुरुषाः ॥]

सज्जन व्यक्ति विषयमें अनुद्विष्ट, सम्यग्दर्में अगर्वित एवं भयमें धीर रहकर अनुकूल एवं प्रतिबुद्ध परिस्थितियोंमें तमस्वभावकील (रियतमज्ञ) रहते हैं ॥ ८० ॥

अञ्ज सद्वि केण गोसे कं पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।
 अहं मअणसराहअद्धिअअव्वणफोडनं गीअं ॥ ८१ ॥
 [अथ सन्नि केन प्रातः कामपि मय्ये वल्लभां स्मरता ।
 अस्माकं मदनशाराहतद्वयवगणफोटनं गीतम् ॥]

अरी सखी, प्रनीत होता है कि आज प्रातःकालही जैसे कोई प्रियतमाको स्मरणकर हस प्रकार मानकर रहा है जिसमे मदनबाणद्वारा आहत मेरे हृदय का घाव विदीर्ण हो रहा है ॥ ८१ ॥

उदुन्तमहारम्मे थणए दट्ठण मुद्धयहुआप ।
 ओसण्णरुवोलाए णीससिअं पढमअरिणीए ॥ ८२ ॥
 [उत्तिष्ठन्महात्म्यौ स्तनौ रष्ट्रा मुग्धवज्ज्वाः ।
 भवमक्षकपोलया निःशतितं प्रथमशृङ्गिण्या ॥]

शुष्क कपोल विविष्टा प्रथमगृहिणी मुरध्वधूके भारब्ध महावितार उद
दुप स्तनोंको देखकर निःश्वास केंद्र रही है ॥ ८२ ॥

गरुडभ्रुवाउलिभस्स वि बल्लुदकरिणीमुहं भरन्तदस ।

सरसो मुणालकवल्लो गभस्स हत्थे च्चिच्च मिलाणो ॥ ८३ ॥

[गुह्यप्रथाकुलितस्यापि बल्लभकृिणीमुखं स्मरत ।

सरसो मृगालकवल्लो गजस्य हस्त एव ग्लानः ॥]

आत्यन्त प्रथादर होनेपर भी प्रियतमा हृदिनीका मुँह स्मरणकर हाथीके
शुण्डपर स्थित सरस मृगालकवल्लभी ग्लान होता जा रहा है, भक्षित नहीं
हो रहा है ॥ ८३ ॥

पस्तिअ पिप का कुविआ सुअणु तुमं परअणम्मिको कोवो ।

को हु परो नाथ तुमं कीस अपुण्णाण मे सत्ती ॥ ८४ ॥

[प्रसीद प्रिये का कुविता सुतनु एवं परजने कः कोप ।

कः सल्लु परो नाथ एवं किमियपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

हे प्रिये, प्रसन्न होओ । कौन कुवित हुआ है ? सुतनु, तुमने कोप किया
है ? परजनोंके प्रति कोप कैसा ? अरे पराया कौन है ? हे नाथ, तुरही पराया
हो । कैसे ? मेरे अपुण्य की शक्ति के सदृश ॥ ८४ ॥

पद्विसि तुमं त्ति णिमिसं च जग्गिअं जामिणीअ पढमदं ।

सेसं संताअपरव्वसाइ वरिसं च योलीणं ॥ ८५ ॥

[पृथ्विसि त्वमिति निमिपमिव जागरितं यामिन्याः प्रथमार्धम् ।

कोपं सन्तापपरवशाया पर्पमिव व्यतिक्रान्तम् ॥]

'तुम आओगे' यह सोचकर रमणी ने प्राय एक निमिपके समान प्रारम्भिक
रात्रि का पूर्वार्द्ध जागकर बिताया है, फिर उत्तरार्द्धको विरह-मन्तस होकर वर्षके
समान काटदिया है ॥ ८५ ॥

अवल्लम्बह मा सङ्कह ण इमा गहलत्तिआ परिभमइ ।

अत्थक्कगज्जिउम्भन्तहित्थद्विअआ पद्विअजाआ ॥ ८६ ॥

[अवलम्बय मा संकल्पं नैवं प्रदृष्टहिता परिभ्रमति ।

आकस्मिकगर्जितोद्भ्रान्तघरतहृदया पथिकजाया ॥]

इस रमणीको पक्को, कोई आशङ्का मत करो, यह प्रहादि द्वारा आक्रान्त
होकर परिभ्रमण नहीं कर रही है, इस पथिकजायाका हृदय आकस्मिक मेघ-
गर्जन द्वारा उद्भ्रान्त होकर व्रत हो गया है ॥ ८६ ॥

केसररवविच्छेदे मकरन्दो ह्ये जेत्तिओ कमले ।

जइ भमर तेन्तिओ अण्णहिं पि ता सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥

[केसरजःसमूहे मकरन्दो भवति यावान्कमले ।

यदि भ्रमर तावानभ्यत्रापि तदा शोभसे ध्रमन् ॥]

रे भँरि, कमलके केसरपराग समूहमें जितना मधु होता है, यदि अन्य
पुष्पों में भी उतना ही मधु हो तो तुम्हारा यहाँ जाना अच्छा लगता है ॥ ८७ ॥

पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पद्धिआ हलिअस्स पिट्टपण्डुरिअं ।

धूअं दुद्धसमुद्धत्तरन्तलच्छि विअ सअह्णा ॥ ८८ ॥

[प्रेङ्गन्तेऽनिमिपाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टगण्डुरिताम् ।

दुहितरं दुग्धममुद्धोत्तरलक्ष्मीमिव सतृष्णाः ॥]

अनिमिपलोचन देवताओंने चौरमागरसे उर्ध्वगत पीतवर्णं लक्ष्मीकीओर
जिसप्रकार सतृष्णभावसे देखा था, तण्डुलादि चूर्णलेपनद्वारा पीतवर्णप्राप्त हलिक
पुत्रोंके प्रति राहगीर भी उसी प्रकार निर्निमिप एवं सतृष्ण होकर इष्टिपात
कर रहे हैं ॥ ८८ ॥

फस्स भरिसि त्ति भणिप को मे अरिथि त्ति जम्पमाणाए ।

उच्चिग्गरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए ॥ ८९ ॥

[कस्य रमरसीति भणित्ते को मेऽस्तोति जल्पमानया ।

अद्विग्नरोदनशीलया घयमपि रोदितास्तया ॥]

'किसे रमरणकर रही हो?' ऐसा पूछे जानेपर, 'मेरा कौन है' ऐसा
उत्तर दे, उद्वेगसे रोनेवाली उस रमणीने हमलोगोंको भी रुझाया है ॥ ८९ ॥

पाअपडिअं अहव्वे किं दाणिं ण अट्टवेसि भत्तारं ।

एअं विअ अवस्ताणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥

[पादपवित्तममध्ये किमिदानीं नोत्थापयति भर्तारम् ।

एतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्णः ॥]

हे अनुचित व्यवहार करनेवाली, अभीतक तुम पैरोंपर गिरे हुए भर्तारको
उठा नहीं रही हो ? अत्यन्त घृदि प्राप्त प्रेमकी भी यही चरमसीमा है ॥ ९० ॥

तडविणिह्दिअग्गहत्था चारित्तरङ्गेहिं घोलिरणिअम्वा ।

साल्दूरी पडिविम्ये पुरिसाअन्तिच्च पडिह्वाइ ॥ ९१ ॥

[तदविनिहिताप्रहरता चारितरद्गैर्धूर्णनशीलनितम्बा ।

शाल्दरी प्रतिघिम्बे पुरयापमाणेव प्रतिभाति ॥]

जलतटपर भगला हाथ रखकर एवं जलतरङ्गद्वारा नितम्बप्रदेशको हिला-
कर मेढकी अपने प्रतिविम्बमें मानों पुरुषोचित भ्रम्यासम्बर रही है, ऐसा प्रतीत
होता है ॥ ९१ ॥

सिक्करिअमणिअमुहयेविआइं धुअहत्थसिञ्जिअग्वाइं ।

सिक्कजन्तु चोडहीओ कुसुम्भ तुम्ह प्यसापण ॥ ९२ ॥

[सीङ्कृतमणितमुजपेपितानि धुतहस्तशिञ्जितम्बानि ।

शिञ्जन्तु कुमार्यः कुसुम्भ युष्मत्प्रसादेन ॥]

हे कुसुम्भ, तुम्हारी कृपासेही कुमारियों सीक्कार, मणितनामक वृजन-
विशेष, मुखपरिचालन एवं हस्तकम्पजनित भूषण ज्ञानकार करने की
/ शिष्या पावें ॥ ९२ ॥

जेत्तिअमेत्ता रच्छा णिअम्ब कहं तेत्तिओ ण जाओ सि ।

जं छिप्पइ गुरुअणलज्जिओ सरन्तो वि सो सुहओ ॥ ९३ ॥

[यावत्प्रमाणः रक्ष्या नितम्ब कथं तावत्त जातोऽसि ।

येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापस्तोऽपि स सुभगः ॥]

हे नितम्ब, रक्ष्या अर्थात् रास्तेका जितना परिमाण है, उतना परिमाण
लेकर तुमने जन्म क्यों नहीं लिया ? कारण, गुरुओं के सामने लजित होकर
/ हटजानेपर भी वह सुभग तुम्हारेद्वारा छू ही लिया जाता है ॥ ९३ ॥

मरगअसूर्देविद्धं च मोत्तिअं पिअइ आअअग्गीओ ।

मोरो पाउसअले तणमालग्गं उअअविन्दुं ॥ ९४ ॥

[मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पियत्यायतग्रीवः ।

मयूरः प्रावृटकाले वृणामलममुदकविन्दुम् ॥]

वर्षामें मोर विशाल ग्रीव होकर मरकतमणि सूईद्वारा विद्ध मुक्तिकें समान
दिपायी देनेवाला तिनका अग्र भागमें लगे हुए जलविन्दुका पान कर रहा है
[वृणलता गृह ही सकेस स्थान है ।] ॥ ९४ ॥

अज्जाइ णीलकञ्चुअभरिउच्चरिअं विहाइ धणवट्टं ।

जलभरिअजलहरन्तरदयग्गअं चन्द्विअच्च च्य ॥ ९५ ॥

[भार्याया नीलकञ्चुकभृतोर्चरितं विभाति स्तनपृष्ठम् ।

जलभृतजलधरान्तरदरोद्गतं चन्द्रभिनवमिव ॥]

भार्याका स्तनपृष्ठ नीलकञ्चुक द्वारा आवृत होनेपर भी (दर्शरित वा

उद्भ्रंशित) उर्ध्वगत होकर जलमूत्र मूलील जलधरके बीचये ईषत् उद्भूत चन्द्र-
मण्डलकी नाई शोभा पा रहा है ॥ ९५ ॥

रात्रविरुद्धं च कर्तुं पदिभो पदिद्यम्स्त सादृह ससद्गं ।
जसो अम्भाण दलं तसो द्रणिग्याभं किं पि ॥ ९६ ॥
[रात्रविरुद्धमपि कर्त्ता पयिठः पयिठस्य कथयति मशङ्कम् ।
यत आघ्राणां दलं तत ईषसिगतं किमपि ॥]

'आघ्रवृष्टके निम्न स्थानसे पत्तेका उद्भूत होता है, उक्त स्थानमें घोड़ा घोड़ा
निबला हुआ (अद्भूत) न जाने क्या दिखायी दे रहा है ? रात्रविरुद्ध
वर्षाकी भाँति इस बातको भी एक पयिठ दूसरेसे आश्चर्यत शब्दित होकर
कहता है ॥ ९६ ॥

धषणा ता महिलाओ जा दृशं सिचिणए वि पेच्छन्ति ।
णिद् द्विअ तेण चिणा ण एइ का पेच्छए सिचिणं ॥ ९७ ॥
[धन्यास्ता महिला या दयितं स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।
निद्रैव सेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

जो प्रियको स्वप्नमें भी देखलेनी है, पेशी नारी धन्य हैं, उनके विरहमें मुझे
निद्रा ही नहीं आती, स्वप्न कौन देखे ? ॥ ९७ ॥

परिरुद्धकगभकुण्डलमणदरेसु सवणोसु ।
अणणअसलमअंघसेण च पदिरज्जइ तालवेण्टजुअं ॥ ९८ ॥
[परिरुद्धकनककुण्डलगण्डरमणमनोहरयोः धवणयोः ।
अन्यसमयवशेन च परिधियते तालशून्यदुग्मम् ॥]

कनक कुण्डलशुभ्रित गण्डरमणमें क्षोभित कर्णद्वयमें कालान्तरवश
तालपत्रनिर्मित वर्णाभूषणयुगल भी धारण होता है ॥ ९८ ॥

मज्झहपरिधअस्स चि गिग्हे पदिरअस्स हरइ संतावं ।
हिसअट्टिअजाभामुदअद्दुजीह्वाजलप्पयहो ॥ ९९ ॥
[मण्पाहपरिधितरयापि मीप्पे पयिकरय इति संतावम् ।
हृदपरिधतजायामुद्यग्गाङ्गपोरनाजलप्रवाहः ॥]

अपने हृदपरिधित जायाके मुलवन्त्रकी शोषना-जन्त्रवाह, मीप्पमें
मण्पाहके समय पयमें दहेहुए पयिकका सन्ताप दूरकर देता है ॥ ९९ ॥

मण क्षो ण रस्सइ जणो परिधज्जन्तो अपसजालम्मि ।
रतिवाअडा उअन्तं पिमं वि पुत्त सयर माअ ॥ १०० ॥

[भग को न रूप्यति जनः प्रार्थ्यमानोऽद्देशकाले ।

रतिव्यापृता रुदन्तं प्रियमपि पुत्रं शण्ते माता ॥]

अनुपयुक्त स्थान एवं असमयमें अनुनीत होनेपर कौन रुष्ट नहीं होता, घताओ तो ? रतिनिरत माताभी प्रियपुत्रके रोनेपर अभिशाप देती है ॥ १०० ॥

एत्थ चउत्थं विरमइ गाहाणं सअं सहावरमणिज्जं ।

सोऊण जं ण लग्गइ हिअए महुरत्तणेण अमिअं पि ॥ १०१ ॥

[अत्र चतुर्थं (वारमति गाथानां) शतं स्वभावरमणीयम् ।

श्रुत्वा यत्नं लगति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

स्वभावरमणीय गाथा समूहका चतुर्थं शतक यहीं समाप्त हो गया जिसे सुननेपर हृदयको अमृत भी उतना मधुर नहीं लगता ॥ १०१ ॥



पञ्चम शतक

उज्जसि उज्जसु कट्टसि फट्टसु अह फुडसि द्वियअ ता फुडसु ।
तद्द वि परिसेसिओ च्चिअ सोहु मए गल्लिअसग्गमावो ॥ १ ॥

[दण्ठसे दण्ठस्व ण्ठसे ण्ठयन् अथ ण्ठुटसि हृद्य ताण्ठुट ।

तथापि परिशेषित एव सः खलु मया गलितसद्भावः ॥]

अरे हृद्य, दग्ध होना हो तो हो जाओ, कथित वा पक होना हो तो हो जाओ, किन्तु तब भी उसे मीने स्नेह वा सद्भाव विगलित ही निर्धारित किया है ॥ १ ॥

दट्टुण रन्दतुण्डरगण्णिग्गअं णिअसुअस्स दादग्गं ।

भोण्णो धिणायि काज्जेण गामणिअडे जये चरह ॥ २ ॥

[हृष्टा विशालतुण्डाप्रनिर्गतं निजसुतस्य दंष्ट्राप्रम ।

- सूक्ती विनापि कार्पेण प्राग्निकटे यनांश्रति ॥]

अपने पुत्रके विशाल मुखाम्रसे निकले हुए दाढ़ीके देखकर सूक्ती विना किसी कामके शौचके निकटस्थ यत्रके खेतोंमें विचरणकर रही है ॥ २ ॥

हेलाकरग्गअट्टिअजत्तरिक्कं साथरं पभासन्तो ।

जअइ अणिग्गअचडयग्गिं भरिअग्गणो गणादियई ॥ ३ ॥

[देलाकरामाहृष्टरिक्कं सागरं प्रकाशयन् ।

जयापनिग्रहवदवाग्निश्रुतगगनो गणाधिपतिः ॥]

शुण्डद्वारा अवशापूर्वक जलपान किये जानेपर रिक्त वा शून्य सागरको प्रकाशित कर निग्रहसमर्थ गणाधिपति अनिगृहीत वदवानल द्वारा गगनमण्डल को परिपूर्ण करते-करते जययुक्त हो रहे हैं ॥ ३ ॥

एएण च्चिअ फंकेहि तुज्जं तं णिथि जं ण पजत्तं ।

उचमिच्चइ जं तुह पल्लयेण घरकामिणी हृत्यो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कञ्चेश्ले तव तस्मिन्नि यत्र पयांसम् ।

उपसीपते यत्तव पल्लवेन घरकामिनीहस्तः ॥]

हे अशोकवृक्ष, तुम्हारे पल्लवकेसाथ सुन्दरी कामिनीका हाथ उपमित होता है, इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारे पास वह है ही नहीं जो पूर्ण न हो ॥

रसिअधिअट्ट विलासिअ समअणअ सच्चअ असोओ सि ।
 वरजुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सण्हं ॥ ५ ॥
 [रसिक विदग्ध विलासिनसमयश्च सत्यमशोकोऽपि ।
 वरयुवतिचरणकमलाहतोऽपि यद्विकसति सतृणम् ॥]

हे रसिक, हे विदग्ध, हे विलासी, हे अनुकूलसमयश्च वृक्ष, वास्तवमें
 तुम अशोक अथवा शोकरहित हो, कारण, श्रेष्ठ युवतीके चरणकमल द्वारा
 आहत होनेपर भी तुम सतृण भावसे विकसित होते हो अर्थात् देखते
 रहते हो ॥ ५ ॥

वलिणो वाआवन्धे चोज्जे णिउअत्तणं च पअडन्तो ।
 सुरसत्थकआणन्दो वामणरुओ हरी जअइ ॥ ६ ॥
 [वल्लेर्वाचावन्धे आश्चर्यं निपुणत्वं च प्रकटयन् ।
 सुरसार्थकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

बलशाली द्वाररक्षकोंके वाक्यपर्यन्त अर्थात् निरुत्तरोकरणके विषयमें
 आश्चर्य, गुण पूर्व निपुणता है—इसे समझकर प्रकट करते-करते सुरससंघ
 वचनप्रयोगद्वारा सबकी आनन्दित कर विनीत अथवा पराभूत परदाशपहारी
 विजयी हो । बलिराजा के वाचप्रयोग के नियमनके पक्षमें—अपनी अद्भुत
 क्रिया पूर्व निपुण्यका भाव प्रकाशित करते करते देवसंघ को आनन्दित करनेवाले
 वामनरूपी विष्णु विजयी हों ॥ ६ ॥

विज्जाविज्जइ जलणो गहवइधूआइ चित्थअसिहो वि ।
 अणुमरणघणालिङ्गणपिअअमसुहसिञ्जिरङ्गीए ॥ ७ ॥
 [निर्वाण्वते ज्वलनो गृहपतिदुहित्रा विस्तृतशिलोऽपि ।
 अनुमरणघनालिङ्गनप्रियतममुखस्वेदशीताङ्गवा ॥]

सती होनेके लिए चित्तापर बँठी गृहपतिकी दुहिता अनुमरणके समय
 प्रियतमके गाढालिङ्गनजनित सुखसे उत्पन्न स्वेदबिन्दुओंके कारण शीतहाङ्गिनी
 हो विस्तृतशिलाज्ञिकी भी दुहा रही है ॥ ७ ॥

जारमसाणसमुअभवभूइरुदुण्णंससिञ्जिरङ्गीए ।
 ण समअपइ णवकायासिआइ उअल्लणारम्मो ॥ ८ ॥
 [जारमसानसमुद्भवभूतिमुत्तरपक्षास्वेदशीलाङ्गवा ।
 न समाप्यते नवकापालिक्या उल्लनारम्मः ॥]
 जारके रमसानसमुद्भूत अरमद्वारा अनुलिप्त होनेके सुख द्वारा उत्पन्न

स्वेदममुद्रमसे क्षीणलाङ्घिनी मधकापालिकप्रभाविनी रमणी स्वेदतित्राणके
लिय भस्मानुलेखन कार्यको समस्त नहीं कर पा रही है ॥ ८ ॥

एको पण्डुमद् यथा स्त्रीभ्यो पुलपर गद्गमुदासिद्धिभ्यो ।

पुत्तमस विप्रप्रममस अ मग्गणिसपणायं घरणीय ॥ ९ ॥

[एकः प्ररनीति रनयो द्वितीयः पुलकितो भवति नखमुपान्द्रियतः ।]

पुत्रपद प्रियतमस्य च मत्पनिपण्णया गृहिण्याः ॥]

पुत्र एवं प्रियतमके बीच बैठनेके कारण गृहिणीका एक रनन दुग्धपाग कर
रहा है और दूसरा रनन पतिप्रेममें नयाप्रमे बिद्विग हो पुलकित हो
रहा है ॥ ९ ॥

पत्नारशिश मोहं जणेइ घालत्तणे वि घट्टन्नी ।

मामणिधूआ विसकन्दस्तिव्य घट्टीअं कादिइ अणत्थं ॥ १० ॥

[पत्नारशेष मोहं जनपति घालयेऽपि घर्तमाना ।

ग्रामणीदुहिता विपकन्दलीय घर्तिता क्रीप्याग्रनर्धम् ॥]

वालिकाही अन्तर्यामें इस प्रकार घर्तमान रहकर भी ग्रामपतिघी दुहिता
मोह दास्य कर रही है, विपकन्दली अर्थात् विपबुधकी भक्ति घर्तिग होकर
अनर्ध ही करवायेगी ॥ १० ॥

अपहृष्टन्तं महिमण्डलमि मद्गसंदिभं चिरं हरिणां ।

तारापुष्करप्यभरञ्जिभं य तद्भं पभं णमद् ॥ ११ ॥

[अप्रमथनमहीमण्डले नभःसंश्लिषतः चिरं हरेः ।

तारापुष्पप्रकाशिमिश ग्नीयं पदं नयत ॥]

महिमण्डलमें अपरिमित होनेके कारण बहुत देर तक नभोमण्डलमें स्थिर
ताराएँ पुपरान्ति द्वारा संपूर्ण विविक्रम विष्णुके ग्नीय अर्थात् नमस्कार
करे । [गुप्तस्थानमें अंतर्भुजा चपरावाके प्ररनके उचारमें नापिका रात्रिमें
अत्युत्तारा श्रैविक्रमवन्ध्यालय रमणकलाके विपरमें दूसरेके बदानेसे बनानी है ॥]

सुपपट तद्भो वि गओ जामोत्ति सदीभो कीस मं भणद् ।

सेहलिशाणं गन्धो ण देइ सोत्तुं सुअद् तुन्दे ॥ १२ ॥

[सुपता ग्नीयोऽपि गनो याम इति सष्यः किमिति मां भनय ।

शेकालिकानां गन्धो न ददाति ररपुं स्वपित यूयम् ॥]

सवियो, तुम मुझे यह क्यों कह रही होकि "तीनरा यामभी कीत गया,
तुम सोओ" शेकालिकाही गन्ध मुझे सोने नहीं दे रही है, तुम सब को जाओ ॥

कँह सो ण संभरिज्जइ जो मे तह संठिआइँ अक्काइँ ।

णिञ्जत्तिप चि सुरए णिज्जाअइ सुरअरसिओन्व ॥ १३ ॥

[कथं स न सस्मर्यते यो मम तथासस्थितान्वज्ञानि ।

निवर्तितेऽपि सुरते निष्यायति सुरतरमिक इव ॥]

जो व्यक्ति सुरतरसिकके समान, सुरतक्रियाके समाप्त होनेपर भी मेरे
अङ्गोंको तथासंस्थित समझकर उनके प्रति भौल गढाये रखता है, उसे कैसे
स्मरण न करूँ ? ॥ १३ ॥

सुखसन्तयहलकदंमधम्म चिसूरन्तरुमठपाठीणं ।

दिट्ठं अविट्ठउच्चं कालेण तलं तडाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बृहलकदंमधर्मलिखमानकमठपाठीनम् ।

दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तल तडागरय ॥

शीघ्रकाल तडागके उस अदृष्टपूर्वं तलदेशको देख पाता है जिससे गहरा
कीचड़ सूखता जा रहा है एवं जिसमें तापके कारण सभी कछुए एवं
पाठीनमास्य सभी कष्ट पा रहे हैं ॥ १४ ॥

चौरिअरअसद्दालुइ मा पुत्ति भ्भमसु अन्धआरम्मि ।

अहिअअरं लखिखज्जसि तमभरिए दीवसीहव्व ॥ १५ ॥

[चौर्यरतध्रदाशीले मा पुत्रि अमान्धकारे ।

अधिकतरं लक्ष्मसे तमोभृते दीपशिखेव ॥]

हे चौर्यरतिमें आस्थावान् पुत्रि, अन्धकारमें मत घूमना, तमसाक्षुष
प्रदेशमें दीपशिखाकी नाई शरीरलावण्यवशा अधिकतर दिशाधी दे जाभोगी ॥

घाहित्ता पडिवअणं ण देइ रुसेइ एकमेकस्स ।

असई कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईकच्छे ॥ १६ ॥

[ब्याहृता प्रतिवचनं न ददाति रूपरपेकैकस्य ।

असती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीकच्छे ॥

नदीकच्छके जलजानेसे जिज्ञासा करनेपर भी असती कोई उत्तर नहीं दे
रही है एवं कार्यव्यतिरेकसे भी अकारण किसी किसीके ऊपर रुष्ट हो रही है ॥

आम असइ ह्म धोसर पइउप ण तुह मइलिअद्दीसं ।

किं उण जणस्स जाअव्य चन्दिने ता ण कामेमां ॥ १७ ॥

[आम असत्यो वयमपसर पतिवने न तव मलिनत गोत्रम् ।

किं पुनर्जनरप जायेव नापिह तावन्न कामयामहे ॥]

ठीक है, हमलोग क्या हुआ जसती ही हैं। वे पतिपते, तुम दूट जाओ। तुम्हारा गोत्र अर्थात् नाम वा कुल मलिन नहीं हुआ है, तब भी किसी व्यक्ति के जायाकी भाँति हमलोगोंने कभी नाईकी कामना नहीं की है ॥ १७ ॥

णिहं लहन्ति फहिभं सुणन्ति रत्तिथक्करं ण जम्पन्ति ।
जाहिं ण दिट्ठो सि तुमं ताभो च्चिय सुद्धअ सुहिआओ ॥ १८ ॥

[निद्रां लभन्ते कथितं शृण्वन्ति स्वलितावरं न ज्वरन्ति ।
यामिर्न दृष्टोऽसि खं ता एव सुभग सुखिताः ॥]

हे सुभग, जिन रमणियोंने तुम्हें देखा नहीं है, वे ही सुखी हैं। कारण वे सो सकती हैं, दूसरोंकी बातें सुन सकती हैं, एवं उन्हें अकारस्पर्शनके साथ धातवीत नहीं करनी पड़ती ॥ १८ ॥

वालअ तुमाइ दिण्णं कण्णे फाऊण योरसहाडिं ।
लज्जालुरणी वि बहू घरं गआ गामरच्छाप ॥ १९ ॥

[बालक स्वया दत्तां कर्णे कृत्वा घदरसद्गारीम् ।
लज्जालुरपि वधूगृहं गता ग्रामरथवया ॥]

हे बालक, लज्जाशील होनेपर भी वधू तुम्हारे दिये हुए वेतगुच्छको कानमें धारण कर गाँवके पथमें घर चली गई ॥ १९ ॥

अह सो विलक्खहिआओ।मए अहव्वार्ये अगहिआणुणओ ।
परवज्जणचारीहिं तुल्लोहिं उवेमिखओ णेन्तो ॥ २० ॥

[अप स विरुद्धदयो मया असम्यया अपृहीतानुनयः ।
परवाचनतर्तशीलाभियुग्माभिरुपेक्षितो निर्यन् ॥]

अरे, मैंने अशिष्टा होकर उसका अनुनय स्वीकार नहीं किया, इससे विधुर-
हृदय हो वह क्या घरसे निकलने समय तुमलोगों द्वारा उपेक्षित हुआ है ?
कारण, तुम्हारा काम ही है दाजा यज्ञाकर दूसरोंको नशा डालना ॥ २० ॥

दीसन्तो णअणसुहो जिबुदज्जणओ करेहिं वि छिअन्तो ।
अब्भत्थिओ ण लअमइ चन्दो व्य पिओ कलामिलओ ॥ २१ ॥

[इत्यमानो नयनसुखो निर्गृतिजननः कराम्यां [भवि] स्पृशत् ।
अभ्यर्षितो न लभते चन्द्र इव मिय, कलामिलयः ॥]

दृष्टिपथमें आनेपर नयनके सुखका त्रयावृद्ध, कर क्षयवा किरन द्वारा संस्पृश।

कंह सो ण संभरिज्जइ जो मे तह संठिआइँ अक्काइँ ।

णिव्वत्तिप वि सुरए णिज्जाअइ सुरअरसिओव्व ॥ १३ ॥

[कथं स न संस्मर्यते यो मम तथासंस्थितान्यद्धानि ।

निवर्तितेऽपि सुरते निष्यायति सुरतरसिक इव ॥]

जो व्यक्ति सुरतरसिकके समान, सुरतक्रियाके समाप्त होनेपर भी मेरे
अहोंको तथासंस्थित समझकर उनके प्रति आँसु गढ़ाये रखता है, उसे कैसे
स्मरण न करूँ ? ॥ १३ ॥

सुक्खन्तयहलकद्धम्मघम्म विसूरन्तकमठपाठीणं ।

दिट्ठं अदिट्ठउच्चं कालेण तलं तडाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बहलकद्धर्मघर्मखिद्यमानकमठपाठीनम् ।

दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तलं तडागरय ॥

प्रीध्मकाल तडागके उस अदृष्टपूर्वं तलदेशको देख पाता है जिससे गहरा
कीचड़ सूखता जा रहा है एवं जिसमें तापके कारण सभी बटुए एवं
पाठीनमांस्य सभी कष्ट पा रहे हैं ॥ १४ ॥

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति भमसु अन्धआरम्मि ।

अहिअअरं लक्खिज्जसि तमभरिण दीघसीहव्व ॥ १५ ॥

[चौर्यरतश्रद्धाशीले मा पुत्रि भ्रमान्धकारे ।

अधिकतरं लक्ष्यसे तमोमृते दीपशिखेव ॥]

हे चौर्यरतिमें आस्थावान् पुत्रि, अन्धकारमें मत घूमना, तमसाच्छन्न
प्रदेशमें दीपशिखाकी नाई शरीरलावण्यवश अधिकतर द्विषायी दे जाओगी ॥

घाहित्ता पडिघअणं ण देइ रूसेइ एकमेकस्स ।

असई कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईकच्छे ॥ १६ ॥

[व्याहृता प्रतिवचनं न ददाति रुप्यपेकैकरय ।

असती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीकच्छे ॥

नदीकच्छके जलप्रानेसे जिज्ञासा करनेपर भी असती कोई उत्तर नहीं
रही है एवं कार्यव्यतिरेकसे भी अकारण किसी-किसीके ऊपर रुष्ट हो रही है

आम असइ ह्य धोसर पइव्वए ण तुह मइलिअक्कोत्तं ।

किं उण जणस्स जाअव्व चन्दिलं ता ण कामेमो ॥ १७ ॥

[आम असयो धयमपसर पतिव्रते न तव अकिवलं गोषव ।

किं पुनर्जनय जायेष ना

[मालतीकुसुमानि दग्धा मा जानीहि निर्युतः शिशिरः ।

कर्त्तव्याथापि निर्गुणानां कुन्दानामपि समृद्धिः ॥]

ऐसा मत समझना कि केवल सगुण मालतीकुसुमके समूहको जलाकर शिशिर सन्तुष्ट हो गया है, अभी भी निर्गुण कुन्दपुष्पसमूहकी समृद्धिको घटाना उसके लिए दोष है ॥ २६ ॥

तुङ्गाणँ विसेसनिरन्तराणँ [सरस] वणलद्धसोहाणं ।

कथकज्जाणँ भडाणँ व थणाण पडणं वि रमणिज्जं ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयोः [सरस] वणलद्धशोभयोः ।

कृतकार्योर्भटयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

मानादि द्वारा उद्धत, विशेष निरन्तर अथवा समकक्षप्राप एवं युद्धादिमें प्राप्त सरसवर्णविशिष्ट होनेके कारण अत्यन्त शोभित, विजयी योद्धाद्वयके समान उद्धत, भग्योन्वयसलक्षण एव सरसवर्णविशिष्ट अर्थात् रतिसमरमें जखादि सिद्धयुक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभित कृतकृत्य स्तनद्वयका लटक जाना भी रमणीय है ॥ २७ ॥

परिमल्लणसुहा गुदआ अलद्धविचरा सलक्षणहरणा ।

थणआ कव्वालाय व्व कस्स हिअप ण ल्गन्ति ॥ २८ ॥

[परिमल्लणसुहा गुहका अलद्धविचरा' सलक्षणाभरणाः ।

स्तनकाः काव्यालापा इव कस्य हृदये न लपन्ति ॥]

मर्दनमें सुखकर, स्थूल, रन्ध्रशून्य एव सुलक्षणाक्रान्त आभरणमें शोभित स्तन—विचारसुखकर, अर्धगुरु, दोषरहित एवं सुलक्षणविशिष्ट बलद्वारासे सुशोभित काव्यालापके समान—किसके हृदयमें नहीं भाते ? ॥ २८ ॥

स्त्रिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तदणीअ रमणपरिरम्मे ।

अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लह्यत्तणं काले ॥ २९ ॥

[त्रिप्पते हारः स्तनमण्डलात्तदणीभी रमणपरिरम्मे ।

अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥]

रमणकालके आच्छिन्नमें तदणी स्तनमण्डलमें हारकी दृष्टा रचनी है, अबसर उपरिचय होनेपर अर्चितगुणावाले गुणीपण भी लघुत्व प्राप्त करते हैं । अर्थात् छोटे समयमें जाते हैं ॥ २९ ॥

अण्णो को वि सुहाओ मम्मदग्निदिणो दणा द्दयासम्भ ।

विद्दाद णोरम्माणं दिअद मरस्सार्णं अत्ति पञ्जलद ॥ ३० ॥

करनेपर संतापहर, कलागृहहृदय अर्थात् पौडशककारमक मेरा प्रिय गगनेद्वत
चन्द्रकी भौति प्रार्थित होकर भी दुःप्राप्य है ॥ २१ ॥

जे नीलभ्रमरभरभरगगोल्लआ आसि णइअहुच्छङ्गे ।

कालेण वञ्जुला पिअवस्स ते थण्णुआ जाआ ॥ २२ ॥

[ये नीलभ्रमरभरभरगुच्छङ्का आसन्नदीतटोत्सगे ।

कालेन वञ्जुला. प्रियवयस्य ते श्याणवो जाता ॥]

हे प्रियवयस्य, नदीके किनारे जो वञ्जुल अर्थात् बेंत लतासमूह नीलभ्रमरके
भारसे दूटे पड़ते थे, वे कालके प्रभावसे शाखाहीन वृक्ष के समान प्रतीत हो
रहे हैं ॥ २२ ॥

खणभङ्गुरेण पेम्मेण माउआ दुम्मिअम्ह एत्ताहे ।

सिचिणअणिदिलम्भेण व दिट्ठपणट्टेण लोअम्मि ॥ २३ ॥

[खणभङ्गुरेण प्रेम्णा मातृवस दूना. स्म हृदानीम् ।

स्वप्ननिधिलम्भेनेव दृष्टप्रनष्टेन लोके ॥]

अरी मौसी, स्वप्नमें प्राप्त दृष्टनष्ट निधिकी भौति खणभङ्गुरेणमे में अब
संसारमें आयन्त दुःख भोग रही हूँ ॥ २३ ॥

चावो सहावसरत्तं विच्छिदइ सरं गुणम्मि वि पडन्तं ।

वह्णस्स उज्जुअस्स अ संवन्धो किं चिरं होई ॥ २४ ॥

[चाप. स्वभावसरल विचिपति शरं गुणेऽपि पतन्तम् ।

वक्रस्य ऋजुस्य च संवन्धः किं चिरं भवति ॥]

धनुषकी टोरीके उपर संस्थापित स्वभाव सरल बाणको दूर फेंकी, वक्र
एवं अक्षरक इन दोनोंका सम्बन्ध क्या कभी चिरस्थायी हो सकता है ? ॥ २४ ॥

पढमं वामणविधिणा पच्छा हु कओ विअम्भमाणेण ।

थणजुअलेण इमीए महुमहणेण व्य चलियन्धो ॥ २५ ॥

[प्रथमं वामनविधिना पश्चात्तु कृनो विजृम्भमाणेन ।

स्तनयुगलेनैतस्या मधुमपनेनेव बलिबन्धः ॥]

रमणीके ये दोनों स्तन मधुसूदन विष्णुकी भौति पहले वामनरूप थे,
बादमें सपूर्ण विकसित होकर बलिबन्ध (रन्ध्रधर्मबन्धन पुर्य विष्णुकेलिप
बलिदैत्यका बन्धन) करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ २५ ॥

मालइकुसुमाई कुलुञ्जिऊण मा जाणि णिवुओ तिसिरो ।

काअव्या अज्जवि णिग्गुणार्णं पुन्दार्णं वि समिद्धी ॥ २६ ॥

[वर्षांशले उन्नतपयोधरे यौवन इव स्वतिक्रान्ते ।

प्रथमैककाशकुसुमं हरयते पलितमिव धरण्याः ॥]

उन्नतपयोधर (स्नन) युक्त यौवनकी नाई उन्नतपयोधर (मेघ)
विशिष्ट वर्षाकी रातके धीत जानेपर, धाणोंके पके हुए घालरी भौंति एक काश-
कुसुम पहले दिखायी पड़ा ॥ ३४ ॥

कथं गभं रद्विभ्यं कथं पणट्टाओ चन्वताराओ ।

गभणे वलाअपन्ति कालो होरं घ फट्टेर ॥ ३५ ॥

[कुत्र गतं रविभिमं कुत्र प्रणष्टाक्षन्प्रताराका ।

गमने वलाकापंक्ति कालो होरामिवाहपंति ॥]

दिनमें सूर्यभिम कहाँ लगे गया ? रात्रिमें चन्द्र भीर तारे कहाँ भाग
गए ? ज्योतिर्विदोंकी महगणनामें रेखायिद्धकी भौंति वर्षाकालीन आकाशको
वलाकापंक्ति अङ्कित कर रही है ॥ ३५ ॥

अविरलपडन्तपवजलधाराऽज्जुघडिअं पअत्तेण ।

अपहुत्तो उफत्तेत्तुं रसइ व मेघो महि उअह ॥ ३६ ॥

[भविरलपतस्रवमलधाराऽज्जुघटितां प्रयत्नेन ।

अममवन्नुत्तेत्तुं रसकीव मेघो मही परयत ॥]

देखो, अविरल रज्जुलित नयनधारा रूप रज्जुमें भावद् महीको ऊपर न
खींच सकनेके कारण, मेघ मानो सब्द कर रहा है ॥ ३६ ॥

ओ हिअअ ओहिदिअहं तइआ पडियज्जिऊण दइअस्स ।

अत्थेफकाउल धीसम्मघाइ किं तइ समाऽहं ॥ ३७ ॥

[हे हृदय अशुभदिवसं मदा प्रतिपद्य दमितस्य ।

अकरमादाकुल विसम्मघानिन् किं स्वया समाऽहम् ॥]

अरे हृदय, तस समय प्रियके प्रवास-नवधिको स्वीकार कर अहरमात्
आकुल हो विधासघातीकी भौंति तुमने क्या करना प्रारम्भ किया है ? ॥ ३७ ॥

जो वि ण आणहँ तस्स वि कट्ठेइ भग्गाहँ तेण वलआहँ ।

अइउज्जुआ चरारँ अइ य पिओ से इआसाण ॥ ३८ ॥

[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयति भ्रमानि तेन वलघानि ।

अतिऋजुता वराकी भयवा प्रियतरवा ह्वानायाः ॥]

जो नहीं जानते, उनसे कहती हूँ. "मैरा बलघ उसके ह्वाता सोचा गया

[अन्वः कोऽपि स्वभाप्रो भन्मथशिक्षिनो हृद्य हताशस्य ।
निर्वाति नीरसानां हृदये सरसानां कृदिति प्रग्वलति ॥]

अरे, हताश (दुःख) महनामिका स्वभाव साधारण अग्निसे बिलक्षण है । निरस हृदयमें यह पुस्तजाती है, किन्तु सरस हृदयमें तुरत धक्क उठती है ॥ ३० ॥

तद् तस्स माणपरिवह्विशस्स चिरपरणअवद्धमूलस्स ।
मामि पडन्तस्स सुओ सहो विण पेम्मरुक्खस्स ॥ ३१ ॥

[तथा तस्य मानपरिवर्धितस्य चिरप्रणयवद्धमूलस्य ।
मातुलानि पततः धृतः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य ॥]

हे मामी, जो प्रेमतरु इतने मान-सम्मानसे षड़ा हुआ था एवं जिनकी जड़ चिरप्रणयमें भावद्ध थी, उसके पतनके समय कोई भावान ही नहीं सुनायी पड़ी ॥ ३१ ॥

पाथपडित्थो ण गणितो पिअं भणन्तो वि अप्पिअं भणितो ।
घच्चन्तो वि ण रुद्धो भण कस्स कए कओ माणो ॥ ३२ ॥

[पादपतितो न गणितः प्रियं भणन्नप्यप्रियं भणितः ।
नजप्रपि न रुद्धो भण करय कृते कृतो मानः ॥]

नायकके पैरपर गिरनेपर भी तुमने उसे समझा नहीं, उपर्युक्त द्वारा सीटी घातें कही जानेपर भी तुमने सीखी घातें सुनायीं, उसके चले जाने पर भी तुमने रोका नहीं । अतःभो तो, किसकेलिए मानकररही हो ? ॥ ३२ ॥

पुसइ खणं धुयइ खणं पण्फोडइ तफखणं अजाणन्ती ।
मुद्धवह्थणत्थे दिण्णां दइपण गह्हरयअं ॥ ३३ ॥

[भोज्यति खणं चालयति खणं प्रफोटयति तस्मिन्मज्जानती ।
सुखवधू-स्तनपदे दत्तं दयितेन नलरपदम् ॥]

समझ न सकनेके कारण, स्तनपृष्ठपा प्रियतमप्रदत्त नलबिद्धको सुख-वधू एक खण पोंछ रही है, एकखण धीरही है एवं उसी खण पछादि द्वारा हाके डाल रही है ॥ ३३ ॥

यासरत्ते उण्णअपओदरे ओय्यणे ध्व घोलीणे ।
पदमेक्ककासकुत्तुमं दीसइ पतिअं घ घरणीए ॥ ३४ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको दूयने माधवस्य मिलितेव ।

भीमेन यथेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमानः ॥]

माधवसे मिलकर यहच्छाक्रमसे भीमसेनने दक्षिण चरणद्वारा स्पर्शकर दुर्योधनको जिस प्रकार दु खित किया था, माधव (वसन्त) से मिलकर भयानक दक्षिणयुवा भी यहच्छाक्रमसे स्पर्शकर पथिकको उसी प्रकार दु खित कर रही है ॥ ४३ ॥

जाव ण कोसविकासं पावद ईसीस मालईकलिआ ।

मअरन्दपानलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यावन्न कोपविकासं प्राप्नोतीपन्मालतीकलिना ।

मकरन्दपानलोभयुक्त भ्रमर तावदेव मर्दयसि ॥]

जबतक मालतीकलिका-कोष कुण्ड बंद नहीं जाता, तबतक हे रसपानलोलुप भौरें, तुम मर्दनमात्रसे ही संतोष प्राप्तकर रहे हो ॥ ४४ ॥

अकअण्णुअ तुज्झ कप पाउसरईसु जं भए रुण्णं ।

उप्पेप्खामि अलज्जिर भज्ज चि तं गामच्चिक्खहं ॥ ४५ ॥

[भकृतञ्च तव कृते प्रावृद्वायिषु यो मया दुण्णः ।

उत्पश्याम्यलज्जाशील अद्यापि तं प्रामपद्धम् ॥]

ओ भकृतञ्च, यरसातकी रातमें भी तेरे लिए मैंने जिस प्रामपद्धको खर्च किया है, अरे निर्लज्ज, उसी पद्धको मैं आज भी देख रही हूँ ॥ ४५ ॥

रेहइगलन्मकेसप्पलन्तकुण्डलललन्तहारलआ ।

अद्धुप्पइआ विज्जाहरि व्य पुरुसाइरी याला ॥ ४६ ॥

[राजते गलरकेसरललरकुण्डलललल्लहारलता ।

अर्धोपतिता विद्याधरोव पुरुपाविता बाला ॥]

अर्धोपतिता विद्याधरीकी भौंति इस घाटाके पुरुषोचित रमणमें निरत होनेसे कुलते हुए केश, पिरने हुए कुण्डल एवं शलते हुए दासलता शोभित हो रहे हैं ॥ ४६ ॥

जइ भमसि भमत्तु एमेअ कण्ह सोहृगगन्धिरं गोठ्ठे ।

महिलाणं दोसगुणे विआरक्खमो अज्ज विण होंसि ॥ ४७ ॥

[यदि भमसि भ्रम एवमेव कृष्ण भीमारयगर्वितो गोष्ठे ।

महिलानां दोषगुणौ विचारश्चमोद्यापि न भवसि ॥]

है ।" हो सकता है कि वह शोचनीया रमणी ही क्षयन्त सरलस्वभाववाली हो, अथवा उस हनाश रमणीका प्रिय ही सरल स्वभाववाला है ॥ ३८ ॥

सामाद् गुरुअजोव्वणचिसेसभरिप कचोत्तमूलम्मि ।

पिज्जइ अहोमुहेण व कण्णवअंसेण लावण्णं ॥ ३९ ॥

[रयामाया गुरुकयौवनविशेषभृते कपोलमूले ।

पीयतेऽधोमुखेनेव कर्णावतसेन लावण्यम् ॥]

रयामा नायिकाके विशाल पृथ विशेष यौवनसे मानलित कपोलके मूलपर अधोमुख होकर कर्णाभरण मानो लावण्यपान कर रहा है ॥ ३९ ॥

सेउद्धिअसज्वह्नी गोत्तग्गहणेण तस्स सुहअस्स ।

दूइं पट्ठापन्ती तस्सेअ घरङ्गणं पत्ता ॥ ४० ॥

[स्वैदादीकृतसर्वाङ्गी गोप्रग्रहणेन तस्य सुभगाय ।

दूतीं प्रस्थापयन्ती (सदिसन्ती वा) तस्यैव गृहाङ्गं मासा ॥]

सस सुभगाका नाम ही लेनेपर अपने सारे अङ्गोंको स्वैदाद्रं कर दूतीको नायकके पास भेजनेका प्रबन्ध करते करते वह स्वय ही उसके गृहघाङ्गमें उपस्थित हुई ॥ ४० ॥

जम्मन्तरे वि चत्तणं जीएण सु मअण तुज्झ अच्चिस्सं ।

जइ तं पि तेण याणेण विज्झसे जेण हं विज्झा ॥ ४१ ॥

[जन्मान्तरेऽपि घरणी जीवेन खलु मदन तयार्चयिष्यामि ।

यदि तमपि तेन वाणेन विष्यसि येनाह विद्या ॥]

अरे कामदेव, जिस वाणद्वारा तुम मुझे विद्व कर रहे हो, उसीके द्वारा यदि उमे भी विद्व करो तो जन्मान्तरमें भी मैं तुम्हारे घरणोंकी पूजा कहूँगी ॥

णिअवअज्जारोविअदेहभारणिउणं रसं लिहन्नेण ।

विअसाविऊण पिज्जइ मालइकलिया महुअरेण ॥ ४२ ॥

[निजपञ्चारेवितदेहभारनिपुण रस लभमानेन ।

विकार्य पीयते साल्ती कठिका मधुकरेण ॥]

अपने दोनों पट्टोंपर देहका भार टालकर अत्यन्त निपुणभावसे रमारवादस पूर्वक, मीठा सालतीकी कठिकाको विक्रमिन् कर पाए कर रहा है ॥ ४२ ॥

कुरुणाहो विअ पट्ठीओ दूमिज्जइ माहवम्मस मिलिपण ।

भंमिण अदिछिआप दादिणवाएण छिपन्तो ॥ ४३ ॥

हृदयसे जो वचन निकलते हैं, वे अन्य पक्षाके होते हैं। पाममे टट जाओ। इन सद्य कपट वचनोंमे क्या प्रयोजन ? ॥ ५१ ॥

कहँ सा सोदग्गुणं मय समं यदइ णिखिण तुमम्मि ।
जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जप मज्ज ॥ ५२ ॥
[कथं सा सौभाग्यगुण मया सम वहति मिष्टं त्वयि ।
यस्या हियते नाम ह्यावा च दीयते मद्यम् ॥]

अरे निर्दय, मेरी तुलनामें यह शमणी तुम्हारे मरुबन्धमें अधिक सौभाग्य गुण कैसे वहन करती है ? कारण, उसका नाम (गोत्र) तुम्हारे द्वारा सुराया जाकर मेरे प्रति प्रयुक्त किया जा रहा है ॥ ५२ ॥

सद्धि साहसु सम्भावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलानं ।
यहन्ति करटिआ विअ चलआ दइय पउट्टम्मि ॥ ५३ ॥
[सति कथम सद्भावेन पुरद्धाम किमशेषमहिलानाम् ।
वर्षन्ते कारिधता एव चलया इयिते प्रोषिते ॥]

सच्ची, बोले तो—सद्भावना सहित पूछती हूँ—क्या प्रियके प्रवास जानेपर सभी महिलाओंके हाथके बल्य बड़ जाते हैं अर्थात् झीले पड़ जाते हैं ॥ ५३ ॥

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खियविउं से करं पसारइ ।
करिणो पद्धक्खुत्तस्स णेह्णिअलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥
[भ्रमति परितः लिपते उरधेसु सस्य करं प्रसारयति ।
करिण पद्धनिमस्य स्नेहनिगडिता करिणी ॥]

पद्धमें गिरो हुई हाथीकी स्नेहभ्रष्टालासे जरद्री हुई, हथिनी, हाथीके चारों ओर घूम रही है, खेद अनुभव कर रही है एवं उसे उठानेके लिए अपना सूँढ़ फैला रही है ॥ ५४ ॥

रइकेलिह्णिअणिअंसणकरकिसलअभरुद्धणअणखुअलस्स ।
रुइस्स तइअणअणं पधइपरिउम्भियअं जअइ ॥ ५५ ॥
[रतिकेलिह्वतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनयुगलस्य ।
रुदस्य श्रुतीयनयनं पार्वतीपरिबुभितं जयति ॥]

जिस रुद्धने रतिकेलिके समय पार्वतीका वक्षोपहरण कर लिया था एवं जिसके नयनयुगल करकिसलय द्वारा मूँद दिये गए थे उसी रुद्धका पार्वती बुभित श्रुतीयनेत्र विजयी हो ॥ ५५ ॥

हे कृष्ण, सौभाग्यपूर्वसे गर्वित होकर यदि योद्धमें भ्रमण करना हो तो भ्रमण करो, (किन्तु इतना करनेपर भी) तुम यदि महिलाओंके द्वेष-गुण देखनेमें समर्थ हो सको भर्षात् नहीं हो सकेगे ॥ ४७ ॥

संहासमप जलपूरिताञ्जलिं विद्वद्विष्णुकवामअरं ।
गौरीञ्च कोसपाणुज्ज्वभं च पमहादिचं णमह ॥ ४८ ॥

[सन्ध्यासमये जलपूरिताञ्जलिं विघटितैरुग्रामकरम् ।

गौरीं कोषपाणोच्चतमिष प्रमथाधिषं नमत ॥]

सन्ध्याके समय गौरीको प्रसादित करनेके लिए जलपूरित अञ्जलि घोंपकर शौंके करको भलगकर शपथके लिए कोषपाणमें उच्चत प्रथमधिपति (शिव) को चमत्कार करो ॥ ४८ ॥

गामणिणो सव्वासु वि पिआसु अणुमरणगहिअवेत्तासु ।
मम्मच्छेपसु वि वल्लदाइ उवरी बलइ दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[प्राणण्याः सर्वाश्वपि प्रियास्वनुमरणगृहीतशेषासु ।

मर्मच्छेदेश्वपि बल्लमाया उपरि बलते दृष्टिः ॥]

मृत्यु के समय प्राणनायककी सारी निपाएँ अनुमरणशेषधारी होकर भी, उस मर्मच्छेदविधाएक दशामें भी उसकी दृष्टि अरुणत बल्लमा शिवाके ऊपर पड़ जाती है ॥ ४९ ॥

भामिसरसनखयणं वि अरिथ विसोसो पअम्पिअव्वाणं ।
णेहमइआणं अण्णो अण्णो उवरोहमइआणं ॥ ५० ॥

[मातुलानि सस्नाक्षराणामपस्वि विदोषः प्रतद्वितश्यानाम् ।

स्नेहमयातामशोभ्य वपरोपमयानाम् ॥]

हे माभी, बाक्यावलीमें मसान अक्षरका प्रयोग होनेपर भी वैशिष्ट्य व्यञ्जित होता है, कारणे, स्नेहमय वचनका वैशिष्ट्य एक प्रकारका होता है और अनुशोषार्थे रूपवद्ध वचनका वैशिष्ट्य दूसरे प्रकारका होता है ॥ ५० ॥

द्विअआहितो पसरन्ति जाहँ अण्णारँ ताहँ यअणाहँ ।
वोसरसु किं इमेहिं अहरत्तरमेत्त भणिय्दि ॥ ५१ ॥

[हृदयैभ्यः प्रसरन्ति यान्यन्यानि तानि वचनानि ।

अपसर किमेभिरघरोत्तरमाप्रमजितैः ॥]

देखो, गीतमें कुछ धृपभक्तों सीगमें अपने पलकको रगड़कर गाय सौभाग्य
प्रकट कर रही है ॥ ६० ॥

उभ संभमविचित्रत्तं रमिअन्त्रगलेहलायँ असईप ।
णवग्गळ्ळअं कुड्ढे धअं घ दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥
[पश्य सन्नमविचित्र रन्तस्यत्रलापटवा अमर्या ।
नत्ररङ्गक कुण्ठे ध्वजमिय दत्तमविनयस्य ॥]

रमणलम्पटा असतीद्वारा कुण्ठमें, अविनयके ध्वजपट रूपमें प्रवृत्त संभ्रम-
विचित्र कौस्तुभवस्त्रको देखो ॥ ६१ ॥

हस्यप्फसेण जरुगवी यि पण्हइइ दोह अगुणेण ।
अचलोअणपण्हइरिं पुत्तअ पुण्णेहिं पायिहिसि ॥ ६२ ॥
[हस्यस्पर्शेन जाह्नस्यपि प्रस्तीति दोहदगुणेन ।
अप्लोकनप्रस्तवनशीलां पुत्रक पुण्यै श्राप्यसि ॥]

अरे घेरे, दोहदके (दूध देनेवालेके) गुणवश हस्यस्पर्शमात्रसे अकर्मण्य
पृथा भी दुःखपात काती है, किन्तु देखने मात्रसे प्रस्वगशीला (अनुसक्त
रमणी) को तुम अपने सुकृतोंके बलसे ही पा संकोगे ॥ ६२ ॥

मसिणं चङ्कम्मन्ती पप पप कुणइ कीस मुहमहं ।
णूणं से मेवल्लिअ जहणगजं छियइ णहवन्ति ॥ ६३ ॥
[मसिणं चङ्कम्यमाणा पदे पदे करोति किमिति मुहमहम् ।
भूत तस्या मेवल्लिका जघनगतां स्पृशति नखपक्षिम् ॥]

समसल स्यान्पर चलने चलने यह रमणी मुँह क्यों बना रही है ?
निश्चय ही उसकी भेलला (कर्धनी) जघनगत नखरतपक्षिको छू (रगड़)
रही है (उसी की ब्यथा से मुँह बना रही है) ॥ ६३ ॥

संवाहणसुहरसतोसिपण देन्तेण तुहकरे लभयं ।
चलणेण विक्रमादत्तचरिअं अणुसिन्धिसअं तिस्स ॥ ६४ ॥
[सवाहनसुखरसतोपितेन ददाता तव करे लाघाम् ।
चरणेन विक्रमादित्थचरितमभुनिचित तस्या ॥]

उम ध्रुवतीके चरणको तुम्हारे सवाहनकार्यद्वारा सुखरस पानेसे मुग्ध
होकर तुम्हारे हाथमें 'लाघा' चिह्न प्रदान करनेसे मालूम पड़ता है कि हृषने
विक्रमादित्थके चरितका अनुसरण करना सीखा है ॥ ६४ ॥

धावद् पुरयो पासेसु भमद् दिट्ठीपदम्भि संठाइ ।
 णयलइकरस्स तुह् इलियाउत्त दे पहरसु वराहं ॥ ५६ ॥
 [धावति पुरत पारवयोभ्रंति दृष्टिपथेसन्निवृत्ते ।
 नवलतिकाकरस्य तत्र हलिकपुत्र हे महास्व वराकीम् ॥]

हे हलिकपुत्र, तुम्हारे हाथमें नवलतिका ले लेनेके कारण वह रमणी तुम्हारे
 निष्कट दौड़ रही है, तुम्हारे पास घूम रही है एवं तुम्हारे दृष्टिपथमें ही सरियत
 रह रही है । तुम उस शोचनीयापर लतिका द्वारा प्रहार करो ॥ ५६ ॥

कारिममाणन्दवडं भामिखसं बहून् सद्विभादि ।

वेरुड्द कुमरिजारो हासुम्मिस्सेदि अच्छीदि ॥ ५७ ॥

[कुत्रिममाणन्दपट आग्यमाण कथा सखीभि ।

प्रेषते कुमारीजारो हासोन्मिथाभ्यामपिभ्याम् ॥]

कुमारीका जार सखियों द्वारा घुमाये जाते हुए वधूके इत्रिम आनन्दपट
 (प्रथमपुष्पवतीका वस्त्र) को हँसीयुक्त नेत्रोंसे देख रहा है ॥ ५७ ॥

सणिअं सणिअं ललिअङ्गुलीअ मअणवडलाअणमिसेण ।

वन्धेद धवलवणट्टअं व यणिआहरे तरुणी ॥ ५८ ॥

[शनकै शनकैलंछिताहुत्वा मदनपटलापनमियेण ।

अभाति धवलवणपट्टमिव मणिताधरे तरुणी ॥]

मणयुक्त अधरपर अँगुलीद्वारा शनै शनै मधुच्छिद्य (मोम) लेपन
 करनेके बहाने तरुणी मानो उमपर रवेत पट्टी बाँधे दे रही है ॥ ५८ ॥

रइधिरमलज्जिआओ धप्पत्तणिअं सणाओ सहस व्व ।

दकन्ति पिअममालिहणेण जइणं सुखवहओ ॥ ५९ ॥

[रतिविरामलज्जिआ अशाहनिवमना सहसैव ।

आत्पादयन्ति मियनमालिहनेन जयन कुणवन्ता ॥]

रमणके विरामके समय रजिना कुण्डपुर्द महला वस्त्र न पाकर शिष्टतम
 को आलिङ्गित ही कर अपने अर्धोंको ढँकती है ॥ ५९ ॥

पायाडिअं सोहग्गं तम्याप् उअद गोट्टमउक्षमि ।

दुट्टवसदस्स सिद्धे वसिखउहं कण्डुअन्तीप् ॥ ६० ॥

[प्रकटित सौभाग्य गवा परयत गोष्ठमरये ।

दुष्टद्वयभरय शङ्के अचिपुट कण्डुवन्ता ॥]

देखो, गोष्ठमें हुए धूपभङ्गें सींगमें अपने पङ्कको रगड़कर गाय सीभाग्य प्रकट कर रही है ॥ ६० ॥

उत्र संभ्रमविचित्रत्वं रमिअभ्यअलेहलाप्ये असईए ।

णवग्ङ्गअं कुडङ्गे घअं च दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥

[पश्य सभ्रमविचित्रं रन्तस्यकलापटया भमत्या ।

नवरङ्गकं कुण्ड्रे ध्वजसिधे दत्तमविनयस्य ॥]

रमणलम्पटा भमतीद्वारा कुञ्जमें, अविनयके ध्वजपट रूपमें प्रदत्त संभ्रम-विचित्र कीस्तुभवच्छको देखो ॥ ६१ ॥

इत्थण्णस्येण जरग्गवी वि पण्हइइ दोह अगुणेण ।

अवल्लोअणपण्हइइरिं पुत्तअ पुण्णेहिं पाविहिंसि ॥ ६२ ॥

[इत्तरपशेन जाइइस्थपि प्रस्तीति दोहदगुणेन ।

अवल्लोकनप्रसनवतशीलां पुत्रक पुण्यै प्राप्स्यसि ॥]

अरे घेरे, दोहइके (दूध देनेवालेके) गुणवश इत्तरपशमात्रसे अकर्तव्य वृद्धा भी हुरधपात करती है, किन्तु देखने मात्रसे प्रसन्नशीला (अनुरक्ता रमणी) को पुत्र अपने सुकृतोंके बलसे ही पा सकीये ॥ ६२ ॥

मस्तिणं चङ्गम्मन्तो पय पय कुणइ कीस मुहभङ्गं ।

णूर्णं से मेहलिआ जहणमअं छिपइ णहवन्ति ॥ ६३ ॥

[मण्णं चङ्गम्यमाणो पदे पदे करोति किमिति सुयमहम् ।

नूनं तस्या मेघलिका जघनतां स्पृशति नखपक्षिम् ॥]

समतल स्थानपर चलते-चलने यह रमणी मुँह क्यों बना रही है ? निश्चय ही उसकी मेहला (कर्धनी) जघनताव नखचतपक्षिको छू (रगड़) रही है (उभी की बंधा से मुँह बना रही है) ॥ ६३ ॥

संवाहणसुहरसतोसियण देन्तेण तुहकरे लखलं ।

चलणेण यिक्कमाइस्सचरिअं अणुसिन्निअअं तिस्सा ॥ ६४ ॥

[संवाहनसुहरसतांपितेन ददता तव करे लात्ताम् ।

चरणेन विक्कमादिव्यचरितमनुशिद्धितं तस्या ॥]

उम सुवतीके चरणको तुम्हारे संवाहनकार्यद्वारा सुवरास पानेसे हुए होकर तुम्हारे हाथमें 'लात्ता' चिह्न प्रदान करनेसे मालूम पड़ता है कि इतने विक्कमादिव्यके चरितका अनुसरण करना सीपा है ॥ ६४ ॥

पापपङ्कणं मुञ्चे रक्षसबलामोडिचुम्भिअव्वाणं ।
दंसणमेत्तपसपणे चुक्कासि सुह्माणं बहुआणं ॥ ६५ ॥

[पादपतनानां सुग्धे रभमबलाकारचुम्बितश्यानाम् ।
दर्शनमात्रप्रसन्ने भ्रष्टासि सुखानां बहुकानाम् ॥]

हे सुग्धे, तुम प्रियके दर्शन मात्रसे प्रसन्न हो जाती हो, किन्तु, पादपतन, वेग एवं बलाकारके साथ चुम्बनादि जनित बहु प्रकारके सुखसे भ्रष्ट वा उससे वञ्चित हो जाती हो ॥ ६५ ॥

दे सुअणु पसिअ पण्हि पुणो वि सुलहाई रुसिअध्वाई ।
एसा मअच्छि मअलच्छणुज्जला गलइ छणराई ॥ ६६ ॥

[हे सुतनु प्रसीदेदानीं पुनरपि सुलभानि रोपितश्यानि ।
एषा मृगाचि मृगलाञ्छनोज्ज्वला गलति चणरात्रि ॥]

हे सुतनु, अब प्रसन्न होओ, किसी दूसरे समय रोप भाव फिर सुलभ होगा । हे मृगलोचने, चन्द्रोज्ज्वला उत्सव रजनी धीतती जा रही है ॥ ६६ ॥

आवण्णाई कुलाई दो वियअ जाणग्गि उण्णइं णेउं ।
गोरीअ हिअअदइमी अहया सालाहणणरिन्दो ॥ ६७ ॥

[आपन्नानि कुलानि द्वाभेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।
गौरीहृदयवदितोऽथवा शालिवाहननरेन्द्रः ॥]

आपन्नक कुलकी (पश्चान्तरमें आपर्णं अर्पान् अर्पणां पर्वतीय कुलकी) उन्नति दो ही व्यक्त कर सकते हैं, गौरीके हृदयवल्लभ या शालिवाहन वंशके नरपति ॥ ६७ ॥

णिक्कण्ड दुरारोहं पुत्तअ मा पाडलिं समारुहस्सु ।
आरुहणिवडिआ के इमीअ ण कआ हआसाए ॥ ६८ ॥

[निष्कण्डदुरारोहां पुत्रक मा पादलिं समारोह ।
आरुहनिपतिता के भगवत न कृता हताशया ॥]

हे पुत्रक, शाखाविहीन आरोहण में कष्टताए हत पादलि (पादउ) पुत्रवृक्षर मत चढ़ना । इस हताशा पादलिने किते चढ़ाकर गिरा नहीं दिया है ? ॥ ६८ ॥

गामणिघटमि अत्ता एक्कं वियअ पाडला इट्ठग्गामे ।
यहुपाडलं च सीसं विवरस्स ण सुन्दरं एअं ॥ ६९ ॥

[ग्रामगिगृहे श्वधु एकैव पाटला इह ग्रामे ।

बहुपाटलः च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

हे श्वधु, इस ग्राममें केवल ग्रामगीके यहाँ एक पाटलावृक्ष है। देवरका मस्तक तो अनेक पाटलोंद्वारा युक्त दिखायी देता है, यह तो अच्छा काम नहीं है ॥ ६२ ॥

अण्णाणं वि होन्ति मुहे पम्हलधवलार्हं दीहरुसणाईं ।

णअणाईं सुन्दरीणं तह वि तु दट्टुं ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्वासासन्नि भवन्ति मुहे पचमलधवलानि शीर्षकृष्णानि ।

नयनानि सुन्दरीणां तथापि सलु दण्डुं न जानन्ति ॥]

अन्वाम्प अनेक सुन्दरियोंके मुखमें पचमल (पंख जैसे) धवल एवं शीघ्रकृष्ण नयनयुगल वर्तमान रहते हैं, तथापि वे सब (श्रुविलामादि के साथ) देखना नहीं जानते ॥ ७० ॥

हंसेहिं च तुह रणजलअसमअमअचलिअविहलवन्खेहिं ।

परिसेसिअपोम्मासेहिं माणसं गम्भइ रिऊहिं ॥ ७१ ॥

[हंसैरिन् तव रणजलदसमयभयचलितविह्वलपक्षे ।

परितोपितपद्माशौर्मानसं गम्यते रिपुभिः ॥]

हे राजन्, हमोंकी मूर्ति तुम्हारे शत्रु (सेवाद्वारा) तुम्हारे मनका अनुगमन अर्थात् छन्दानुवर्तन करते हैं। कारण, उनके स्वपक्षीयगण तुम्हारे रणरूप जलद समयकी उपस्थित देखकर विह्वलचित्तसे भाग रहे हैं एवं उनकी श्रीप्राप्ति की आशा शेष हो रही है, हंसगण भी जलद-समय उपस्थित होनेपर विह्वल होकर भागना आरम्भ करते हैं एवं पथप्राप्तिकी आशा शेष है सोचकर मान-ससेवारकी ओर दौड़ पड़ते हैं ॥ ७१ ॥

दुग्गाअघरम्मि घरिणी रन्धन्ती आउलत्तणं पइणो ।

पुच्छिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअं विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गतगृहे गृहिणी रघन्ती आकृलयं परयुः ।

पृष्टदोहदधदा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

किस दोहद (गर्भवतीकी नाना प्रकारकी साथ) की तुम्हें इच्छा है, पतिमे ऐसा पूछी जानेपर भी दुर्गत घरकी परती पतिकी श्याकुलता दूर करनेके लिए पारवार पानी ही माँग रही है ॥ ७२ ॥

आअम्ब्रलोअणाणं ओहंसुअपाअडोरुअहणाणं ।

अवरद्धमज्जिरीणं कए ण कामो वहह च्चव्वं ॥ ७३ ॥

[आताम्रलोचनानामार्द्राशुकप्रकटोरुअवनानाम् ।

अपराहमजनशीलानां कृते न कामो वहति चापम् ॥]

गोले कपड़े पहननेके कारण जिनके उह एवं अवनस्थल प्रकट हैं, जिनके नेत्र ताम्रवर्ण विशिष्ट आरक्त हैं—अपराह समय जलमें मजन (स्नान) करनेवाली उन सब रमणियोंके लिए कामदेव धनुष नहीं बोते ॥ ७३ ॥

को उव्वरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुरुविहया ।

णहराईं वेसिणिओ गणणारेहा उव वहन्ति ॥ ७४ ॥

[के उव्वरिताः के इह न खण्डिताः के न लुत्तगुरुविभवाः ।

नखराणि वेरया गणनारिवा इव वहन्ति ॥]

कितने पुरप अयन्त आकृष्ट नहीं हुए हैं, कितने पुरुष खण्डित (जनमग्न) नहीं हुए हैं और कितने पुरुष विपुलवैभव नहीं खो चुके हैं, वेरयाएँ इस विषय की गणना रेखाके रूपमें काशुकप्रदत्त नखचिह्न धारण करती हैं ॥ ७४ ॥

विरहेण मन्दरेण व हिअअं दुज्जोअहिं व महिअण ।

उन्मूलिआईं अज्जो अहं रअणाईं च सुद्धाईं ॥ ७५ ॥

[विरहेण मन्दरेणैव हृदयं दुग्धोदधिमिव मधिरावा ।

उन्मूलितानि कष्टमस्माकं शनानाव सुखानि ॥]

मन्दार पर्वत ज्वलप्रकार शीतसागरको मथकर रत्नोंको निकालता है, अहो, तुम्हारा विरह भी उसी प्रकार हृदयको मथकर इसके सारे सुखोंको समूह नष्ट कर देता है ॥ ७५ ॥

उज्जुअरए ण नूसह यक्कम्मि वि आअमं विअप्पेइ ।

एत्य अहज्जाएँ मए विए विअं कहेँ णु [कामव्वं ॥ ७६ ॥

[अज्जुकरते न तुप्पनि च्छेत्त्यागानं विकरपरति ।

अत्राभप्यया मया प्रिये प्रियं कथं तु कर्त्तापम् ॥]

वति हावमावश्यस्य रतिते तुष्ट नहीं होता, चकरतिते भी (कहाँ सीमा) सोचबिचारकर मन्देह करता है। मैं जब अशिशा हूँ, तब प्रियके प्रति प्रिय-आचरण किस प्रकार कहूँगी ? ॥ ७६ ॥

यहुविद्धविलाससरसिण सुरए महिलानेँ को उवज्जाओ ।

सिक्कतह असिपिगआईं वि सग्घो जेहाणुअन्वेण ॥ ७७ ॥

[बहुविधविलाससामिके सुरते महिलातां क उपाध्याय ।

शिक्षयने भक्षितान्यपि सर्वं स्नेहानुबन्धेन ॥]

बहुविध विलाससयुक्त सुरतके सम्बन्धमें महिलाओंका (अन्य) शिक्षक कौन है ? स्नेहानुबन्धन ही तबको भक्षित वस्तुकी शिक्षा दे देना है ॥७७॥

घण्णवसिप रिभत्थसि सत्त्वं विभ सौ तुप ण संभविओ ।

ण हु ह्योन्ति तम्मि दिट्ठे सुत्थावत्त्याई अद्धारं ॥ ७८ ॥

[घर्णवसिते विक्रमसे मत्स्यमेव स खया न सम्भावित ।

न खलु भवन्ति तस्मिन्दृष्टे स्वस्थावस्थान्यङ्गानि ॥]

शरी नावक गुण वर्णनद्वारा पशीकृत हृदये, तुम स्वयं की आत्मरक्षापा प्रकट करती हो । किन्तु वस्तुतः तुमने उसे दृष्टिद्वारा सम्भावित वा अनुगृहीत नहीं किया है । कारण, उसके एक बार दिव्यायी पड़ जाने पर भङ्ग स्वरथ नहीं रह सकते ॥ ७८ ॥

आसण्णविआहदिणे अहिणस्वहुसङ्गमस्सुभमणस्स ।

पदमघरिणीअ सुरअं वरस्स द्विअप ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आसन्नविवाहदिने अभिनववधूपद्ममोऽनुकमनस ।

प्रथमगृहिण्या सुरत वरस्य हृदये न सनिष्ठते ॥]

आसन्न विवाहके दिन नववधूके सङ्गम मासिकेष्टिण उपसृष्टचित्त वरके हृदयमें प्रथम गृहिणीकी सुरतकथा स्थान प्राप्त नहीं करती ॥ ७९ ॥

जइ लोफणिन्दिअं जइ अमङ्गलं जइ विमुक्कमज्जाअं ।

पुप्फवइदंसणं तह वि देइ द्विअमस्स णिअणं ॥ ८० ॥

[यदि लोकनिन्दित वचनमङ्गल यदि विमुक्तमर्षादय ।

पुष्पवतीदर्शनं तथापि ददाति हृदयस्य निर्वाणम् ॥]

पुष्पवती रमणीका दर्शन यदि लोकनिन्दित भी हो, यदि अमङ्गलजनक भी हो एवं यदि सर्पादालह्नदोषसे दूषित भी हो, तब भी वह हृदयमें सुख उत्पन्न करता है ॥ ८० ॥

जइ ण छिरसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिवो ठासि ।

छित्तोसि सुलसुलन्तेहिं घाचिउण अंइ हत्थेहिं ॥ ८१ ॥

[यदि न शृत्सि पुष्पवतीं पुरतस्तस्मिन्मिति वारितस्तिष्ठसि ।

शृणोसि सुञ्जुञ्जापमानैर्पाविवास्मान हस्यै ॥]

यदि पुष्पवतीको छुओगे नहीं तो, बर्जित होने पर भी सामने क्यों खड़े हो ? मेरे चुलचुलायमान (चञ्चल) हाथमें भागकर तुम्हें छू लिया ॥ ८१ ॥

उज्जागरअकसाइअगुरुअच्छी मोहमण्डणविलफसा ।
लज्जइ लज्जालुइणी सा सुद्वअ सहीहि वि यराई ॥ ८२ ॥

[उज्जागरककषापितगुरुकाधी मोघमण्डनविलफसा ।

लज्जते लज्जाशीला सा सुभग सखीभ्योऽवि यराई ॥]

हे सुभग, मेरी इस हतभागिनी एवं लज्जाशीलाका नयनयुगल क्षमितागरणके कारण आरक्त पदं माराक्रान्त हुआ है । निरर्थक अलङ्कारसे यह विमूढा होकर सखियोंसे भी लज्जित हो रही है ॥ ८२ ॥

ण यि तद्द अइ गरुपण यि तम्मइ हिअए भरेण गग्गस्स ।
जइ विपरीअणहुअणं पिअम्मि सोह्हा अपावन्ती ॥ ८३ ॥

[नापि तथातिगुरुकेणापि ताग्यति हृदये भरेण गर्भस्य ।

यथा विपरीतनिधुवनं प्रिये स्तुया अप्राप्नुवती ॥]

गर्भिणी दुःखवधू प्रियतमके साथ विपरीत विहारभोग नहीं कर सकेगी । मैं सोचकर मन ही मन गितनी दुखी हो रही है, उतनी दुखी तो गर्भके गर्भीर भारसे भी नहीं हो रही है ॥ ८३ ॥

अगणिअज्जणाघघाअं अवहत्थिअगुरुअणं घराईए ।
तुइ गलिअदंसणाए तीए वलिउण चिरं उण्णं ॥ ८४ ॥

[अगणितजनापवादमपहस्तितगुरुजनं वराकथा ।

तव गलितदर्शनया तथा वलिखा चिरं रुदितम् ॥]

तुम्हें देना न पानेके कारण वह बेचारी लोकापवादकी चिन्ता एवं गुरुजनोंको अमरमानित कर मुँह फिराकर बहुत देरसे रोदन कर रही है ॥ ८४ ॥

हिअअं हिअए गिहिअं वित्तालिहिअ एव तुइ मुडे दिट्ठी ।
अलिङ्गणरहिअइं णवरं खिज्जन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

[हृदयं हृदये निहित चित्ताल्लिखितैव तव मुखे इष्टि ।

आलिङ्गनरहितानि केषल चीयन्नेऽङ्गानि ॥]

सखी तुम्हारे हृदयमें अपना हृदय संस्थापित राखती है । तुम्हारे मुखपर उसकी इष्टि चिन्ताकाकी भाँति संलभ है—केवल आलिङ्गनरहित होनेके कारण उसके अङ्ग चीण होते जा रहे हैं ॥ ८५ ॥

अह्वयं विभोभतण्डुं दुःसहो विरहाणलो चक्रं जीवं ।
 अप्पाहिजाड किं सखि जाणसि तं चेव जं जुत्तं ॥ ८६ ॥
 [अहं विभोगतन्वी दुःसहो विरहाणलश्चक्रं जीवम् ।
 अमिधीयतां किं सखि जाणसि स्वमेव यद्युक्तम् ॥]

मैं प्रियके विरहमें कृम हुई हूँ, विरहाग्नि दुःसह प्रतीत हो रही है, जीवन भी चञ्चल अर्थात् गमनोन्मुख हो गया है । अरी सखी, इस समय जो उपयुक्त हो, उसीका उपदेश दे ॥ ८६ ॥

तुह विरहुज्जागरओ सिधिये वि ण देह देसणसुहाइं ।
 वाहेण जहालोअणविणोअणं से ह्वं तं पि ॥ ८७ ॥
 [तव विरहोज्जागरकः स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनसुखानि ।
 यापेण यदालोकनविमोदनं तस्या हतं तदपि ॥]

तुम्हारा विरहनिमित्त जागरण स्वप्नमें भी तुम्हारे दर्शनसे उत्पन्न सुख नहीं दे रहा है । जो देखनेमें थोड़ा-बहुत अच्छा भी लगता है वह भी तुम्हारे आँसुओंसे भाच्छन्न होनेके कारण नष्ट प्रतीत होता है ॥ ८७ ॥

अपणाघराहकुचिओ जहूतह कालेण गम्मइ पसाअं ।
 वेसन्नाघराहे कुचिअं कहँ तं पसाइस्सं ॥ ८८ ॥
 [अन्नापराधकृपितो यथातया कालेन गच्छति प्रसादम् ।
 द्वेष्यावापराधे कुपितं कथं नं प्रसादयिष्यामि ॥]

मेरा यदि अन्य किसी प्रकारके अपराधसे वह कुपित होते तो मिम किसी प्रकार समय पाकर उसे प्रसन्न कर लिया जाता । किन्तु मेरे प्रति द्वेष्य भावरूप अपराध होनेके कारण, उसे किम प्रकार प्रसन्न करूँगी ॥ ८८ ॥

दीससि पिआणि जम्पसि सन्भावो सुहअ एत्तिअ व्वेअ ।
 कालेइऊण हिअअं साहसु को दावण करस ॥ ८९ ॥
 [हृदयसे प्रियाणि जम्पसि मद्भावः सुभग एतावानेव ।
 पाठयित्वा हृदयं कथय को दर्शयति करव ॥]

हे सुभग, तुम्हारा इतना सद्भाव है कि तुम मुझे दर्शन देते हो एवं सुघसे प्रिय बातें करते हो, किन्तु यताओ हो, कौन किसे हृदय धीरकर दिखाये ?

उअअं खदिउण उत्ताणिआणणा होन्ति के पि सचिसेत्तं ।
 रिता णमन्ति सुहरं रहट्टवडिअ व्व फापुरिसा ॥ ९० ॥

[उदरं लब्ध्वा उत्तानितानना भवन्ति केऽपि सविशेषम् ।

रिक्ता नमन्ति सुचिरं रहट्ट (अरघट्ट) घटिका इव कापुरुषाः ॥]

कोई-कोई छुद्र पुरुष घटी यन्त्रमें स्थित घटिकाकी भाँति जल पानेपर (अल्प सम्पत्ति पाकर) विशेष प्रकारसे मस्तक ऊँचा कर लेते हैं एवं रिक्तावस्थामें बहुत देर तक नम्र रहते हैं ॥ ९० ॥

भग्मपिअसङ्गमं केत्तिअं च जोहाजलं णहसरम्मि ।

चन्द्रधरपणालणिज्झरणिचहपडन्नं ण णिट्ठाइ ॥ ९१ ॥

[भग्मप्रियसङ्गमं कियदिव ज्योत्स्नाजलं नम सरसि ।

चन्द्रकरपणालनिक्षरनिवहपतक्ष निरितिष्ठति ॥]

आकाशरूपी सरोवरमें प्रियसङ्गमभङ्गकारी ज्योत्स्नाजल और कितना है ? चन्द्रकिरणरूप प्रणालनिक्षरसमूह (परनाले) से गिरकर यह तो समाप्त ही नहीं हो रहा है ॥ ९१ ॥

सुन्दरजुआणजणसङ्कुले वि तुह दंसणं चिमग्गन्ती ।

रण्ण व्व भमइ दिट्ठी घराइभाण समुत्तिग्गा ॥ ९२ ॥

[सुन्दरयुवजनसङ्कुलेऽपि तव दर्शनं विमार्गयन्ती ।

अरण्य इव भ्रमति दृष्टिर्वराकिकायाः समुद्दिग्गा ॥]

बहुत सुन्दर युवकोंसे भरे हुए स्थानमें भी तुम्हारे दर्शनकी खोज करके ही इस बेचारीकी दृष्टि समुद्दिग्ग हो मानो अरण्य अथवा शून्यमें घूम रही है ॥

अइकोवणा वि सासू सभाविभा गअवईअ सोहाण ।

पाअपडणोण्णआण दोसु वि गल्लिएसु यलपसु ॥ ९३ ॥

[अतिकोपनापि श्वधू रोदिता गतपतिकया समुपया ।

पादपतनावनतया द्वयोरपि गलितयोर्वलययोः ॥]

प्रणामार्थ पाद-पवनमें अथवसा प्रोषितमर्तुका पुत्रवधू, उसके हाथमें स्थित दोनों घलय ही छीले हो रहे हैं । ऐसा देव्यकर अत्यन्त क्रोधी स्वभावशाली सासको भी दुःखिता रुला रही है ॥ ९३ ॥

रोचन्ति व्य अरण्णे दूसहरइकिरणफंस संतत्ता ।

अइतारमिद्धिविरुपहिं पाअवा गिम्हमज्झहे ॥ ९४ ॥

[रुग्णतीक्ष्णप्ये दुःसहरविकिरणरपशंसंतसाः ।

अतितारशिखीविरसैः पादपा प्रीभममाप्राप्ते ॥]

प्रीत्यङ्गी दुग्दरीमें जहलमें सिद्धीकीट मगूह आवगत सीध रररमें जोर
कर रहे हैं । दुग्द मूर्धविरणोंके श्पशंसे मग्गत हो वृत्तमगूह रोरेदे हैं ॥ ९४ ॥

पटमणिलीणमधुरमधुलोदहालिउत्तपशशंकारं ।

अहिमभरफिरणणितरम्यचुम्बिअं द्वात्र कमलघणं ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिहीनमधुरमधुनुष्पाटिकुलवटसंकारम् ।

अहिमकरणिणनिकुश्वचुम्बितं द्वात्रि कमलघनम् ॥]

पहले भाषे दुग्द मधुरमधुलोदुप मधुकरकुण्डके गुञ्जनसे सुश्रित कमलघन
वृष्णविरणमूर्धङ्गी शरिमर्षाद्वारा सुमिषत या वृष्ट होकर माधुरित हो
रहा है ॥ ९५ ॥

शोत्तपररत्तणं सोऊण पियअमे अज्ज तीअ मणदिमदे ।

पण्डमदिमम्स मालं व्थ मण्डणं उअह पडिहाइ ॥ ९६ ॥

[शोत्ररत्तलनं शुभ्या पियतमे अद्य तरयाः पणरिषमे ।

वथमहिपरव मालेव मण्डनं परयत्त प्रविभानि ॥]

देवो, आज इस उत्सवके दिन पियतमके मुँहसे शोत्ररत्तलन मुननेके कारण,
इस महिलाकी शोभा मानो वथमहिपके घलेमें ढाढी हुई मालाकी भाँति
प्रतिभात हो रही है ॥ ९६ ॥

मदमद्व मलअयाओ वत्ता घारेइ मं घरावेन्तीं ।

अङ्कोहपरिमलेण पि जो फणु मओ सो मओ व्थेअ ॥ ९७ ॥

[मदमहायते मलयघातः श्रध्वारवति मां गृहाशिवर्गिणीम् ।

अङ्कोटपरिमलेनापि यः पतु मृतः स मृत एव ॥]

मलयपवन उाकट शोरम पडन कर रहा है, इसी कारण साथ मुझे घामे
निफलनेकी मत्ता कर रही है । किन्तु गृहपाटिकास्थित अङ्कोटवृण्डके परिमलमे
जिसे मारा जाना है, वह मारी जायेगी ॥ ९७ ॥

मुहपेच्छओ परं से सा पि दु सपिसेस्तदंसणुम्मइया ।

वोपि कअत्या पुहरं अमहिल्लपुरिसं य मण्णन्ति ॥ ९८ ॥

[मुहप्रेच्छकः पतिरतरयाः सापि रतु मविनेपदशानोन्मत्ता ।

द्वावपि वृत्तार्थी पृथिवीममहिलापुरवामिन् सन्धेते ॥]

उमका पति सदैव ही उसके मुखच्छेका दर्शनाहीकी है । वह भी पत्निका
मुख देखनेकेलिए विनोयनः उन्मत्त रहती है । इस प्रकार दोनों ही परस्पर

कृतार्थ होनेके कारण सोचते हैं कि पृथिवीपर कोई दूसरा पुरुष वा कोई दूसरी स्त्री नहीं है ॥ ९८ ॥

खेमं कन्तो खेमं जो सो खुज्जम्बओ घरद्वारे ।
तस्स किल मत्थआओ को वि अणत्थो सनुप्पणो ॥ ९९ ॥
[खेमं कुतः खेमं योऽसौ कृञ्जाग्रको गृहद्वारे ।
तस्य किलमस्तकाकोऽप्यनर्थः समुपपन्नः ॥]

मेरा कुशल कैसे सम्भव है ? घरके दरवाजेपर जो छाटा आमका पेड़ है, वही हमारे कुशल खेमकी सूचना देता है । इसके मरनकसे क्या एक अनर्थभूत (मुकुल) उत्पन्न हो रहा है ? ॥ ९९ ॥

आउच्छणविच्छाभं जाआइ मुहं णिअच्छमाणेण ।
पहिपण सोअणिअलाविपण गन्तुं विअण शृट्ठं ॥ १०० ॥
[आशृच्छनविच्छायं जापायाः मुपं निरीक्षमाणेन ।
पथिकेन शोकनिगदितेन गन्तुमेव नेष्टम् ॥]

विदाईके समय जापाका मुखड़ा शुष्क एवं मलिन देखकर पथिकने शोक निमग्न होकर जानेकी इच्छा ही नहीं की ॥ १०० ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छल पमुहसुकरणिम्मइए ।
सत्तसअम्मि समत्तं पञ्चमं गाहासअं पअं ॥ १०१ ॥
[रसिकजनहृदयदयिते कविवामलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।
सप्तशतके समाप्तं पञ्चमं गाथाशतकमेतत् ॥]

रसिकोंके हृदयके आर्यंत प्रिय एवं कविवामल प्रमुख सुकविगणारचित सप्तशतीमें यह पञ्चम गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥

पष्टशतक

सूर्देवेहे मुसलं विच्छुद्धमाणेण दृढलोपण ।

एकमगामे वि पित्रो समभं अच्छीहि वि ण विट्ठो ॥ १ ॥

[सूचीवेधे मुसलं निचियता दग्धलोकेन ।

एकप्रामेऽपि प्रियः समान्यामचिन्वामपि न इष्टः ॥]

दग्ध व्यक्ति सूचीवेधके मूषमस्थानपर मूषलनिघेप करते हैं । इस कारण, एक ही गाँवमें वर्तमान प्रियको मैं समान भावसे भौलमर देख भी नहीं पाती ॥ १ ॥

अज्जं पि ताव एकं मा भं चारेहि पिअसदि रुअन्ति ।

कहि उण तम्मि राए जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सं ॥ २ ॥

[अद्यापि तावदेकं मा मां चारय प्रियसखि रुदमीम् ।

वधये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता तदा न रोदिष्यामि ॥]

हे प्रिय सखि, केवल आज एक दिनकेलिए तुम हमें रोनेसे मना मत करना । किन्तु, कल प्रियतमके खले जाने पर यदि प्रागान्त न हो जाय तो फिर नहीं रोऊँगी ॥ २ ॥

एदि ति घाहरन्तम्मि पिअअमे उअद ओणअमुदीए ।

पिउणावेट्ठिअजइणरथलाइ लज्जाणभं हसिअं ॥ ३ ॥

[एहीनि घ्याहरति प्रियतमे परयतावनतमुत्था ।

द्विगुणावेष्टिनअघनरथलया लज्जावनतं हसिन्म् ॥]

तुमलोग देखो, 'आओ' कहकर प्रियतम द्वारा पुत्रा लीजानेपर अवनतमुखी महिला होकर जहाँको दोहरे घद्याज्ज द्वारा दौड़कर लज्जावनत हूँगी ॥ ३ ॥

मारोसि कं ण मुडे इमेण पेअन्तरत्तयिसमेण ।

भुलआचावविणिग्गअतिअन्तरअरइच्छिअल्लेण ॥ ४ ॥

[मारयसि कं न मुग्धे अनेन पर्यन्तरव्ययमेण ।

भ्रूताद्यापविनिगंततीक्ष्णतरार्थाचिभक्ष्णेन ॥]

हे मुग्धे, अपने शक्ति, तीक्ष्ण एवं विषम भ्रूताद्यापसे विनिर्गन तथा

सीषणतर भईनिमीलित इन नयनरूप बाणोंद्वारा तुम किते नहीं मार सकती ॥ ४ ॥

तुह दंसणे सअह्हा सद्दं सोऊण णिग्गदा जाई ।

तइ बोलीणे ताई पआईं वोढव्विआ जाआ ॥ ५ ॥

[तव दर्शने सवृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि ।

त्वयि व्यतिक्रान्ते तानि पदानि बोद्धव्या जाता ॥]

तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषिणी होकर वह कण्ठध्वनि सुनकर घरसे जितने पग निकली थी, तुम्हारे चले जानेपर उसे उतनेही पग तक ढोकर ले आना पड़ा था ॥ ५ ॥

ईसामच्छररहिण्हिं णिव्विआरेहिं मामि अच्छीहिं ।

एहिं जणो जणम्मिअ णिरिच्छए कद्धं ण छिज्जामो ॥ ६ ॥

[ईष्यांमात्सररहिताभ्यां निर्विकाराभ्यां मानुषान्यसिभ्याम् ।

इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

मामी, सम्बन्धहीन महिलाओंके प्रति साधारण पुरुषोंकी नाईं वह मेरे प्रति ईष्यां एवं मात्सर भावसे शून्य तथा निर्विकार नयनोंसे देख रहा है । मैं क्षीण क्यों नहीं होऊँगी ? ॥ ६ ॥

धाउद्धअसिचअधिहाविओरुद्धिणेण दन्तमग्गेण ।

वहुंमाआ तोसिज्जइ णिहाणकलसस्स थ मुहेण ॥ ७ ॥

[धातोद्धतसिचयविभावितोरुद्धेन दन्तमार्गेण ।

वधूमाता तोष्यते निधानकण्ठशरपेव मुखेन ॥]

भूमि चोदते समय रथापन कलशका तुँह दिलायी पङ्कनेपर जैवी प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता नये बहुकी माताको, धम्माञ्जलके हवासे तब जाने गर कन्याके उरु प्रदेशपर दन्तपत्र देखकर हुई ॥ ७ ॥

द्विअअम्मि अस्तमि ण करेसि मण्णुअं तद्द थि णेहमरिण्हिं ।

सङ्किज्जस्ति जुअइसुद्धावगल्लिमधीरेहिं अग्गेहिं ॥ ८ ॥

[हृश्ये अस्तसि न करोषि मभ्युं तथापि खेहभृताभिः ।

शङ्कपमे सुवतिस्वभावगलितपैर्वागिरस्माभिः ॥]

तुम मेरे हृश्य में वाम कर रहे हो एवं मेरे प्रति क्रोध नहीं प्रकट करने अर्थात् मेरा दुःख नहीं बढ़ाते । फिर भी स्नेहपूर्ण एवं सुवतीस्वभावपरम श्रेय विगलित होनेके कारण मुझे आशङ्क हो रही है ॥ ८ ॥

अणं पि किं पि पाचिद्विसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।

द्विअअ पराधीणजणं मग्गेन्त तुह केत्तिअं एअं ॥ ९ ॥

[अन्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा साम्य दु खमात्रेण ।

हृदय पराधीनजनं मृगयमाण तव क्रियन्मात्रमिदम् ॥]

अरे मूढ हृदय, केवल विरहदु खके कारण कष्टका अनुभव मत करना, अन्य कुछ भी अर्थात् मृग्यु भी पाओगे । पराधीन व्यक्ति की प्रार्थनाके समान प्रहारा यह विरहदु ख कितना है अर्थात् अत्यल्प है ॥ ९ ॥

येसोसि जीअ पंसुल अहिअअरं सा हु यल्लभा तुज्झ ।

इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअं दहपेम्मस्स ॥ १० ॥

[द्वेष्योऽसि यस्या पंसुल अधिकतरं सा खलु बल्लभा तव ।

इति ज्ञात्वापि मया न ईरिषितं दग्धप्रेमः ॥]

अरे पापिष्ठ, तुम जिस कामिनी द्वारा उपेक्षित वा विरागभाजन हो, उसी को अधिक प्रेम करते हो, यह जानकर भी मैं दग्धप्रेमके प्रति वा दग्धप्रेमके वश ईर्ष्यालु नहीं हुई ॥ १० ॥

सा आम सुहअ गुणरुअसोहिरी आम णिग्गुणा अ अहं ।

भण तीअ जी ण सरिसो किं सो सन्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

[सा सत्यं सुभग गुणरूपदोभनशीला सत्यं निर्गुणा चाहम् ।

भण तस्या यो न सदृशः किं न सर्वो जनो त्रिव्रताम् ॥]

हे सुभग, वास्तवमें तुम्हारी वह भेयसी रूपगुणशक्तिनी है, एवं मैं गुण-विहीना हूँ । यताना तो, जितने व्यक्ति उसके सदृश नहीं हैं, वे क्या मर जायें ॥ ११ ॥

सन्तमसन्तं दुक्खं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति ।

ता पुत्तअ महिलाओ सेत्ताओ जरा मनुस्साणं ॥ १२ ॥

[सदसददु खं सुख च वा गृहस्य जानन्ति ।

ताः पुत्रक महिलाः शोषा जहा मनुष्याणाम् ॥]

हे पुत्रक, जो वधुएँ परके सभीके सदसत् सुख दु ख सभीको विचारकर चलना जानती हैं, केवल ये ही महिला पद-वाच्य हैं; अन्यान्व रमणियोँ केवल मानवीय जराके समान हैं अर्थात् कुल-बलश्रिनी हैं ॥ १२ ॥

इसिपहिँ उवालम्भा अच्चुवचारेहिँ कसिअव्याइँ ।

अंसूहिँ मण्डणाइँ पसाँ मग्गो सुमहिलाणं ॥ १३ ॥

[हसितैरुपालम्भा अयुपचारोः खेदितव्यानि ।

अधुभिः कलहा एव मार्गः सुमहिलानाम् ॥]

हास्य द्वारा विरस्कार, अत्यादर द्वारा खेद-प्रकाश एवं अश्रुद्वारा अलङ्कारण वा गुण करना, अश्लील महिलाओंकी यही मान प्रकट करनेकी रीति है ॥ १३ ॥

उल्लापो मा दिज्जउ लोअविरुद्ध त्ति णाम काऊण ।

सँमुद्दापडिप को उण वेसेँ वि दिट्ठि ण पाडेइ ॥ १४ ॥

[उल्लापो मा दीपतां लोकविरुद्ध इति नाम कुरवा ।

संमुखापतिते कः पुनर्द्वेष्येऽपि दृष्टिं न पातयति ॥]

लोकविरुद्ध कार्यं समझकर लोकप्रकाश (लोकव्यति) नहीं किया गया है । किन्तु किसी व्यक्ति के अप्रिय अथवा उपेक्षित होनेपर भी क्या उसके सामने आगनेपर उसपर दृष्टि न डाली जाय ? १४ ॥

साहीणपिअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्थमप्पार्ण ।

पिअरहिओ उण पुहविं वि पाधिउण दुग्गओ च्चेअ ॥ १५ ॥

[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गंतोऽपि मन्यते कृतार्थमारमानम् ।

प्रियरहितः पुनः पृथिवीमपि प्राप्य दुर्गत एव ॥]

स्वयं दुर्गत होनेपर भी जिनकी प्रियतमा स्वाधीना हैं, वे अपनेको कृतार्थ समझते हैं । किन्तु जो व्यक्ति प्रियरहित हैं, वे पृथिवी प्राप्त होनेपर भी दुर्गत ही रह जाते हैं ॥ १५ ॥

किं कयसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एकमेअस्स ।

पेम्मं विसं घ विसमं साहसु को रुन्धिउं तरइ ॥ १६ ॥

[किं रोदिपि च सोअमि किं कुप्पमि सुत्तु एकैकामै ।

प्रेम विपमिव विपमं कथय को रोद्धुं शक्नोति ॥]

अरी सुत्तु, रोती क्यों हो, शोकचिन्ता भी क्यों करती हो, प्रायःक व्यक्ति पर क्रोध क्यों प्रकट करती हो ? बताओ तो विपके समान विपम प्रेमको कौन अवश्य कर सकता है ? १६ ॥

ते अ जुआणा ता गामसंपमा तं च अम्ह ताएण्णे ।

अक्खलाणअं च लोओ वट्ठेहि अम्हे वि तं सुणिमो ॥ १७ ॥

[ते च युवानरताः ग्रामसंपदरतचारमार्कं तारण्यम् ।

आश्रयानकमिव लोकः कथयति यवमदि तच्छृणुमः ॥]

वे ही, वे युवक तब थे, वह ही, वह तब ग्राम-सम्पत्ति थी और तब हम लोगोंका वही-वह यौवन भी था। लोग आह्वानकी भाँति उन सपका वर्णन करते और हम सब सुनेंगे ॥ १७ ॥

वाहोहभरिभगण्डाहरापे भणिअं विलफखहसिरीए ।
अज्ज वि किं रुसिज्जइ सवहावत्थं गअं पेम्मं ॥ १८ ॥
(वात्प्यौघभृतराण्डाधरया भणितं विलफहसनशीलया ।
अद्यापि किं रुप्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥)

धाप्यपवाहसे गण्डस्थल एवं अधरको भरकर लज्जाभीतासे हँसकर वह नायिका बोली, अब और रोष क्यों प्रकट कर रही हो ? प्रेम शपथकी अवस्था पा चुका है अर्थात् शपथ द्वारा प्रेमकी-प्रतीति घटती है ॥ १८ ॥

घण्णअघअलिप्पमुहिं जो मं अइआअरेण चुम्बन्तो ।
एहिं सो भूसणभूसिअं पि अलसाअइ छिवन्तो ॥ १९ ॥
[वर्णं घृणलिसमुखी यो मामभ्यादरेण चुम्बन् ।
इदानीं स भूपणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

पुष्पावतीकी दशामें वर्णघृतद्वारालिसमुखी जिसने मुझे अत्यन्त आदरके साथ चूमा था, वही अब मेरे भूपणद्वारा अलङ्कृत होनेपर भी मुझे छूनेमें संकोच का बोध कर रही है ॥ १९ ॥

णीलपडपाउअङ्गी त्ति मा हु णं परिहरिज्जासु ।
पट्टंसुअं पि णसं रअम्मि अघणिज्जइ अवेअ ॥ २० ॥
[नीलपटप्रावृताङ्गीति मा खल्वेनां परिहर ।
पट्टांशुकमपि नदं रतेऽपनोयत एव ॥]

नीले वस्त्रद्वारा आवृत अङ्गवाली समझकर उसे कभी रपाग न देना । पहले हुए पट्टवस्त्र भी रमणके समय छीन लिये जाते हैं ॥ २० ॥

सच्चं कलहे कलहे सुरतारम्भा पुणो णवा होन्ति ।
माणो उण माणंसिणि गरओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥
[सच्यं कलहे-कलहे सुरतारम्भाः पुनर्नवा भवन्ति ।
मानः पुनर्मनस्विनि गुरुकः प्रेम विनाशयति ॥]

प्रत्येक कलहके उपरान्त प्रारम्भ किया हुआ रमण पुनः नवीन होता है, यह सच है। किन्तु हे मनस्विनि, भारी होनेपर मान प्रेमका विनाश कर देता है ॥ २१ ॥

भाणुम्मत्ताइ मए अकारणं कारणं कुणन्तीए ।
 अहंसणेण पेम्मं विणासिअं पोढवाएण ॥ २२ ॥
 [मानोन्मत्तया मया अकारणं कारणं कुर्वन्त्या ।
 अदर्शनेन प्रेम विनाशितं प्रौढवादेन ॥]

मानमें उन्मत्त हो, मान करनेका जो कारण नहीं है उसे कारण समझकर दर्शन तक दिये बिना मैंने प्रतिज्ञापूर्वक अस्वीकृति द्वारा प्रेमको विनष्टकर डाला है ॥ २२ ॥

अणुअलं विअ वोत्तुं बहुवह्लद्व वह्लहे वि वेसे वि ।
 कुविअं अ पसाएअं सिअएइ लीओ तुमादिसी ॥ २३ ॥
 [अनुकूलमेव वक्तुं बहुवह्लमनह्लभेऽपि ह्येऽपि ।
 कुपितं च प्रसादयितुं शिष्यते लोको युष्मत्तः ॥]

हे बहुवह्लन, प्रिय रहो या अप्रिय, लोग तुमसे यह सीख सकते हैं कि किमसे किस प्रकार अनुकूल वचनका प्रयोग करना चाहिए एवं कुपित व्यक्तिको किस प्रकार प्रसन्न करना चाहिए ॥ २३ ॥

लज्जा चत्ता सीलं अ खण्डिअं अजसघोसणा दिण्णा ।
 जस्स कएणं पिअसहि सो च्चेअ जणो जणो जाओ ॥ २४ ॥
 [लज्जा त्यक्ता शीलं च खण्डितमयशोघोषणा दत्ता ।
 यस्य कृतेन (कृतेमनु) प्रिय सखि स एव जनो जनो जातः ॥]

हे प्रिय सखि, जिसके लिए मैंने वस्तुतः लज्जा छोड़ दी है, चरित्रको भङ्ग कर दिया है एव शपथना मोल ले रखा है वह (प्रिय) व्यक्ति ही अब (उदासीन) व्यक्ति बन गया है ॥ २४ ॥

हसिअं अदिट्ठदन्तं अमिअमणिघन्तदेहलीदेसं ।
 दिट्ठमणुक्खित्तमुहं एसो भग्गो कुलवहणं ॥ २५ ॥
 [हसितमहृदन्तं अमितमनिष्क्रान्तदेहलीदेशम् ।
 हृदमनुत्थित्तमुखनेप भागः कुलवधूनाम् ॥]

कुलवधुओंकी यही रीति है, बिना दौत दियाये हँसना चाहिए, देहलीके भागे बड़े बिना घूमना चाहिए एवं मुँह ऊपर उठाये बिना देघना चाहिए ॥

धूलिमश्लो वि पट्ठङ्किओ वि तणाइअदेहभरणो वि ।
 तट्ट वि गहन्दो गयअत्तणेण टफकं समुव्यहइ ॥ २६ ॥

[धूलिमलिनोऽपि पङ्काङ्कितोऽपि कृणरचितदेहभरणोऽपि ।
तथापि राजेन्द्रो गुरुकृत्वेन ढकनं समुद्रहति ॥]

धूलिमलिन होनेपर भी, पङ्काङ्कित होनेपर भी, कृण द्वारा देहपोषणकारी होनेपर भी राजेन्द्र अपने गुरुत्ववश (भारीपनके कारण) डोल बहान करता है ॥

करमरि कीस ण भम्मइ को गय्यो जेण मल्लिणगमणासि ।
अद्दिदुदन्तहसिरीअ जम्पिअं चोर जाणिहिंसि ॥ २७ ॥
[यन्दि किमिति न गम्यते को गर्भो येन मघृणगमनासि ।
अददन्तहसनशीलय जल्पितं चोर ज्ञास्यसि ॥]

हे वन्दी, मेरे साथ चलती क्यों नहीं ? तुम्हें क्या यह गर्व है कि इतनी मन्त्रगमना हो गयी हैं ? दाँत बिना दिखाये हँसकर रमणी बोल उठी, "हे चोर, (क्यों वेना कबती हैं) जान जाभोगे" ॥ २७ ॥

थोरंसुपदिं रुणं सयत्तिवग्गेण पुप्फवइआप ।
भुअसिहरं पइणो पेछिऊण सिरलगगतुप्पलिअं ॥ २८ ॥
[शूलाधुपी हदित सपत्नीवर्गेण पुप्पवत्याः ।
भुजशिवरं वसुः मेपय शिरोलम्नवर्णपूतलितम् ॥]

पुष्पवतीके शिरोलम्नविलेपन पूतद्वारा पत्तिके भुजशिवरको लिप्त देलकर सपत्नियों अविरल अधुधार बहाकर रोने लगीं ॥ २८ ॥

लोओ जूरइ जूरउ वअणिउअं होउ ह्योउ तं णाम ।
पहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण पइ मे णिहा ॥ २९ ॥

[लोकः सिद्यते सिद्यतु वचनीयं भवति भवतु तन्नाम ।

पहि निमज्ज पासे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]

लोग हुली होते हैं तो हों, निद्रा होली है तो वह भी हो । हे पुष्पवती, आओ, मेरे पास आजाओ, मुझे निद्रा नहीं आ रही है ॥ २९ ॥

अं अं पुलपमि दिसं पुरओ तिहिअ व्य दीससे तत्तो ।
तुइ पडिमापडिवाडि बहइ व्य सअलं दिसाअअय्यः ॥ ३० ॥

[यां यां मलोकयामि दिशं पुरतो लिखित पुत्र इश्यसे तत्र ।

तव प्रतिमापरिपाटी यहनीव सकलं दिशाचक्रम]

अं त्रिधर-त्रिधर देखती हैं, मानो उधर ही उधर तुम्हें चित्रित देखती हैं । सारे दिक्चक्र ही जैसे मुग्धानी प्रतिमाको परस्पर बहान कर रहे हैं ॥ ३० ॥

ओसरइ धुणइ सार्हं खोक्खामुहलो पुणो समुल्लिहइ ।
जम्बूफलं ण गेहइ भमरो त्ति कई पढमडको ॥ ३१ ॥

[अपसरति धुनोति शालां खोक्खामुखराः पुनः समुल्लिखति ।
जम्बूफलं न गृह्णाति भ्रमर इति कपिः प्रथमदृष्टः ॥]

भँरि द्वारा पहले काटलिये जानेपर वानर बड़ी जोरसे खो खोकर
(जम्बूवृक्षसे) छट रहा है, डालको हिला रहा है एवं पुनः नखद्वारा
हमपर खुरच रहा है । किन्तु हममें भँरा है, यह मनसकर जामुनके फलको
नहीं ले रहा है ॥ ३१ ॥

ण छिवइ हत्थेण कई कण्डूइमपेण पत्तलणित्थजे ।
दरल्लंभिवअगोच्छकइकच्छुसच्छहं वाणरीहरत्थं ॥ ३२ ॥

[न रपृशति हस्तेन कपिः कंदूतिभयेन पत्रलनिकुञ्जे ।
ईपल्लम्भितगुच्छकपिकच्छुसदृशां वानरीहरत्तम् ॥]

पत्रबहुल निकुञ्जमें वानर लम्बमान करिकच्छु नामक गुच्छे की भँति
दिलायी पकता है । हम कारण खुजलीके समय इष्टतम होनेपर भी वानरीके
हाथको अपने हाथसे छूता नहीं ॥ ३२ ॥

सरसा वि सूसइ च्चिअ जाणइ दुक्खपाईं मुद्धहिअया वि ।
रत्ता वि पाण्डुर च्चिअ जाआ चरईं तुह वि विओप ॥ ३३ ॥

[सरसापि शुष्यत्येव जानाति दुःखानि मुग्धहृदयापि ।
रक्षापि पाण्डुरैव जाता घराकी सव विद्योते ॥]

गुग्गारे विद्योगमें वह घराकी रसयुक्ता होकर भी सूखती जा रही है, मोहा-
वृद्धब्रह्मदया होकर भी दुःखका अनुभव कर रही, एवं रत्ता (अक्षरता) होकर
भी पाण्डुवर्णा होती जा रही है ॥ ३३ ॥

आरुहइ जुण्णअं सुज्जथं वि जं उअह पल्लती तउसी ।
णीलुप्पलपरिमलयासिअरस्स सरअरस्स सो दोसो ॥ ३४ ॥

[आरोहति जीर्णं कुम्भकमपि यत्परपत वेह्नशीला प्रपुती ।
नीलोत्पलपरिमलयासितायाः क्षारदः स दोषः ॥]

देव, वल्लरी जो जीर्ण है एवं कुम्भ वा घटकृपपर जो आरोहण करती है,
यह नीलकमलके परिमलसे यासित क्षारकाल (इष्टमद्य) का दोष है ॥ ३४ ॥

उप्यहपहाविहजणो पविज्जिम्हिअकलअत्तो पइअतूरो ।
अत्तो सो अयेअ हणो तेण चिणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उपयधप्रधावितत्रनः प्रविज्जिमितकलकलः प्रहततूर्यः ।
दुखं स एव चणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

हाय, जिस उत्सवमें लोग उसकी ओर भागते हैं, भीताविश्राय कलकल रव उठता है एवं तूर्यनिदान उठाया जाता है—यही मधुसूय उस प्रियतमके विरहमें ग्रामदाहकी भाँति प्रतीत हो रहा है ॥ ३५ ॥

उल्लापन्तेण ण हीइ कस्स पासट्टियण ठट्टेण ।
सद्धा मस्साणपाअवलम्बिअचोरेण च खत्तेण ॥ ३६ ॥

[उल्लापपमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन रतम्भेन ।

शङ्का श्मशानपादपलम्बितचोरेणैव सत्तेन ॥]
श्मशानवृष पर गलेमें फाँसी टालकर लटकती दुर्दै, छात्रमान, रतम्भ एवं परानवकारी खोरकी भाँति (प्रवृत्तार्थ) कोलते हुए पार्श्वस्थित तथा गर्वसे स्वस्थ खल व्यक्ति जिसमें शङ्का नहीं उत्पन्न करते ॥ ३६ ॥

असमत्तगुदअकञ्जे पड्ढि पट्टिय घटं पिअत्तन्ते ।
णयपाउत्तो पिउच्छा हसद च कुडअट्टासेदि ॥ ३७ ॥

[असमाप्तगुदकार्ये हृदानीं पथिके गृहं प्रतिविवर्तमाने ।
नवप्राष्ट्रं विवृण्वस हसतीय गुदप्राट्टहारौ ॥]

अरी हुआ, समति अत्यावश्यक कार्यको असमाप्त करने से । पथिकके घर छोट जाने पर, यही वर्षासे गिरिमण्डिकके तिलनेके समान अट्टाहास-सी होती हैस रही है ॥ ३७ ॥

ददहूण उण्णमन्ते मेदे आमुगजीपिआसाय ।
पड्ढिअघरिणीअं डिम्मो ओयण्णमुदीअ सच्चयिओ ॥ ३८ ॥

[इध्ना उन्नमतो मेघानामुक्तनीविताराया ।
पथिकगृह्णिया डिम्मोश्चरदितमुक्त्वा एतः ॥]

आकाशमें बादलोंको उठते हुए देखकर, जीवकी मृतक उन्नमत्तयागकर, पथिकपत्नी ने राजसि मुँहसे अपने गिह्यारे दण्डके रूपमें-रेकरीतिसे स्थिर किया ॥ ३८ ॥

अधिद्वयपराणयतमं टाणं पेत्तो पुणो दुत्ते रवेत्ते ।
सदिसत्थो विअ माणंसिणीअ हत्तस्सजे जत्ते ॥ ३९ ॥

[अविधवालयवलयं स्थानं नयन्पुनः पुनर्गलितम् ।

सखीसायं एव मनस्विन्या वलयकारको जातः ॥]

मनस्विनीके अवैधवदके लक्षणरूप वलयके गिर खानेपर, सखियाँ ही इसे धार-धार पहनाती हैं । मतः वे ही उसके वलय पहिनेवाली (चूड़हारिन) हो गई हैं ॥ ३९ ॥

पहियवहू विवरन्तरगलिभजलोह्ये घरे अपोल्लं पि ।

उद्देशं अविरअवाहसलिलणिघहेण उल्लेह ॥ ४० ॥

[पथिकवधूर्विवरान्तरगलितजलाद्रं गृहेऽनाद्रंमपि ।

उद्देशमविरतवाप्पसलिलनिघहेनाद्रंयति ॥]

विधवाँ द्वारा गिरते हुए धर्पा जलकी धारासे आर्द्र गृहके जो-जो कोने भनाद्रं रह गए हैं, उन-उन स्थानोंको भी पथिककी वधू अविरल गिरनेवाली नेत्र जलकी धारासे आर्द्र कर रही है ॥ ४० ॥

जीहाइ कुणान्ति पिअं भवन्ति द्विअथम्मि णिव्वुइं काउं ।

पीडिज्जन्ता वि रसं जणन्ति उच्छू कुलीणा थ ॥ ४१ ॥

[जिह्वायां (पक्षे-जिह्वया) कुर्वन्ति प्रियं भवन्ति हृदये निर्वृतिं कर्तुम् ।

पीडयमाना अपि रसं जनयन्तीश्ववः कुन्दीनाश्च ॥]

गन्ना जिस प्रकार जिह्वाका स्वाद उत्पन्न करता है, हृदयमें ताप निवृत्त कर शान्तिका विधान करता है एवं निष्पीडित होनेपर भी रस उत्पन्न करता है, उसी प्रकार कुलीन व्यक्ति भी जिह्वा अर्थात् अनुकूल वचन द्वारा प्रियता उत्पन्न करते हैं । हृदयमें शान्ति प्रदान करते हैं एवं प्रपीडित होकर भी प्रीति उत्पन्न करते हैं ॥ ४१ ॥

दीसइ ण च्चूअमउलं अत्ता ण थ याइ मलअगन्धवहो ।

पसं वसन्तमासं साहइ उफ्फण्ठिअं वेअं ॥ ४२ ॥

[इरपते न च्चूनमुइलं श्चु न च याति मलयगन्धवहः ।

मासं वसन्तमासं कथययुक्कण्ठितं वेतः ॥]

हे साम, आन्नमशरी नहीं दियायी पकती । मलयपर्वन भी नहीं बढ रहा है, उर्कंटित विस ही वसन्तागमनकी सूचना दे रहा है ॥ ४२ ॥

अग्गवणे भमरउलं ण विणा कज्जेण ऊसुअं भमइ ।

कत्तो जलणेण विणा धूमस्स सिहाउ दीसन्ति ॥ ४३ ॥

[आम्रवने भ्रमरकुलं न विना कार्येणोऽसुकं भ्रमति ।

कुतो डवलनेन विना धूमस्य शिखा हरयन्ते ॥]

अमराईमें अनायास ही उरसुक हो भीरे धूम नहीं रहे हैं अर्थात् मधुपान के लोभमें धूम रहे हैं। भ्रमिके अतिरिक्त धूँकी शिखा कहाँ दिखायी पड़ती है ? ॥ ४३ ॥

दद्वधकरगहलुलिओ घग्मिलो सीधुगन्धिअं घअणं ।

मअणम्मि पत्तिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणं ॥ ४४ ॥

दयितकरमहलुलितो धग्मिलः सीधुगन्धितं वदनम् ।

मदने प्तावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

प्रियतमके करग्रहणके कारण दिधिलबद्ध केशवन्ध (जूड़ा) एवं मदिराके गंधसे आमोदित वदन—इतना शृंगार ही तरुणियोंके मदनोत्सवमें चित्तहारी होता है ॥ ४४ ॥

गामतरुणीओ* द्विअअं हरन्ति छेआणं थणहरिल्लीओ ।

मअणे कुसुम्भरज्जिअरुञ्चुआहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति विदग्धानां स्तनभारवत्यः ।

मदने कुसुम्भरागयुक्तञ्चुकाभरणमात्राः ॥]

मदनोत्सवमें कुसुम्भरजित कञ्चुकि मात्र आभरणरूपमें पहनकर, स्तन-भारवती ग्रामतरुणियाँ विदग्ध जनोंके हृदयको हर रही हैं ॥ ४५ ॥

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्मन्त गन्त रोअन्त ।

मुच्छन्त पडन्त पलन्त पद्विअ किं ते पउत्थेण ॥ ४६ ॥

[आलोक्यन्दिशः श्वसञ्जृम्भमाणो गायन्हृदन् ।

मूर्च्छन्पतन्सखलन्पयिक किं ते प्रवसितेन ॥]

अरे पधिक, दिशाओंकी ओर देखकर ही तुम्हारे श्वास, जँभाई, पान वा गमन, रोदन, मूर्च्छा, पतन एवं सखलन हो रहे हैं—तुम्हारे प्रवासगमन से क्या प्रयोजन ? ॥ ४६ ॥

दद्वट्ठण तरुणसुरअं विविधविलासेहिं करणसोहिल्लं ।

दीओ धि तग्गअमणो गअं पि तेत्तं ण लम्पेइ ॥ ४७ ॥

[दद्वट्ठा तरुणसुरतं विविधविलासैः करणशोभितम् ।

दीपोऽपि तद्गतमना गतमपि सैलं न लप्स्यति ॥]

विविधविलासपूर्ण एवं कामशास्त्रोक्त बन्धनकरणादिद्वारा शोभित तरुण-
तरुणीका सुरत देखकर उसमें लिप्त चित्तने भी नहीं देखा कि तेल निःशेष हो
गया है ॥ ४७ ॥

पुणरुत्तकरष्फालणजहथतडुल्लिखरणवहृणसआइं ।

जूहाहिवस्स माप पुणो चि जइ णम्मथा सद्धइ ॥ ४८ ॥

[पुनरुत्तकरास्फालनोभयतटोल्लिखनपोदनशतानि ।

यूथोधिपरय मातः पुनरपि यदि नर्मदा सहते ॥]

हे माता, न जाने, नर्मदा (नदी, नर्मदा सुलदात्री) नायिका यूथपति
(गजपति, गोपीनायक) के बारबार करके (शुण्ड, हरत) शत-शत ताड़न
(फटाव), वभय तट (कूप, विनारे) शत-शत उन्मत्तन एवं शत-शत पीड़न
सहन कर सकेगी या नहीं ॥ ४८ ॥

बोडसुणओ विअण्णो, अत्ता मत्ता, पई चि अण्णत्थो ।

फलिहं व मोडिअं महिसपण, को तस्स साहेउ ॥ ४९ ॥

[दुष्टशुनको विपन्नः श्वधूर्मत्ता पतिरप्यन्यरथः ।

कार्पाश्यपि भग्ना महिपकेण कस्तस्य कथयतु ॥]

गृहरक्षक दुष्ट कुत्ता मर गया है, मास उन्मादरोगसे ग्रस्त है, पति परदेश
गया हुआ है—बैलने जो कार्पासका जेत नष्ट कर दिया है, कोई नहीं है जो
उसे बता दे ॥ ४९ ॥

सकअग्गदरहसुत्ताणियाणणा पिअइ पिअमुद्धविइण्णं ।

थोअं थोअं रोसोसहं व उअ माणिणी मइरं ॥ ५० ॥

[सङ्घग्रहरभसोत्तानितानना पिबति त्रिपमुखवित्तीर्णाम् ।

स्नोकं स्तोकं रोपीपमिव परय मानिनी मदिराम् ॥]

देलो, त्रिपत्तम द्वारा बाल पङ्क कर मलपूर्वक ऊपर उठाये गए मुँहवाली
मानिनी त्रिपत्तमके मुख द्वारा दी हुई मदिराको रोपनिवारक औषधिके रूपमें
धीरेधीरे पी रही है ॥ ५० ॥

गिरसोत्तो च्चि भुअंगं महिसो जीहइ लिहइ संतत्तो ।

महिसस्स फहयत्थरद्वरो च्चि सप्यो पिअइ खालं ॥ ५१ ॥

[गिरिप्रोत इति भुजंगं महिषो जिह्वा एति संतप्तः ।

महिषरप कृष्णप्रस्तारस्त इति मयः पिबति खालाम् ॥]

ब्रीहम सन्तापसे सन्तप्त वैड गिरिका खोत समदक्षर सर्पको जिह्वासे खाट
रहा है, एवं सर्प भी काले पापरका शरणा समदक्षर उसका लार पी रहा है ॥

पञ्जरसारि अत्ता ण जेसि किं परथ रइहराहिनतो ।

धीसम्मज्जम्पिआइं एसा लोआणं पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरदारीं मातुलानि न नयसि किमत्र रतिगृहात् ।

विष्वग्भजद्विपतान्येषा लोकानां प्रकृत्यति ॥]

भरी सास, इस पञ्जरबद्ध सारिकाको रतिगृहसे भग्यत्र दटा क्यों नहीं
देती ? यह भीरीं के सम्मुख गोपनीय वचनोंको प्रकट कर देती है ॥ ५२ ॥

पइहमेत्ते गामे ण पइइ भिन्ख सि कीस मं भणसि ।

धम्मिअ करअमअअ जं जीअसि तं पि दे बहुअं ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न एतति भिषेति न किमिति मां भणसि ।

धार्मिक करअमअक यजीषसि तदपि ते बहुकम् ॥]

हे करअ-शाखाभङ्गकारी धर्मात्मा, इतने धड़े ग्राममें मुझसे ही क्यों कह
रहे हो कि 'भिषा नहीं मिलती' ? करअशाखा-भङ्ग होनेके बाद जो नीवित
हैं—यही तुम्हारे लिए बहुत है ॥ ५३ ॥

जन्तिअ गुलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाहसे जन्तं ।

अणारसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[धार्मिक गुहं विर्माणयसे न च ममेच्छया वाहयसि यन्त्रम् ।

अरसिक किं न जानासि न रसेन विना गुलो भवति ॥]

अरे यन्त्रचालक, (चेतनके बदले) गुह चाहते हो ? ऊपरसे हमारे इच्छा-
नुसार यन्त्र नहीं चल सकता । अरे अरसिक, क्यों, नहीं जानते कि रसके
बिना गुण वैदा नहीं होता ॥ ५४ ॥

पत्तणिअम्बवप्फंसा णहाणुत्तिण्णारं सामलङ्गीए ।

जलविन्दुएदिं चिहुरा रुअन्ति दन्धरस्त च भवण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बरूपनाः स्नानोत्तार्णायाः श्यामलाङ्गयाः ।

जलविन्दुकैश्चिकुरा रुन्ति घन्धस्येव भयेन ॥]

स्नानोत्तार्णा श्यामलाङ्गीके कुन्तल केदासमूह नितम्बके स्पर्शसुखको पाकर
जैसे घन्धनके भयसे स्नान जलविन्दुओंके बहाने रो रहे हैं ॥ ५५ ॥

गामङ्गणणिअडिअकङ्कचन्त घड तुज्ज दूरमणुलग्गो ।

तित्तिह्वएडिअकमोइओ वि गामो ण उन्विग्गो ॥ ५६ ॥

[प्रामाङ्गनिगदितकृष्णपक्ष षट तव दूरमनुलग्नः ।

दौः सन्धिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि प्रामो नोद्दिग्नः ॥]

हे षटवृक्ष, तुमने गाँवके भाँगनमें कृष्णपक्षका अन्धकार बाँव रखा है । तुमने दूर रहकर गाँवका रहनेवाला उद्दिग्न नहीं होता, यद्यपि भोगासक्त कामियोंकी द्वारपाल प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ५६ ॥

सुप्यं डड्डं चणआ ण भज्जिआ सो जुआ अइकन्तो ।

अत्ता वि घरे कुविआ भूआणं व चाइओ वंसो ॥ ५७ ॥

[शूर्पं दग्धं चणका न भृष्टा. स युवातिक्रान्तः ।

अश्रूरपि गृहे कुपिता भूतानामिव वादितो वशः ॥]

सूप भी जल गया, चना भी भुना नहीं, वह युवक भी चला गया, सास भी घरमें कुपित हो गई । किन्तु भुतिविकल भूतके सामने जैसे बाँसुरी बजाई गई अर्थात् उसकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हुई ॥ ५७ ॥

पिभुणन्ति कामिणीं जललुक्कपिआवऊहणसुहेहिं ।

कण्डइअकवोलुप्फुहणिअलच्छीइं वअणाइं ॥ ५८ ॥

[पिशुनयन्ति कामिनीनां जलनिर्लीनप्रियावगूहनमुखकेलिम् ।

कण्टकितकपोल्लेपुह्वनिश्चलाङ्गीणि वदन्तानि ॥]

कामिनियोंका कण्टकित कपोलविक्रिष्ट पृथं उपपुञ्ज निश्चल नेत्रसमन्वित वदनसमूह, जलमें निर्लीन प्रियतमोंके आलिङ्गनसे उपास सुलकी क्षीणा स्थित कर रहे हैं ॥ ५८ ॥

अद्विणवपाउसरसिपसु सोंइइ साआइपसु दिअहेसु ।

रहसपस्तारिअगीवाणं णच्चिअं मोखुन्दाणं ॥ ५९ ॥

[अमिनवमाधृद्रमितेषु शोभते स्वामापितेषु दिवसेषु ।

रभसप्रसारितप्रीवाणां मृत्यं मयूरावृन्दानाम् ॥]

घर्षके नये बादलोंके गर्जनसे समन्वित स्वामापमात्र दिवसोंमें आनन्दवत्ता उल्लसितप्रीय मयूरीका मृत्यु शोभा पा रहा है । (दिवमें ही सञ्चेतरयाण अभिसारयोग्य हो गया है ।) ॥ ५९ ॥

मद्विसथरन्धयिलगं घोलइ सिद्दादअं सिमिमिमन्तं ।

आइअवीणासंकारसइमुहलं मसअयुन्दं ॥ ६० ॥

[महिपरकंधविलग्नं घूर्णते शृङ्गाहतं सिमसिमायमानम् ।

आहतवीणाशंकारशब्दमुखरं मशकघृन्दम् ॥]

भैमोंके कन्धेपर लगे मशकघृन्द मोंगों द्वारा आहत होनेपर सिम्-सिम् शब्द करते-करते आहत वीणाके झङ्कारकी ध्वनिकी भाँति मुखर हो घूम रहे हैं ॥

रेदन्ति कुमुददलनिश्चलद्विधा मत्तमहुअरणिदाभा ।

ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि व्य तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

[रामन्ते कुमुददलनिश्चलस्थिता मत्तमधुकरनिकायाः ।

शशिकरनि-रोपप्रणाशितस्य ग्रन्थय इव तिमिरस्य ॥]

उदयके अनन्तर चन्द्रकिरणों द्वारा अशेष भावसे नाशित अन्धकारकी प्रथिसमूहकी भाँति प्रतीयमान मत्तमधुकरनिकर कुमुद-दलके ऊपर निश्चल भावसे बैठकर शोभा पा रहा है ॥ ६१ ॥

उअह् तदकोडराओ णिकन्तं पुंसुयारुणं रिञ्छोत्ति ।

सरिप जरिओ व्य दुमो पित्तं व्य सलोहियं वमर ॥ ६२ ॥

[परयत तदकोटरानिष्क्रान्तां पुंशुकानां पङ्क्तिम् ।

शरदि ज्वरित इव दुमः पित्तमिव सलोहितं वमति ॥]

देखो, वृक्षकोटरसे पुंशुकोंकी पंक्ति निकल रही है। जान पड़ता है कि शरतमें ज्वराक्रान्त वृक्ष रक्तमिश्रित पित्तकी उलटी कर रहा है ॥ ६२ ॥

धाराधुव्वन्तमुद्धा लम्बिअवमरा णिउञ्चिअग्गीवा ।

वइवेडनेसु काआ सुत्ताहिण्णा ध्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराधाव्यमानमुखा लम्बितवशा निकृञ्चितग्रीवाः ।

वृतिवेषनेषु काकाः शूलाभिन्ना इव दृश्यन्ते ॥]

खेतकी वृतिवेषन (मेढ़) के ऊपर बैठकर वृष्टि धारा द्वारा धोया हुआ मुख, लम्बे पङ्क्त पर्व फीले हुए प्रीववाले कौए शूल द्वारा सम्यक् विद जैमे प्रतीत होते हैं ॥ ६३ ॥

ण वि तह अणालवन्ती हिअअं दूमेइ माणिणी अहिअं ।

जह दूरविअग्गिअगरअरोसमज्जत्थमणिपरिहि ॥ ६४ ॥

[नापि तया नालपन्ती हृदयं दुभोति मानिन्वधिकम् ।

यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोपमप्यस्यभजितैः ॥]

मानिनीने बात न कर सुखे जितना कष्ट नहीं दिया है उसमे कहीं अधिक

कष्ट दिया है—बहुत दूरपर्यन्त गुरुकोपविशिष्ट उदासीन यत्न द्वारा ॥ ६४ ॥

गन्धं अग्रावन्तथ पक्ककलम्बाणं वाहभरिभच्छ ।

आससु पद्विअजुआणअ धरिणिमुहं मा ण पेच्छिहिसि ॥६५॥

[गन्धगाजिप्रन्वक्ककदम्बानां वाप्पभृताण् ।

आशसिहि पधिकयुवन् गृहिणीमुखं मा न पेच्छिप्पसे ॥]

हे युवा-पथिक, पके हुए कदरुशकी मुगन्ध सूँघकर तुम्हारे क्षेत्र वाष्पपूर्ण हो गए हैं । तुम भारवस्त होओ, गृहिणीका मुँह शीघ्र नहीं दिखेगा, पैसा नहीं है ॥ ६५ ॥

गज्ज महं चिअ उवरिं सव्वत्थामेण लोहहिअअस्स ।

जलहर लम्बालइअं मा रे मारेहिसि धराइं ॥ ६६ ॥

[गजं भमैवोपरि सर्वस्थान्ना लोहहृदयस्य ।

जलधर लम्बालकिकां मा रे मारिप्पसि वराकीम् ॥]

हे जलधर, अपनी सारी शक्ति बटोरकर तुम मेरे लोहे जैसे बटोर हृदय पर गारजो । किन्तु अरे मेघ, लम्बकेश-शोभिनी उस बेचारी कामिनीको मत मारना ॥ ६६ ॥

पङ्कमइलेण छीरेफकपाइणा दिग्गजाणुवड्ढणेण ।

आनन्दिज्जइ हल्लिओ पुत्तेण व सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन छीरैकपायिता दत्तजानुपतनेन ।

आनन्दतेहालिकः पुत्रेणैव शालिचेत्रेण ॥]

पङ्कमलिन, केवल दुग्धपानकारी एवं घुटनों द्वारा चलनेवाले पुत्रकी भौति पङ्कमलिन, केवल जलपायी एवं जानुस्थानीय (धाम्य) मृगालप्रन्धि धारण-शील शालि (धाम्य) चेत्रद्वारा दालिक आनन्दोपभोग कर रहा है ॥ ६७ ॥

फहं मे परिणइआले पलसङ्को होहिइ त्ति चिन्तन्तो ।

ओणअमुहो ससूओ रुयइ व साली तुसारेण ॥ ६७ ॥

[कर्षं मे परिणतिकार्त्तं ललसङ्गं भविष्यतीति चिन्तयन् ।

अवनतमुखः ससूको रोदितोव शालिसुपारेण ॥]

मेरे परिणति-कालमें अर्थात् पञ्चावस्थामें ललितान एवं हुए जन खेडका संग कैसे होगा—यह चिन्ताकर मुझ नीचेकर शूक सहित (धाम्य कटक एवं शोक) शालिधाम्य सुपारके बहाने जैसे रो रहा है ॥ ६८ ॥

संज्ञाराभोरथइओ दीसइ गअणम्मि पडियभाचन्दो ।
रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुप ॥ ६९ ॥
[संघारागावस्यगितो इश्यते गगने प्रतिपञ्चन्द्रः ।

रत्तदुकूलान्तरितः रतननसलेष्व इव नववध्वाः ॥]

रत्नवर्ण बरुद्वारा आभूत नववधूके रतनके ऊपरके नलचिह्नकी नाई
प्रतिपद्राका चन्द्र आकाशमें संघारागमें अस्तहित दिखायी पड़ रहा है ॥ ६९ ॥

अइ दिअर कि ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोपसि ।
जाआइ चाहुमूलम्मि अइअन्दाणं परिवाडि ॥ ७० ॥
[अयि देवर किं न प्रेक्षसे आकाशं किं मुधा प्रलोकयसि ।
जायाया चाहुमूजेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

हे देवर, आकाशकी ओर इयर्थ ही दृष्टिपात क्यों कर रहे हो ? जायाक
चाहुमूल प्रदेशमें (नलक्षलोत्पादित) अर्धचन्द्रोंको क्यों नहीं देखते ? ७० ॥

चाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व लिनखप सेद्वे ।
तुह विरहे जं दुक्खं तरस तुमं वेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥
[वाचया किं मण्यतां कियन्मात्रं वा लिखयते लेखे ।

तव विरहे यद्दुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

वाक्य द्वारा और क्या कहा जाय ? पत्रमें भी कितना लिखा जाय ? तुम्हारे
विरहमें कितना दुःख है, यह तुम भली प्रकार समझ पा रहे हो ॥ ७१ ॥

मअणग्गिणो व्व धूमं मोहणपिच्छि व लोअदिट्ठीप ।
जांअणधअं व मुत्ता घहइ सुअन्वं चिउरभारं ॥ ७२ ॥
[मदनमोशिव धूमं मोहनपिच्छिकांमिव लोकदृष्टेः ।

यौवनध्वजमिव मुग्धा वहति सुगन्ध चिकुरभारम् ॥]

मुग्धा रमणी मदनान्तिके धूँप की भाँति, लोगोंके नयनोंको मुग्ध करनेकी
प्रेम्भ्रजातिक पिच्छिकाकी भाँति यौवनकी ध्वजाकी भाँति, सुगन्धित देसोंका
भार वहन कर रही है ॥ ७२ ॥

रुअं सिट्ठं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।
चाहोस्तेण इमीप अजम्पमाणेण चि मुहेण ॥ ७३ ॥
[रूपं शिष्टमेव तस्मान्नेपपुर्ये निवर्तितायेण ।
वाग्पात्रेणास्या अजस्रतापि मुखेन ॥]

कष्ट दिया है—बहुत दूरपर्यन्त गुरुकोपविक्षिप्त उदासीन बचन द्वारा ॥ ६४ ॥

गन्धं अग्न्याअन्नमथ पक्ककलम्याणं वाहभरिभच्छ ।

आससु पद्भिअजुआणम घरिणिमुहं मा ण पेच्छिद्विसि ॥६५॥

[गन्धमाजिघ्रन्पक्ककदग्धानां याप्पभृताश्च ।

आश्रमिदि पधिकयुवन् गृहिणीमुखं मा न प्रेक्षिप्पसे ॥]

हे युवा-पथिक, पके हुए कदम्बकी सुगन्ध सूँघकर तुम्हारे नेत्र बाष्पपूर्ण हो गए हैं । तुम भागवस्त होओ, गृहिणीका मुँह शीघ्र नहीं दिखेगा, ऐसा नहीं है ॥ ६५ ॥

गज्ज महं चिअ उवरिं सव्वरथामेण लोहहिअअस्स ।

जलहर लम्यालइअं मा रे मारेद्विसि वराइं ॥ ६६ ॥

[गर्जं ममैवोपरि सर्वैथाम्ना लोहहृदयस्य ।

जलधर लम्बालङ्किवं मा रे मारविप्पसि वराकीम् ॥]

हे जलधर, अपनी सारी शक्ति धटोरकर तुम मेरे लोहे जैसे धटोर हृदय पर गरजो । किन्तु भरे मेघ, लम्बकेश-शोभिनी उस बेचारी कामिनीको मत मारना ॥ ६६ ॥

पङ्कमइलेण छीरेक्कपाइणा दिण्णजाणुवइणेण ।

आनन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण घ सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन क्षीरैकपायिना इक्षुजानुपतनेन ।

आनन्दघनेहालिकः पुत्रेणैव सालिच्छेत्त्रेण ॥]

पङ्कमलिन, केवल दुग्धपानकारी एवं घुटनों द्वारा चलनेवाले पुत्रकी भौंति पङ्कमलिन, केवल जलपायी एवं जानुस्थानीय (धान्य) मृगालप्रन्धि धारण-शील सालि (धान्य) क्षेत्रद्वारा हालिक आनन्दोपभोग कर रहा है ॥ ६७ ॥

कहँ मे परिणइआले पलसङ्को होद्विइत्ति चिन्तन्तो ।

ओणअमुदो समूओ खयइ घ साली तुसारेण ॥ ६७ ॥

[कथं मे परिणतिक्रान्ते पलसङ्को भविष्यतीति चिन्तयन् ।

अवनतमुखः सशूको रोदिनीव सालिस्तुवारेण ॥]

मेरे परिणति-कालमें अर्थात् पक्षावस्थामें खलिदान एवं हुए जन खेल्का संग कैसे होगा—यह चिन्ताकर मुख नीचेकर शूक सहित (धान्य कटक एवं शोका) सालिधान्य तुवारके बहाने जैसे रो रहा है ॥ ६८ ॥

संज्ञाराभोत्थइओ दीसइ गजणम्मि पडिपआचन्द्रो ।
रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुए ॥ ६९ ॥

[संप्यारागोत्थगितो दरयते गगने प्रतिपच्चन्द्रः ।

रत्तदुऊलन्तरितः स्तननक्षलेख इव नववध्वाः ॥]

रत्तवर्णं वक्षद्वारा आखुत नववधूके स्तनके ऊपरके नक्षत्रिहकी नाई प्रतिपदाका चन्द्र धाकाशमें संप्यारागमें अस्तहित दिखायी पड़ रहा है ॥ ६९ ॥

अइ दिअर कि ण पेच्छसि आआसं कि मुहा पलोपसि ।

जाआइ याहुमूलम्मि अद्धअन्दाणं परिवार्डि ॥ ७० ॥

[भवि देवर कि न भेषसे धाकाशं कि मुधा पलोकपति ।

जायाया याहुमूडेध्वचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

हे देवर, आकाशकी ओर स्वयं ही दृष्टिपात क्यों कर रहे हो ? जायाकें याहुमूल प्रदेशमें (नखलतोत्पादित) अर्धचन्द्रोंको क्यों नहीं देखते ? ७० ॥

याआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं च लिप्पखए लेहे ।

तुह विरहे जं दुप्पखं तस्स तुमं चेअ गहिअस्थो ॥ ७१ ॥

[वाचया किं भण्यतां किपन्मात्रं वा लिप्यते लेखे ।

तव विरहे यद्दुःखं तस्य स्वमेव गृहीतार्यः ॥]

वाक्य द्वारा और क्या कहा जाय ? पत्रमें भी कितना लिखा जाय ? तुम्हारे विरहमें कितना दुःख है, यह तुम भली प्रकार समझ पा रहे हो ॥ ७१ ॥

मज्जणग्गिणो व्व धूमं मोहणपिच्छि च लोअदिट्ठीए ।

जोव्वणयअं च मुद्धा चहइ सुअन्धं चिउरभारं ॥ ७२ ॥

[मदान्धेरिव धूमं मोहनपिच्छिकामिव लोकरष्टेः ।

यौवनध्वजमिव मुग्धा वहति मुग्धं चिकुरभारम् ॥]

मुग्धा रमगी मदान्तिके धूर्त की भौंति, लोगोंकें तयनोंको मुग्ध करनेकी पेन्द्रजातिके पिच्छिकाकी भौंति यौवनकी स्वजाकी भौंति, मुग्धभित केशोंका भार वहन कर रही है ॥ ७२ ॥

कथं सिट्ठं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।

चाहोच्छेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुह्णेण ॥ ७३ ॥

[रूपं सिष्टमेव तस्याशेषपुरुषे निवर्तिताशेण ।

आप्याश्रेणारया अजवत्तापि मुषेन ॥]

अन्य सभी पुरुषोंसे लौटा हुआ नेत्र, उसके रूपस्मृति वाष्पाङ्ग एवं कुण्डी भी न वर्णन करनेवाला उस नायिकाका मुखदा ही उस (नायक) के रूपको यथा देता है ॥ ७६ ॥

रन्दारविन्दमन्दिरमभरन्दानन्दिभालिरिञ्छोली ।

झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीप ॥ ७४ ॥

[वृहदरविन्दमन्दिरमकरन्दानन्दिताल्लिपक्तिः ।

झणझणायते कृष्णमणिमेखलेव मधुमासलक्ष्म्या ॥]

यद्ये-यद्ये पद्मरूपमन्दिरमें मधुपानसे आनन्दित अमरकुल, मधुमासलक्ष्मीकी कृष्णमणिरचित मेखला (कर्धनी) की नाहूँ क्षणक्षणा रहे हैं ॥ ७४ ॥

कस्स करो बहुपुण्यफलैकतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।

थणपरिणाहे मम्महणिह्वाणकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥

[कस्य करो बहुपुण्यफलैकतरोस्तव विभ्रमिप्यति ।

स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोह ॥]

बहुतसे पुण्यफलोंके एकमात्र वृक्षकी भाँति किस सुकृती पुरुषका हाथ, कामदेवके स्थापनकलशसरीखे तुम्हारे विशालस्तनद्वयके ऊपर नवपल्लवकी भाँति स्थान प्राप्त करेगा ? ॥ ७५ ॥

चोरा सभअसतहं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।

अहिरक्खिअणिहिकलसे व्व पोढवइआथणुच्छुक्के ॥ ७६ ॥

[चोराः समयसत्पुण्यं पुनः पुनः प्रेषयन्ति वृष्टीः ।

अहिरक्षितनिधिकलश इव प्रौढपतिकारतनोःसङ्गे ॥]

संपरक्षित स्थापन कलशकी भाँति, प्रौढपतिका कामिनीके स्तनोःसङ्गमें (धनापहरण करनेवाले चोरकी भाँति) चोरगण दर-दरकर छालसासहित धार-धार दृष्टिपात कर रहे हैं ॥ ७६ ॥

उव्यहइ णयणणुक्कुरोमअपसाद्धिआहँ अंगाहँ ।

पाउसलच्छीअ पओहरेहिँ परिपेह्तिओ विण्णो ॥ ७७ ॥

[उव्यहति मवदृणाङ्कुरोमाद्यप्रसाधिताग्ध्रानि ।

प्रावृह्लक्ष्म्या पयोधरैः परिप्रेरितो विग्ध्य ॥]

वर्षालक्ष्मीके पयोधर, मेघदर्शनसे उत्तेजित हो विग्ध्यपर्यन्तके मवदृणाङ्कुरके रूपमें रोमाञ्चद्राह प्रसाधित अङ्गोंको धारण कर रहे हैं ॥ ७७ ॥

आम बहला यनाली मुदला जलरङ्गुणो जलं सिसिरं ।
अण्णणईणं वि रेवाइ तद्व वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥

[सखं बहला यनाली मुदला जलरङ्गुणो जलं सिसिरम् ।
अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणाः केऽपि ॥]

यह सच है कि और नदियोंके पास भी तटविस्तृत घनोंकी पंक्ति है, शङ्ख-
मुखर जलरंजक पक्षीगण एवं सुशीतल जल विद्यमान है, तथापि रेवा (तमसा)
नदीका और भी कोई-कोई सा अतिरिक्त गुण भी है ॥ ७८ ॥

एह इमीअ णिअच्छइ परिणअमालूरसच्छहे थणए ।
तुङ्गे सप्पुरिसमणोरहे व्व हिअए अमाअन्ते ॥ ७९ ॥

[आगच्छतास्या निरीक्ष्यं परिणतमालूरसदृशौ स्तनौ ।
तुङ्गौ सखुरुषमनोरथाविव हृदये अमान्ती ॥]

आओ एवं सखुरुषोंके मनोरथकी मूर्ति इस रमणीके हृदयदेश (वक्षस्थल)
में अमान्त (विपुल अथवा मानके अनुपयोगी) तुङ्ग एवं पके हुए विम्बफल
जैसे रतनद्वयको निखो ॥ ७९ ॥

हृत्थाहृत्थिं अहमहमिआइ वासागममि मेहेहिं ।
अज्जो किं पि रहस्सं छण्णं पि णहङ्गणं गलइ ॥ ८० ॥

[हस्ताहस्ति अहमहमिकणा वर्षागमे मेवैः ।
आश्रयं किमपि रहस्यं छद्यमपि नमोद्गणं गलति ॥]

अहो आश्रयका विषय यही है कि वर्षागममें अहंकारवश हाथोहाथ मिले
हुए मेघ-घटाद्वारा आच्छन्न होनेपर भी आकाशरूपी आँगन गिरा पड़ रहा है ॥

केत्तिअमेत्तं होहिइ सोहयं पिअअमस्स अमिरस्स ।
महिलामअण्णुहाउल्लकडवखविअनेयघेप्पन्तं ॥ ८१ ॥

[क्रियन्मात्रं भविष्यति सौभाग्यं त्रियतमस्य भ्रमणशीलस्य ।
महिलाप्रदलक्षणाकुलकटाङ्गविनेऽप्युल्लक्षणम् ॥]

अन्यान्य नारीके लिए भ्रमणशील त्रियतमका सुभगवत् कितनी देर टिकेगी?
कारण, महिलाएँ केवल मदनक्षपासे आकुल कटाक्षपातद्वारा ही इसे वशमें
लाना चाहती हैं ॥ ८१ ॥

णिअअणिअं उवऊहसु कुफऊडसहेन इत्ति पडिवुद्ध ।
परवसइवाससट्ठिर णिअए वि घरम्मि, मा भासु ॥ ८२ ॥

[निजगृहिणीमुपगृहस्व कुक्कुटशब्देन झटिति प्रतिबुद्ध ।
परवसतिवासराङ्गिजिज्जकेऽपि गृहे मा भैयीः ॥]

कुक्कुटरव (मुर्गेकी बोली) से झट ही उठ पड़ो एवं अपनी गृहिणीका
आलिङ्गन करो । अरे ओ दूसरेके घर रहनेमें सङ्कोची, अपने घरमें देखो भय
न करना ॥ ८२ ॥

खरपवनरअगलत्थिअगिरिऊडावडणभिण्णदेहस्स ।
धुक्काधुक्कइ जीअं व विज्जुआ कालमेहस्स ॥ ८३ ॥
[खरपवनरयगलहस्तिअगिरिकूटापतनभिन्नदेहस्य ।
धुकधुकायते जीव इव विद्युत्कालमेघस्य ॥]

प्रचण्ड पवनद्वारा गलासे हाथद्वारा खिसकाये जाकर, गिरिकूट (गिरि-
शिखर) से गिरकर अत्यन्त घीण देह कालमेघजीव वा प्राणकी भाँति बिजुली
धुक धुक्कर कौंप रही है ॥ ८३ ॥

मेहमहिसस्स णज्जइ उअरे सुरचावकोडिभिण्णस्स ।
फन्दन्तस्स सविअणं अन्तं व पलम्यप विज्जु ॥ ८४ ॥
[मेघमहिपस्य ज्ञापते उदरे सुरचापकोटिभिन्नस्य ।
मन्दतः सधेदनमन्त्रमिध प्रलग्नते विद्युत् ॥]

प्रतीत होता है कि इन्द्रधनुषकी कोटिद्वारा उपाटित होकर वेदनावश
मन्दलक्ष्मणकारी मेघरूप महिपके उदरस्थित अस्त्रकी भाँति बिजुली लग्नमान
हो रही है ॥ ८४ ॥

णधपहृद्वं विसण्णा पद्दिआ पेच्छन्ति चूअरुपरस्स ।
फामस्स लोद्धिउप्पहराइअं हत्थमल्लं व ॥ ८५ ॥
[नधपहृद्वं विषण्णा पथिकाः परयन्ति चूअरुपरस्य ।
कामस्य लोहितसमूहराजित हस्तमल्लमिव ॥]

विरह विपादयुक्त पथिक भाग्नवृष्टके नूतनपण्डवही ओर रक्तेत्वाद्द्वारा
शोभित कामदेवका हस्तस्थित माला समस्तकर दृष्टिपात कर रहा है ॥ ८५ ॥

मदिल्लानं चिअ दोसो जेण पचासम्मि गव्यिआ पुरिस्ता ।
दोतिण्णि जाय ण मरन्ति ता ण विरहा समप्पन्ति ॥ ८६ ॥
[मदिल्लानामेव दोषो येन प्रवासे गर्विताः पुरुषाः ।
द्वे त्रिषो यावन्न प्रियन्ते तावन्न विरहाः समाप्यन्ते ॥]

पुरुष जो प्रथमके सम्यग्धर्म इतने गर्वका अनुभव करते हैं—यह महिलाओंका ही दोष है। जब तक महिलाओंमेंसे दो-तीन मर नहीं जायेंगी तब तक विरहकी समाप्ति नहीं होगी ॥ ८९ ॥

यालभ दे वय्य लहुं मरद् घराई अलं विलम्बेण ।
सा तुञ्ज दंसणेण वि जीत्रेज्जइ णत्थि संदेहो ॥ ८७ ॥
[बालक दे मात्र लघु धिपते घराकी अलं विलम्बेण ।
सा तथ दर्शनेनापि जीविष्यति नास्ति संदेहः ॥]

हे प्रमाणभिन्न बालक, दीप्र चलो, घराकी (दयनीया) रमणी मारी जा रही है, विलम्ब करने का प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे दर्शन पाकर वह घब जायगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ८७ ॥

तम्मिरपसरिअणुअवहजालालिपलीविष् घणाहोए ।
किंसुअवणन्ति फलिऊण मुद्धदरिणो ण णिफमइ ॥ ८८ ॥
[साप्रवर्णंप्रसृतद्रुतवहज्वालाप्रलिप्रदीपिते घनाभोगे ।
किंसुकवममिति कलदिवा सुग्धहरिणो न निष्क्रामति ॥]

साप्रवर्णं होकर विरगत अग्निशिवासमूह द्वारा प्रगलित घनप्रान्तरको भ्रमयान किंसुकानन समक्षकर सुग्ध हरिण निकल नहीं रहा है। विनाशके कारणको हो सुक्का हेतु समक्षकर सुग्धजन प्रेयसोको छोड़ नहीं सकते ॥ ८८ ॥

णिमुअणसिर्पं तद् सारिआइ उल्लाविअं म्हु गुरुपुरओ ।
जद् तं वेलं माए ण आणिमो कएथ वच्चाओ ॥ ८९ ॥
[निधुवनशिर्षं तथा शारिकपोकटपितमरमाकं गुरुपुरतः ।
वधा तां वेलां मातनं जानीमः कुय भजामः ॥]

हे माता, शारिकाने गुरुजनोंके समुच्च हम लोगोंके सुरतशिवपत्नी कहानी इस प्रकार कह दी थी कि उस समय मैं लजासे कहाँ दिख जाऊँ यह समझमें नहीं आया ॥ ८९ ॥

पद्यगाण्फुल्लदलुल्लसन्तमअरन्दपाणलेहलओ ।
तं णत्थि कुन्दकलिआइ जं ण भमरो मइइ फाउं ॥ ९० ॥
[प्रयप्रोक्नुद्धदलोहसम्मकरन्दपानलुग्धः ।

तन्नास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भमरो धान्द्विति कर्तुम् ॥]

नवप्रसुदिनदलविशिष्ट कुन्दवसुम उद्धमित मधुपानमें लोलुप हो मौरा कुन्दकलिकामे सम्बन्ध नहीं जोड़ सकया ऐसा काम नहीं है ॥ ९० ॥

सो को वि गुणाइसओ ण आणिमो मामि कुन्दलइआप ।
अच्छीहिं चिअ पाउं अहिलस्सइ जेग भमरेहिं ॥ ९१ ॥

[स कोऽपि गुणातिशयो न जानीमो मातुलानि कुन्दलतिकायाः ।
अक्षिभ्यामेव पातुमभिलष्यते येन भ्रमरैः ॥]

हे मामी, मैं नहीं जानती कि कुन्दलतिकाका यह गुणोत्कर्ष कितना है । कारण, भौरौने मुख द्वारा नहीं केवल नयनसे ही इसे पीनेकी अभिलाषाकी है ॥ ९१ ॥

एक चिअ रूअगुणं गामणिधूआ समुव्वहइ ।
अणिमिसणअणो सअलो जीए देवीकओ गामो ॥ ९२ ॥

[एकैव रूपगुणं ग्रामणीदुहिता समुद्दहति ।
अनिमिषनयनः सकलो यया देवीकृतो ग्रामः ॥]

ग्रामनायककी पुत्री अकेले ही इतना रूप एवं गुण धारण कर रही है कि सारे ग्रामवासी अपलक नयन विशिष्ट हो देवता बनकर खड़े हो गए हैं ॥ ९२ ॥

मण्णे आस्ताओ चिअ ण पाविओ पिअअमाहररसस्स ।
तिअसेहिं जेण रअणाअराहि अमअं समुद्धरिअं ॥ ९३ ॥

[मन्वे आस्ताद् एव न प्राप्सः प्रियतमाधररसस्य ।
त्रिदशैर्येन रसाकरादमृतं समुद्धृतम् ॥]

मुझे प्रसीत होता है कि देवताओंने प्रियतमाके अधररसका स्वाद नहीं पाया है, इसीसे उन्होंने समुद्रसे अमृत निकाला है ॥ ९३ ॥

आअण्णाअद्धिअणिसिअभल्लमम्मआइ हरिणीए ।
अहंसणो पिओ होहिइ त्ति यत्तिउं चिरं विट्ठो ॥ ९४ ॥

[आहर्णाहृष्टनिशितमल्लमर्माहतया हरिण्या ।
अदर्शनः प्रियो भविष्यतीति यत्तिवा चिरं इष्टः ॥]

स्वप्नके कान तक आहृष्ट शीघ्र भाले दूरा आहृत होकर भी हरिणी (प्रेमवन्त) 'मेरा प्रिय दर्शनके भगोचर होगा' ऐसा सोचकर कम्पेको देवाकर बहुत देरतक निहारने लगी ॥ ९४ ॥

यिसमट्टिअपिअकेकम्मअदंसणे तुज्झ सत्तुघरिणीए ।
को को ण पत्थिओ पट्ठिआअं डिम्भे यअग्गत्थिमि ॥ ९५ ॥

[विपमरिधतपकीकात्रदर्शने तव दानुगृहिण्या ।

कः को न प्रार्थितः पथिकानां दिग्मे रुद्रति ॥]

विपम शालाग्र पर रिधत केवल एक आन्नफळको देखकर शिशु पुत्रके रोने लगने पर, तुम्हारी शत्रु-गृहिणीने आम गिरानेके लिए किस किस पथिककी विनती नहीं की ॥ १५ ॥

मालारी ललिउल्लुलिअयाहुमूलोहिँ तरुणहिअआइँ ।

उल्लूरइ सज्जुल्लूरिआइँ कुसुमाइँ दावेन्ती ॥ १६ ॥

[मालाकारी ललितोल्ललितबाहुमूलाभ्यां तरुणहृदयानि ।

उल्लुनाति सद्योऽवल्लुनामि कुसुमानि दशंयन्ती ॥]

मालिनी वुरत तोडे गद् कुसुमको दिवाने जाकर भरने सुन्दर एवं विशाल स्तनद्वारा युवकोंके हृदयको व्याकुल कर रही है ॥ १६ ॥

मज्झो, पिओ, कुअण्डो, पह्लिजुआणा, सयत्तीओ ।

जह जह चह्वन्ति थणा तह तह छिज्जन्ति पञ्च घाहीण ॥ १७ ॥

[मध्यः प्रियः बृहस्पं पत्नीयुवानः सपत्न्यः ।

यथा यथा वर्धते स्तनौ तथा तथा वीचन्ते पञ्च व्याध्याः ॥]

व्याधपत्नीके दोनों स्तन जैसे-जैसे बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे पाँच पस्तुएँ चीण होती जा रही हैं—उसकी करि, उसका प्रियतम, उसका कुटुम्ब, गाँवके युवक एवं उसकी सपत्नियों ॥ १७ ॥

मालारीए चेह्लहलवाहुमूलावलोअणसअहो ।

अलिअँ पि भमइ कुसुमघपुच्छिरो पंसुलजुआणो ॥ १८ ॥

[मालाकार्याः सुन्दरबाहुमूलावलोअणसवृष्णः ।

अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्घप्ररनशीलः पांसुलयुवा ॥]

मालिकके सुन्दर स्तनयुगल देखनेकी छालसामें परखीलग्दत युवक झटमूट फूलोंका मूल्य पूछता हुआ घूम रहा है ॥ १८ ॥

अकअण्णुअ घणचण्णं घणपण्णन्तरिअतरणिअरणिअरं ।

जइ रे रे घाणीरं रेघाणीरं पि णो भरसि ॥ १९ ॥

[अकृतश्च घनवर्णं घनपर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।

यदि रे रे घानीरं रेवानीरमपि न स्मरति ॥]

रे रे अकृतश्च, जो बैतकुअ मेघ जैसे साँवले, रत्न एवं जहाँ सूर्यकिरण

घने पल्लवसमूहोंसे भाच्छादित हैं, उस बेंतकुञ्जको यदि स्मरण न भी कर सकी तो क्या तुम रेवा (बमंदा) नदीका जल भी स्मरण नहीं कर सकते ? १९९॥

मन्दं पि ण आणइ हल्लिअणन्दणो इह हि उह्वगामम्मि ।

गह्वइसुआ विवज्जइ अवेज्जप कस्स साहामो ॥ १०० ॥

[मन्दमपि न जानाति हलिकनन्दन इह हि दग्धग्रामे ।

गृहपतिसुता विपद्यतेऽवैशके कश्य कथयाम् ॥]

इस वैद्य शून्य जले गाँवमें गृहपतिकी नन्दिनी विकिरताके अभावमें विपाद-युक्त हो जायेगी—हलिकनन्दन (जामाता) यह तनिक सभी नहीं समझ रहा है—किससे यह घात फहूँ ॥ १०० ॥

रसिअज्जणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइगिम्मिइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं सट्ठं गाहासअं पअं ॥ १०१ ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवरसलप्रमुलसुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्त षष्ठ गाथाशतकमेतत् ॥]

रसिकजनोंके हृदयकी अतिप्रिय एवं कविवरसल प्रमुल सुकविगण द्वारा रचित मप्तशतीमें यह षष्ठ गाथाशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥



सप्तम शतक

एकामपपरिकल्पणपदारसंभुदे कुरङ्गमिदृशमि ।
 पाद्रेण मण्युविभ्रलन्तयाद्योभं अणुं मुर्का ॥ १ ॥
 [अण्योन्यपरिचयप्रहारसंभुदे कुरङ्गमिधुते ।
 अण्येन मण्युविल्लङ्घ्यपचीतं धनुर्मुक्तम् ॥]

मृग-मृगोको परस्पर रथाके निमित्त प्रहारके सम्मुख होते देखकर व्यापने
 बदगावना विगलित यावद्द्वारा पीत (निक) धनुषको छोड़ दिया ॥ १ ॥

सा सुदृश विलम्ब वर्णं भणामि कीञ्च वि फण अलमदृ वा ।
 भविआदिभरुज्जारम्भआदिणी मरुड ण भणिस्सं ॥ २ ॥
 [तामुमग विकल्पस्व वर्णं भणामि कस्या भवि ह्येनात्मथ वा ।
 भविचारितकार्पांरम्भआदिणी द्विपत्तां च भणिष्यामि ॥]

हे सुमग, जोड़ी देख लो, एक स्त्रीके व्यवधानमें तुमने कुछ कहना चाहती
 हैं, वा कहनेका क्या काम ? बिना विचारे कार्यको प्रारंभ करनेवाली वह मारी
 जाय तो मारी जाय, उसके लिए तुम्हें मैं कुछ नहीं कहूँगी ॥ २ ॥

भोइणिदिण्णवहेणअचक्रिसमदुमिसिस्सिओ हत्तिअउत्तो ।
 पत्तादे अण्णपद्देणमाणं छीओत्तुअं देई ॥ ३ ॥
 [भोगिनी अण्णपद्देणका स्वादनदुःसाधितो हलिक पुत्र' ।
 इदावीमन्य पद्देणकानो छी इति वपत्तं ददाति ॥]

प्रामोण अण्णपरीकी पत्नीद्वारा प्रेषित भोइकादि रूप पापनको शानेमें
 लान्ची हलिकपुत्र अन्य लोगोंके भोगपराशुओंकी 'छी छी' कर निन्दा कर
 रहा है ॥ ३ ॥

पञ्चूसमऊदाअलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणं ।
 कमत्ताणं रअणिविरमे जिअत्तोअसिरी महम्मदइ ॥ ४ ॥
 [अण्णमपूण्यपडिपरिमलणसमुण्णुमपवत्ताणाम् ।
 कमत्ताणं रअणिविरामे जिअत्तोअसीमहम्मदायने ॥]

रजनीके अवसानपर प्रातः किरनाबडिका संतपसी पाकर मरुटिन दृष्टो करने
 कमल-समूहोंकी शोकविजयिनी सोभा सौरभयुक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥

चाउब्बेह्लिअसाउलि थएसु फुडदन्तमण्डलं जहणं ।
 चडुआरअं पइं मा हु पुत्ति जणहासिअं कुणसु ॥ ५ ॥
 [चातोद्वेहितवस्त्रे स्थगय स्फुटदन्तमण्डलं जघनम् ।
 चटुकारकं पतिं मा खटु पुत्रि जनहार्यं कुम् ॥]

भरो वायुके द्वारा उद्वेलित वस्त्रोंवाली, स्फुट भाषसे लक्षित पतिके दन्त चिह्नयुक्त जंघोंको टैंक छो । हे पुत्रि, चाटुकार पतिको लोगोंके हार्यका विषय मत बनाओ ॥ ५ ॥

वीसत्थहसिअपरिसक्किआणं पढमं जलाअली दिण्णो ।
 पच्छा घहूअ गहिओ कुडम्बभारो णिमज्जन्तो ॥ ६ ॥
 [विसत्थहसिवपरिक्रमाणां प्रथमं जलाञ्जलिदंतः ।
 पश्चाद्दत्त्वा गृहीतः कुटुम्बभारो निमज्जन् ॥]

घभूने पहले तो मूक हास्यसे और फिर गमनागमनसे जलाञ्जलि दी है, बादमें हुगतिप्राप्त कुटुम्बियोंका भार ग्रहण किया है ॥ ६ ॥

गम्मिहिसि तस्स पासं सुन्दरि मा तुरअ घडूढउ मिअडूओ ।
 दुखे दुखं मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ मुहं दे ॥ ७ ॥
 [गमिष्यसि तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा खरस्य यथंतां मृगांसः ।
 दुग्धे दुग्धमिष चन्द्रिकायां कः प्रेषते मुपं ते ॥]

हे सुन्दरि, उसके पास जा सकोगी, इतनी क्षीप्रताका प्रयोजन नहीं है, चन्द्रमाको और अधिक बढ़ने दो । दूधमें दूधकी तरह, चन्द्रिकामें तुम्हारा मुलका देरनेमें क्या समर्थ होगा ? ॥ ७ ॥

जइ जूरइ जूरउ णाम मामि परलोअवसणिओ लोओ ।
 तद्द वि यत्ता गामणिणन्दणस्स घअणे यत्तइ दिट्ठी ॥ ८ ॥
 [यदि त्रिघते त्रिघतां नाम मानुलानि परलोकवसतिको लोकः ।
 तथापि घलाद्ग्रामणीनन्दनस्य यद्ने यत्ने दृष्टिः ॥]

हे मामी, परलोकमें भासनिवाले व्यक्ति त्रिघ हो तो हों, तथापि ग्राम-नायकके पुत्रके सुगती और मेरी दृष्टि यत्नपूर्वक पद रही है ॥ ८ ॥

गेहं घ यित्तरदिअं णिज्जरखुद्धरं घ नलिलसुण्णयिअं ।
 गोहणरदिअं गोट्ट घ तीअ घअणं तुह विभोए ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहितं निक्षरं कुहामिव सलिलशून्यम् ।
गोधनरहितं गोष्ठमिव तस्या घटनं तव वियोगे ॥]

गुहारे विरहमें उसका मुग्य वित्तरहित (निषेध) गृहकी भाँति सलिल-
शून्य निक्षरंगह्वरकी भाँति यथवा गोघनरहित गोष्ठ की भाँति प्रतीत हो
रहा है ॥ ९ ॥

तुह दंसणेण जणिओ इमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।
दुग्गाअमणोरहो विअ द्विअअ च्चिअअ जाइ परिणामं ॥ १० ॥
[तव दर्शनेन जनितोऽस्या लज्जासुकाया अनुरागः ।

दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]
गुहारे दर्शनमें उपपन्न अनुराग, दरिद्रके मनोरथकी भाँति उस लज्जाशीलके
हृदयमें ही समाप्त हो जाता है ॥ १० ॥

जं तणुआअइ सा तुह कएण किं जेण पुच्छसि हसन्तो ।
अह गिम्हे मह पअई पव्वं भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥
[या तनूयते सा तव वृत्तेन किं येन पृच्छसि हसन् ।
असी श्रीष्मे मम प्रकृतिरिति भणिष्यावहदिता ॥]

जो रमणी ही कृत हो जाती है, वह क्या तुम्हारे लिए बैसी होती है ?
उसी कारण क्या तुम मेरी कृपाता के बारे में हँसकर पूछ रहे हो ? 'श्रीष्मकाल
में कृत होना मेरी प्रकृति है' कहकर वह रोने लगी ॥ ११ ॥

घण्णकमरद्विअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।
णिमित्तं पि जं ण मुञ्चइ पिओ जणो गाढमुचऊढो ॥ १२ ॥
[घर्णप्रभारहितस्याप्येष गुणः श्वेलं चित्रकर्मणः ।
निमित्तमपि यन्न मुञ्चति त्रियो जलो गाढमुपगूढः ॥]

घर्ण (रङ्ग) विन्यासरहित केवल आलेख्य कर्मका यह गुण दिखायी
पड़ता है कि गाढभावसे आलिङ्गित निमित्तजन त्रियाकी घणभरके लिए भी
छोड़ते नहीं ॥ १२ ॥

अविहत्तसंधियन्धं पढमरसुन्धेअपाणसोहित्तो ।
उच्चेलिउं ण आणइ राणइइ कलिआमुद्धं भमरो ॥ १३ ॥
[अत्रिमजसंधियन्धं प्रथमरसोद्धेदपानलुन्धः ।
उद्धेक्षितुं न जानाति सण्डपति कलिदामुपं भमरः ॥]

पुष्पके प्रथमोद्भिन्न (प्रथम प्रकट) रस पीनेका लोलुप हो भ्रमर कलिका-
का मुख प्रस्फुटित करना नहीं जानता, अपितु इसके सन्धिबन्धनको विभक्त
किये बिना ही खण्डित कर देता है ॥ १३ ॥

दरवेविरोरुजुभलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिटुरासु ।
पुरिसाहरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वसइ ॥ १४ ॥

[ईपद्वैपनशीलोरुयुगलासु मुकुलितापीषु लुलितचिकुरासु ।

पुरुपायितशीलासु कामः प्रियासु सज्जायुधो वसति ॥]

विपरीत विहारमें जिन प्रियतमानोंके उरुयुगल ईपत् कम्पमान, नेत्र
युगल मुकुलित एवं केशपाश खुले हुए रहते हैं, पुरुषोचित शीला उन्हीं
कामिनियोंके लिए कामदेव अस्त्र सज्जित होकर घाम करते हैं ॥ १४ ॥

जं जं ते ण सुहाअइ तं तं ण करेमि जं ममाअत्तं ।
अहअं चिअ जं ण सुहामि सुहअ तं किं ममाअत्तं ॥ १५ ॥

[यद्यते न सुखायते तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।

अहमेव यत्त सुखाये सुभग तर्कि ममायत्तम् ॥]

जिन जिनसे तुम्हारा सुख उत्पन्न नहीं होता, यह-वह मैं नहीं करती,
कारण यह मेरे वशमें है । हे सुभग, मैं जो सुख अनुभव नहीं करती, यह भी
क्या मेरे वशमें है ॥ १५ ॥

वाधारविसंवाअं सअलावअघाणं कुणइ हअलज्जा ।
सअणाणं उणो गुरुसंणिहे वि ण णिरुज्झइ णिओअं ॥ १६ ॥

[व्यापारविसंवाद्दं सकलावययानां करोति हतलज्जा ।

धवणयोः पुनर्गुरुमंनिधायपि न निरुगद्भि नियोगम् ॥]

निर्लज्ज (दग्ध) लज्जा समी भयवयोंके व्यवहारमें बाधा पहुँचाती है ।
किन्तु यह लज्जा गुरुजनोंके समीप भी दोनों कानोंके व्यवहारका निरोध नहीं
कर पाती ॥ १६ ॥

किं भणइ मं सहीओ मा मर दीसिइइ सो जिअन्तीप ।
कज्जालाओ प्पमो मिणेइमग्गो उण ण होइ ॥ १७ ॥

[किं भणथ मां समयो मा प्रियस्य द्रव्यते त जीवन्त्या ।

कार्यालाप एव श्रेयमार्गः पुनर्न भवति ॥]

अभी सन्वियो, तुम मुझसे क्या कह रही हो ? 'मरो मत, जीवित रहनेपर

उसे देख पाओगी—कार्यपर्यालोचनामें तो यह करने योग्य है, किन्तु यह प्रेम-पथ नहीं है ॥ १० ॥

पफल्लमओ द्विष्टीअ मइअ तह पुलइओ सअढ्वाप ।
 पिअजाअस्स जइ धणुं पट्ठिअं चाइस्स इत्थाओ ॥ १८ ॥
 [पकाकी मृगो इष्टया मृगया तथा प्रलोकितः सगृण्णया ।
 प्रियजायस्य यया धनुः पतितं व्याघ्रस्य हरतात् ॥]

व्याघ्रका धाग अपने प्रति उद्यत वैश्वर मृगीने इस प्रकार सगृण्णा नेत्रसे पकाकी मृगकी ओर देखा कि अपनी पत्नीमें अनुरक्त चित्रवाले व्याघ्रके हाथसे धनुष टूट पड़ा ॥ १८ ॥

णलिणीसु भमसि परिमलसि सत्तलं मालइं वि णो मुवसि ।
 तरलत्तणं तुइ अहो महुअर जइ पाडला इरइ ॥ १९ ॥
 [नलिनीषु भ्रमसि परिभृद्भासि सत्तलं मालतीमपि नो मुवसि ।
 तरलावं तवाहो मधुकर यदि पाटला हरति ॥]

हे भ्रमर, तूम नलिनियोंके निकट उड़ते-फिरते हो । नवमालिकाका मर्दन भी करते हो और मालतीको भी छेदते नहीं, अब पाटल पुष्प यदि तुम्हारी यह चित्तचञ्चलता हरणकर सकती ॥ १९ ॥

दो अङ्गुलमयत्वालअपिणइसचिसेसणीलकज्जुरआ ।
 द्वायेइ थणत्थलवण्णिअं य तरुणी जुअज्जणणं ॥ २० ॥
 [द्वयङ्गुलककषपाटपिनद्रमविशेषनीलकण्डविका ।
 दर्शयति स्तनरघलवर्णिकामिव तरुणी युवतनेभ्य]

दो अँगुली परिमित अजकाशयुक्त, विशेषतः नीले रंगकी कण्डविका पहनकर तरुणी मानो युवकोंको स्तनरघलसंबंधमें आदर्श पदर्शित कर रही है ॥

रमखेइ पुत्तअं मत्थपण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।
 अंसुहिं पडिअघरिणी ओह्ज्जन्तं ण लम्भेइ ॥ २१ ॥
 [रपति पुत्रकं मस्तकेन पटलप्रान्तोदकं प्रतीच्छन्ती ।
 अशुभि पधिकृष्टिणी आर्दीभवन्त न लभयति ॥]

अपने हृत्तमे गिरनेवाले जलको अपने मस्तकपर सहनकर पधिकृकी मृष्टिणी पुत्रकी रक्षा कर रही है, किन्तु वह जो अपने अमुषारसे उसे सींचे देखती है इस ओर उसने लक्ष्य नहीं किया ॥ २१ ॥

सरप सरम्मि पद्विआ जलाइँ कन्दीट्टसुरहिगन्वाइँ ।
 घवलच्छाईँ सअण्हा पिअन्ति दइमाणँ व मुहाइँ ॥ २२ ॥
 [नादि सरसि पयिका जञ्जानि नीलोत्पलसुरमिगन्धिनि ।
 धवलाण्णानि सनृण्णा पिअन्ति दयितानामिव सुप्पानि ॥]

हरममें पयिक सरोवरमें नीलकमलके सुरभिगन्धविशिष्ट धवल एवं स्वच्छ जलको प्रियतमार्थके (धवलाण) मुखदे जैसा समझकर सनृण्ण होकर पान कर रहा है । सरोवरका तीर सञ्चेतस्थान नहीं होसकती ॥ २२ ॥

अभन्तरसरसाओ उचरिं पव्वाअण्णपङ्काओ ।
 चङ्खम्मन्तम्मि जणे समुत्ससन्ति वर रच्छाओ ॥ २३ ॥

[अभ्यन्तरसरसा उपरि प्रवातवदपञ्जा ।

चङ्खममाणे जने समुत्समन्तीव रस्या ॥]

लोग आते जाते रहते हैं । इस कारण अभ्यन्तरमें रस (जल) युक्त एवं बाहर वायुके प्रभावसे थढ़ पङ्कमार्ग जैसे साँस ले रहे हैं (स्वयत् रुच होनेपर भी नायिका भीतरसे अनुरागिणी है) ॥ २३ ॥

मुहपुण्डरीअलाआइ संठिआ उअह राअहंसे वर ।
 छणपिट्टुकुट्टणुच्छलिअधूलिधवल्ले थणे वहइ ॥ २४ ॥

[मुखपुण्डरीकच्छायाया सस्थितौ परयत् राजहसाविव ।

छणपिट्टुकुट्टनोच्छलितधूलिधवल्लौ स्तनौ वहति ॥]

देखो, रमणी अपने मुखपद्मकी छायामें सस्थित राजहसाविवकी भाँति, वासवदिनके पूषकी ढेरसे उझाले हुए धूलिद्वारा घवलित स्तनद्वय वहन कर रही है ॥ २४ ॥

तह तेणचि सा दिट्ठा तीअ चि तह तरस्स पेसिआ दिट्ठी ।
 जह दोण्ह चि समअ चिअ णिणुत्तर आइँ जाआइँ ॥ २५ ॥

[तथा तेनापि सा इष्टा तथापि तथा तस्मै प्रेषिता दृष्टि ।

यथा द्रावपि सममेव विभुत्तरतौ जाती ॥]

वह रमणी उसके द्वारा उसी प्रकार देखी गई, एवं उस युवकके प्रति उस रमणीने भी उसी प्रकार इष्टिपात किया जिससे एक ही साथ दोनोंका रतिसुख मिला ॥ २५ ॥

वाउलिआपरिसोसण कुडङ्गपत्तलणमुत्तहत्तंकेअ ।

सोहग्गकणअकसवट्ट गिम्ह मा कह चि झिञ्जिहिसि ॥ २६ ॥

[स्वल्पगतिरुपरिशोषणं निवृत्तप्रकरणं सुलभसंकेतः ।

सौभाग्यकनककवचं प्रीणं मा कथमपि चीणो भविष्यति ॥]

हे प्रीण, तुम छोटी चादिकाको सुमानेवाले हो, निवृत्तप्रकरणके पत्तोंके उपादक हो, तुम्हारी उपस्थितिमें लक्ष्मणतथा सुलभ होता है एवं तुम सौभाग्यसुवर्णकी वसौटी मरहस हो, तुम कभी चीण मत होना ॥ २१ ॥

दुस्सिक्किप्रवरअणपरिक्कण्यद्विं घिट्ठोसि पत्थरे ताया ।

जा तिलमेत्तं चट्टसि मरगाअ का तुज्ज मुत्तकहा ॥ २७ ॥

[दुःसिक्किप्रवरपरीचरैर्घृष्टोऽसि प्रथरे तावत् ।

यावत्तिलमात्रं घटते मरकत का तव मूक्यकया ॥]

हे मरकत, अतःपुत्र रत्नपरीचर तुमको तबतक पर्यपर घिसेंगे, जबतक तुम तिलभरमें पर्यवसित होओगे । - अपने मूक्य निर्धारणकी बात तो दूर ही रही ॥ २७ ॥

जह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कइ जह अ तस्स पड्विअणो ।

घालेण वि गामणिणन्दणेण तह रक्किअा पट्ठी ॥ २८ ॥

[यथा विन्तयति परिजन आसङ्कते यथा घ तस्य प्रतिपद्यः ।

- घालेनापि ग्रामणीमन्दनेन तथा रचिता पत्त्रां ॥]

उसके परिजन किसप्रकार, चिन्तागुर हुए थे एवं हमके शत्रुओंने जिस प्रकारकी आसङ्क प्रकट की थी—ग्रामनायकका पुत्र बाटक होनेपर भी गाँवकी वसीमकार रक्षाकरनेमें समर्थ हुआ था ॥ २८ ॥

अण्येसु पड्विअ ! पुच्छसु वाहअपुत्तेसु पुत्तिअचम्मार्त्तं ।

अम्हं वाहअुआणो हरिणेषु घणुं ण गामेइ ॥ २९ ॥

[अन्येषु पथिक पृथग् व्याधकपुत्रेषु पृथक्चर्माणि ।

अस्माकं व्याधयुवा हरिणेषु धनुर्न नामयति ॥]

हे पथिक, तुम अन्यत्र व्याधकपुत्रोंके यहाँ पृथक् नामक विप्रसृगविक्रमके चर्मके सम्बन्धमें रहो । हमारे व्याधयुवा हरिणोंके उपर धनुष नहीं होने ॥

गअवहुवेहव्वअरो पुत्तो मे एक्ककण्डविणिअार्त्तं ।

तइ सोण्हाइ पुलइओ जइ कण्डकरण्डअं चइइ ॥ ३० ॥

[गजवधुर्वैधमरुतः पुत्रो मे एककण्डविनिपाती ।

तथा स्तुपया प्रलोकितो यथा कण्डकमूर्धं वहति ॥]

मेरा पुत्र पहले केवल एक धान खलाकर राजवधुओंकी विधवाकर सकता था, किन्तु पुत्रवधू (पत्नीहू) द्वारा इसप्रकार देना जाता है कि अब वह धानोंको केवल होता है ॥ ३० ॥

- विद्मशासदणालाघं पत्नी मा कुणउ गामणी ससइ ।
पच्चज्जिविओ जइ फह पि सुणइ ता जीविअं मुअइ ॥ ३१ ॥
[विन्ध्यारोहणालाघं पत्नी मा करोतु ग्रामणीः भ्रसिति ।
प्रभुजीवितो यदि कथमपि शृणोति तज्जीवितं मुच्यति ॥]

ग्रामवासी कहीं शेरभयसे विन्ध्यपर्वतपर पलापनके लिए चढ़नेका राग न भलापें, ग्रामनायक अभी भी जीवित है, यदि प्राण छीट भानेपर वह किसी प्रकार मुन ले तो प्राणत्यागकर देगा ॥ ३१ ॥

अप्पाहेइ मरन्तो पुत्तं पत्नीयई पअत्तेण ।
मह णामेण जह तुमं ण लज्जसे तह फरेज्जासु ॥ ३२ ॥
[शिष्यवति त्रियमाणः पुत्रं पत्नीवतिः प्रयत्नेन ।
मम नाम्ना यथा त्वं न लज्जते तथा करिष्यसि ॥]

मरता मृतमाय गौवका सुखिया धनपूर्वक पुत्रको यह उपदेश दे रहा है—इस प्रकार काम करना कि मेरा नाम छेनेपर कोई तुम्हें लजित न करे ॥

अणुमरणपरिधिभाप पञ्चागभजीविप पिअअमम्मि ।
वेह्वमण्डणं कुलवह्वअ सोहग्गअं जाअं ॥ ३३ ॥
[अनुमरणपरिधतायाः प्रत्यागतभीविते प्रियतमे ।
वैधव्यमण्डनं कुलवध्वाः सौभाग्यकं जातम् ॥]

प्रियतमके प्राण छीट भानेपर अनुमरणमें धरस्त कुलवधुका वैधव्यशृङ्गार सौभाग्यशृङ्गारमें परिणत हो गया ॥ ३३ ॥

महुमच्छिआइ दट्टं दट्टण मुहं पिअस्स सृणोहं ।
ईसालुई पुलिन्दी रुक्खच्छाअं गआ अणमं ॥ ३४ ॥
[मधुमच्छिकाया दष्ट इष्टा मुखं प्रियस्योच्छृणोषम् ।
ईर्ष्यालुः पुलिन्दी वृषच्छायां गतान्याम्] .

मधुमच्छिका द्वारा दंशित प्रियतमके फूले हुए श्रोतसे युक्त मुखको देखकर ईर्ष्यापरायण उरकल निवासी पर्वतीय पुलिन्दपत्नी दूसरे वृषकी छायामें चली गयी ॥ ३४ ॥

धषणा वसन्ति णीसङ्गमोहणे वहलपत्तलवर्म्मि ।
 चाअन्दोलणभोणविअवेणुगहणे गिरिग्गामे ॥ ३५ ॥
 [धन्या वसन्ति नि शङ्गमोहने वहलपत्तलवृत्ती ।
 चातान्दोलनावभामितवेणुगहने गिरिग्रामे ॥]

जिस ग्राममें धृषकी वहलपत्तराजिद्वारा आवेष्टित स्थान है, जो वायुके झोंकेमें भवनमित वेणुवन द्वारा गहन है एवं जहाँ नि शङ्गरूपसे सुरतसुख अनुभूत हो सकता है—ऐसे गिरिग्राममें धन्यपुरुष ही निवास करते हैं ॥ ३५ ॥

पत्तुल्लघणकलम्या णिओअसिलाअला मुइअमोरा ।
 पसरन्तोउअरमुहला ओसाहन्ते गिरिग्गामा ॥ ३६ ॥
 [प्रोत्तुल्लघनकदम्या निर्भीत झिलातला मुदितप्रयूराः ।
 प्रसरन्तिशंसुवरा उसाहपन्ति गिरिग्रामा ॥]

जहाँपर घनसंविष्ट कदम्बवृक्ष पुष्पविकाससे उत्कृष्ट, शिलातलसमूह-जलद्वारा घौत, मयूरकुलआनन्दित एवं जो सारते हुए निशंसमूहसे सुपरित है—वे गिरिग्राम ही मनुष्यको प्रोत्साहित करते हैं ॥ ३६ ॥

तह परिमलिआ गोवेण तेण हत्थं पि जाण ओल्लेइ ।
 स अिअ धेणू पळिं पेच्छसु कुडदोहिणी जाआ ॥ ३७ ॥
 [तथा परिमलिता गोवेन तेन हस्तमपि या नार्द्रपति ।
 सैव धेनुरिदानीं मेचथ्व कुटदोहिणी जाता ॥]

देखो, जो धेनु पहले उस गोपद्वारा उस प्रकार दुहे जाकर भी उसके हाथको भी गौला नहीं कर पाती थी, वही घदा मरकर दूध दे रही है ॥ ३७ ॥

धवलो जिअइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।
 जिअ तम्पे अम्ह वि जीविण गोठुं तुमाअत्तं ॥ ३८ ॥
 [धवलो जीवति तव कृते धवलस्म कृते जीवन्ति गृष्टव ।
 जीव हे गौ. अस्माकमपि जीवितेन गोठं रपदायत्तम् ॥]

हे धेनु, तुम्हारे ही सुखके लिए गोरा बैल प्राणधारण करता है एवं पृथ्वार प्रसूता धेनुएँ भी उनके सुखके लिए जीवित हैं । तुम बची रहो, अपने जीवनद्वारा तुमने हमलोगोंके गोष्ठको अपने आधीन कर रखा है ॥ ३८ ॥

अग्गाइ छिवइ चुम्यइ ठेवइ द्विअअम्मि जणिअरोमञ्जो ।
 जाआकयोलसरिसं पेच्छह पद्धिओ महुअपुण्णं ॥ ३९ ॥

[भ्रात्रिप्रति स्पृशति चुम्बति स्थापयति हृदये जनितरोमाञ्चः ।
जायाकपोलसदृश परयत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

देखो, पथिक जायाके कपोलसदृश मधूकपुष्पको पाकर कमी इसे सूँघ रहा है, छुरहा है, कमी इसे चूम रहा है, एवं कभी रोमाञ्चित शरीरमें इसे धुपने वञ्च-स्थलपर धारण कर रहा है ॥ ३९ ॥

उथ ओल्लिज्जइ मोहं भुभंगकित्तीअ कडअलग्गाइ ।
ओज्झरधारासद्दालुपण सीसं घणगपण ॥ ४० ॥
[परयादींक्रियते मोघ भुजङ्गकृतौ कटकलगायाम् ।
निर्झरधाराश्रद्दालुकेन शीर्षं वनगजेन ॥]

देखो, जंगली हाथी गिरिकटकमें लज्ज संपंस्वचाको निर्झरकी धारा समझकर उसमें अपने मस्तकको आर्द्र करनेकी चेष्टा कर रहा है ॥ ४० ॥

कमलं मुअन्त महुअर पिक्ककइत्थायणं गन्धलोहेण ।

आलेन्धलड्डुअं पामरो ध्व छिविअण जाणिहिसि ॥ ४१ ॥

[कमल मुञ्चन्मधुकर पक्कपित्थाना गन्धलोभेन ।

आलेवहयलड्डुक पामर इय स्पृष्ट्वा ज्ञास्यति ॥]

हे मधुकर, कमलको छोड़कर पके हुए कपित्थफल (कैथ) की गन्धसे इसे छूकर ही पामर चित्राङ्कित लड्डू स्पर्शकी भाँति इसे तुम समझ सकोगे ॥

गिञ्जन्ते मङ्गलगाइआहिं चरगोसदिण्णअण्णाए ।

सोउं च णिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ४२ ॥

[गीयमाने मङ्गलगायिकाभिर्वरगोप्रदत्तकर्णियाः ।

ओमुमिव निर्गतः परयत भविष्यद्भ्रूकाया रोमाञ्च ॥]

देखो, मङ्गलगायिकाओंके गान गाते रहनेपर, चरके नामोछेखपर ध्यान देनेवाली भावी बधूका रोमाञ्च भी जैसे नामध्वनके लिए निर्गम होरहा है ॥

मण्णे आअण्णान्ता आसण्णविआहमङ्गलुग्गाइइं ।

तेहिं जुआणेहिं समं हसन्ति मं वेअसकुडक्का ॥ ४३ ॥

[मन्थे भाकर्णयन्त आसत्तत्रिवाहमङ्गलोद्गीतम् ।

तैर्युवभि समं हसन्ति मां वेतसनिकुञ्जा ॥]

जान पड़ता है कि उन युवकगणके साथ ही साथ बँत निकुञ्ज समूह भी मेरे आसन्न विहारके मङ्गलगीतको सुनकर मेरा उपहास कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

उभगभचउत्थिमङ्गलद्वेन्तविओभसविसेसलग्गेहिं ।
तीअ वरस्स अ सेअंसुपहिं^१ रुणं च हत्थेहिं ॥ ४४ ॥

[उपगतचतुर्थमङ्गलमविष्यद्वियोगसविशेषलक्ष्म्याम् ।
तस्या वरस्य च स्वेदाश्रुभी रुदितमिव हरताभ्याम् ॥]

उपस्थित चतुर्थी मङ्गलकं दिन भावीवियोगके भयसे विशेषरूपसे सञ्छिष्ट
वरवधूके दोनों हाथ जैसे पसीनेरूपी आँसू बहाकर रोरहे हैं ॥ ४४ ॥

ण अ दिट्ठिं णेइ मुहं ण अ छिविअं देइ णालवइ कि पि ।
तह वि हु कि पि रहस्सं णयचहुसङ्गो पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च इष्टिं नयति मुखं न च स्प्रष्टुं ददाति नालपति किमपि ।
तथापि खलु किमपि रहस्यं नववधूसङ्गं मियो भवति ॥]

नवोदा स्वामीके मुखकी ओर इष्टि नहीं डालती । अपनेको छूने भी नहीं
देती और कुछ बोलती भी नहीं उष भी नवोदा जो लोभोंकी प्याही लगती है,
इसका अपूर्व रहस्य है ॥ ४५ ॥

अलिअपसुत्तचलन्तम्मि णववरे णववहुअ वेयन्तो ।
संवेत्तिओरुसंजमिअत्थमण्ठि गओ हत्थो ॥ ४६ ॥

[अलीकप्रसुप्तवल्माने^१ नववरे नववध्वा वेपमान ।
संवेष्टितोरुसयमित्तवत्प्रस्थि गतो हस्त ॥]

नये वरके झटमूठ सोकर करवट बदलने पर नवोदाका हाथ कौपते-कौपते
अन्वोऽन्य सरलेपित वरयुगलद्वारा नियमित वस्त्रग्रन्थिकी ओर बढ़ जाता है ॥

पुच्छिज्जन्ती ण भणइ गहिआ पप्पुरइ खुम्बिआ रुअइ ।
तुण्हिका णयवहुआ कआचराहेण उवऊढा ॥ ४७ ॥

[पृच्छयमाना न भणति गृहीता प्रश्नुरति खुम्बिता रोदिति ।
शुष्णिका नववधू कृतापराधेनोपगूढा ॥]

कृतापराध नये वरद्वारा आलिङ्गित हो कर निर्वाक नवोदा पछी जानेपर
जवाब नहीं देती, हाथद्वारा पकड़ी जानेपर रोती वा ऊपर नीचे फरती रहती है
एव चूमी जानेपर रोती है ॥ ४७ ॥

तत्तो चिअ होन्ति कदा विअसन्ति तद्धिं तद्धिं समप्पत्ति ।
किं मण्णे माउच्छअ एकजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[तत एव भवन्ति कथा विकसन्ति तत्र तत्र समाप्यन्ते ।

किं मन्ये मातृपुत्रः एक युवक्रीडयं ग्रामः ॥]

हे मौसी, उस विपयको लेकर ही पात आरम्भ होती है, बदनी रहती है एवं उसीमें धान समाप्त हो जाती है, मुझे लगता है जैसे कि इस गाँवमें एक ही युवक वर्तमान है ॥ ४८ ॥

जाणि वचनाणि अग्ने वि जम्पिओ ताईं जम्पइ जणो वि ।

ताईं चिअ तेण पजम्पिआईं द्विअअं सुहावेन्ति ॥ ४९ ॥

[यानि वचनानि वयमपि जहामस्तानि जह्यति जनुंसिपि ।

तान्येव तेन प्रजक्षितानि हृदयं सुखयन्ति ॥]

जो बातें हम लोग बोलते हैं, अन्य लोग भी-उसे ही बोलते हैं, किन्तु वे ही बातें प्रियतम द्वारा बोली जानेपर मेरे हृदयमें सुख उत्पन्न करती हैं ॥ ४९ ॥

सध्याअरेण मग्गइ पिअं जणं जइ सुहेण वो कज्जं ।

जं जस्स द्विअअदइअं तं ण सुहं जं तहिं णत्थि ॥ ५० ॥

[सर्वादरेण मृगयध्वं प्रियं जनं यदि सुखेन वः कार्यम् ।

यद्यस्य हृदयदयितं तत्र सुख यत्तत्र नास्ति ॥]

तुम लोगों को यदि सुखसे प्रयोजन हो तो प्रियतमको खोज लो । कारण, ऐसा ही नहीं सकता कि कोई ऐसा सुख हो जो व्यक्तिके प्रिय व्यक्तिके न हो ॥ ५० ॥

दीसन्तो दिट्ठिसुओ चिन्तिज्जन्तो मणवह्लदो अत्ता ।

उल्लावन्तो सुइसुहो पिओ जणो णिच्चरमणिज्जो ॥ ५१ ॥

[हरयमानो दृष्टिसुखशिवमयमानो मनोबल्लभः श्रु ।

उल्लाप्यमानः श्रुतिसुख-प्रिय जनो नित्यरमणीयः ॥]

अरी सास, देखनेपर दृष्टिसुखकर, चिन्तित होनेपर मनमोहक एवं कथाप्रसन्न में उद्विग्नित होनेपर श्रुतिसुख—इस प्रकार प्रियजन हमेशाही रमणीय रहते हैं ॥ ५१ ॥

ठाणग्गह्ठा परिगलिअपीणआ उण्णईअ परिचत्ता ।

अग्हे उण ठेरपओहर एव उअरे चिअ णिसण्णा ॥ ५२ ॥

[स्थानभ्रष्टाः परिगलितपीनरवा उल्लया परिव्यक्ताः ।

धयं पुनः स्थाविरापयोधरा इवोदर एव निपण्णाः ॥]

हमलोग तो, लेकिन, स्थानच्युत, धीनत्वविहीन एवं उद्यमिसे यज्ञित
पृदाके स्तनकी भाँति हेरल उदरपोषण के लिए यत्नशील हैं ॥ ५२ ॥

पच्युसागअ रञ्जिअदेह पिआलोअ लोअणणन्द ।

अण्णत्त राधिअसधरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[मधुपागत रक्तदेह त्रिपालोक लोचनामन्द ।

अन्वय अचित्तधरणीक नमोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

हे सूर्य, तुम्हें नमस्कार करती हूँ—तुम प्रातःकाल आते हो, तुम्हारा
शरीर रक्षित है, तुम्हारा प्रकाश प्रिय लगता है, तुम आनन्दविधायक हो,
तुमने दूसरे देशमें रात बिताया है एवं तुम आकाश मण्डलके भूषण हो ॥ ५३ ॥

विपरीतसुरवल्लहल पुच्छसि मद्द फीस गम्भसंभूदं ।

ओअत्ते कुम्भमुद्धे जललवकणिभा वि ङिं ठाइ ॥ ५४ ॥

[विपरीतसुरवल्लभट्ट पृच्छसि मम किमिति तमंसंभूमिम् ।

अपवृत्ते कुम्भमुत्ते जललवकणिभावि ङिं तिष्ठति ॥]

हे विपरीत-सुरत-लुब्ध, मेरी गर्भके विषयमें क्यों पृच्छते हो ? नीचे की
ओर मुख अवनत होने पर भी क्या कुआँमें जलविन्दु-कण भी टिक
सकता है ? ॥ ५४ ॥

अच्छासण्णविवाहे समं असोआइं तरुणगोपीहिं ।

वहन्ते महुमहणे संबन्धा णिण्हुविज्जन्ति ॥ ५५ ॥

[अयाससविवाहे समं यशोदाया तरुणगोपीभिः ।

वर्धमाने मधुमयने संबन्धा निहूयन्ते ॥]

मधुसूदनकी पप श्रुति पर, जब उनका विवाह समय एकदम निकट आ
गया, तब तरुण गोपियोंने यशोदासे अपना-उनका सम्बन्ध क्षिप्त किया ॥ ५५ ॥

जं जं आलिहूद मणो आसावट्टीहिं द्विअअफलअम्मि ।

तं तं बाली व्य विही णिहूअं हसिऊण पम्हुमइ ॥ ५६ ॥

[यद्यदाहितत्रि मन आशावर्तिआमिहंदयफलके

तत्तद्राल इव विधिनिमृत्तं हसिरा मोन्द्यति ॥]

मन आशाके रूप वृत्तिकासे हृदयरूप फलकपर जो-जो चित्र अंकित कर
रहा है, वहाँ की भाँति विधि-सङ्गोपनसे वे सारे चित्र पोंछने आ रहे हैं ॥ ५६ ॥

अणुमुत्तो करफंसो सवलभलापुण्ण पुण्णदिअहम्मि ।
घीआसङ्गकिसङ्गय एहिं तुह वन्दिमो चलणे ॥ ५७ ॥

[अनुभूतः करस्पर्शः सकलकलापूर्णं पूर्णदिवसे ।

द्वितीयासन्नवृक्षाद् इदानीं तव वन्दामहे चरणौ ॥]

हे सकलकलापूर्णं, पूर्णिमाके दिन तुम्हारे करका संस्पर्श अनुभूत हुआ है । भरे चन्द्र, द्वितीया (तिथि एवं रमणी) के संयोगसे तुम अत्यन्त कृपा हो गए हो—तुम्हारे चरणों की वन्दना कर रही हूँ ॥ ५७ ॥

दूरन्तरिपि वि पिप्प कइ वि गिअत्ताईं मज्झ णअणाईं ।

दिअअं उण तेण समं अज्ज वि अणियारिअं भमइ ॥ ५८ ॥

[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि निवर्तिते मम नयने ।

हृदयं पुनस्तेन सममद्याप्यनिवारितं भ्रमति ॥]

प्रियतमके दूरदेश चले जानेपर मैंने किसी प्रकार नयनोंको तो फेर लिया, किन्तु मेरा हृदय अभी भी उसके साथ-साथ अबाध रूपमें धूम रहा है ॥ ५८ ॥

तस्स कहाकण्ठइए सहाअण्णणसमोसरिअकोवे ।

समुहालोअणकम्पिपरि उवऊढा किं पवज्जिहिसि ॥ ५९ ॥

[तस्य कथाकण्ठकिते शब्दाकर्णनसमपसृतकोपे ।

संमुखालोकनकम्पनशोले उपगूढा किं प्रपश्यसे ॥]

तुम उसकी बात चले ही रोमाञ्चित हो जाती हो, उसके शब्दोंको सुनते ही कोप छोड़ देती हो एवं उसे सामने देखकर काँप जाती हो—आलङ्घित होनेपर तुम क्या करोगी ? ॥ ५९ ॥

भरणमिअणीलसाहग्गखलिअचलणद्धविहुअवन्खउडा ।

तरुसिहरेमु विहंगा कइ कइ पि लहन्ति संठणं ॥ ६० ॥

[भरणमितनीलशाखाप्ररक्षलितचरणार्धविधुतपद्मपुराः ।

तरुशिखीषु विहंगाः कथं कथमपि लभन्ते संस्थानम् ॥]

अपने भारसे झुके हुए नीलशाखाप्रभागसे चरणार्धके रक्षलित हो जानेपर, पद्मपुराको कम्पित कर, तरुशिखरोंपर पक्षी किसीप्रकार स्थान प्राप्त कर रहे हैं ॥ ६० ॥

अहरमहुपाणधारिह्निआइ जं च रमओ सि सचिसेसं ।

असइ अलाजिरि बहुसिक्खिपरि त्ति मा णाह मण्णुहिसि ॥ ६१ ॥

[अथरमधुपानलासया यच्च रमितोऽसि सविनेयम् ।

असती अलजाशीला बहुशिक्षितेति मा गाय मस्याः ॥]

हे नाथ, अपने अथरमधुपानकी लासयासे हम को शिक्षितभावसे रमित हुए दो—इस कारण गुह्ये असती, लाजाविहीना एवं बहुशिक्षिता मन समक्षता ॥ ६१ ॥

खाणेण अ पाणेण अ राह्य गद्विभ्रो मण्डलो अहवणाप ।

जह्व जारं अद्विणन्दइ भुण्णइ घरस्तामिप पन्ते ॥ ६२ ॥

[खाद्येन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽस्यथा ।

यथा जारमभिनन्दति भुङ्कति गृह्णामिन्येति ॥]

स्वेष्याचारिणीने आहार एवं पानद्वारा कुत्तेको इस प्रकार मनीभूत कर लिया है कि यह जारको आते देख अभिनन्दन करता है और गृह्णामीको आते देख भूँक उठता है ॥ ६२ ॥

कण्डन्तेण अरुण्डं पल्लीमज्झमि विअहकोअण्टं ।

पश्मरणाद्धिं वि अद्विअं धाहेण रआधिआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकाण्ठे पल्लीमप्ये विकटकोदण्डम् ।

पश्मरणादप्यधिकं स्वापेन रोदिता अधूः ॥]

गौवके कीचोकीच स्वाध अनायाम ही अपने भारसे युक्त धनुषको तनुकरने-की चेष्टाकर सासको पतिके मरनेकी अपेक्षा अधिक रलाया है ॥ ६३ ॥

अन्दे उज्जुअसीला विओ वि विअसहि विआरपरिओसो ।

ण हु अण्णा का वि गई धाहोहा क्हं पुसिज्जन्तु ॥ ६४ ॥

[यद्यं अज्जुअसीलाः प्रियोऽपि प्रियमस्ति विकारपरितोषः ।

न पश्यन्त्या कापि गतिर्वाण्यौघाः कथं प्रोच्छ्वयन्ताम् ॥]

अरी प्यारी सखी हम माणशील हैं, फिर भी प्रियतमके हावभावादि विकारोंसे खन्तुष्ट रहते हैं । कोई दूसरा उपाय नहीं है, किन्तु प्रकार बान्ध-प्रवाहको पोंछ डालें ॥ ६४ ॥

धवलो सि जह्व वि सुन्दर तह्व वि तुण मज्झ रज्जिअं द्विअअं ।

राअभरिप वि द्विअप सुहम गिद्वित्तो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि स्वया मम रजितं हृदयम् ।

रागभृतेऽपि हृदये सुभग निहितो न रक्षोऽसि ॥]

हे सुन्दर, तुम गोरे हो, फिर भी तुमने मेरे हृदयको रागरजित कर दिया है और हे सुभग, मेरे रागपूर्ण हृदयमें रहकर भी तुम रजित नहीं हो रहे हो ॥ ६५ ॥

चञ्चुपुडाहृत्विगलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्त ।

कीरस्स मग्नलग्नं गन्धन्धं भमइ भमरउलं ॥ ६६ ॥

[चञ्चुपुडाहृत्विगलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्य ।

कीरस्य मार्गलग्नं गन्धान्धं भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

फटाचोंके आघातसे गिरे हुए आमके रसद्वारा सिक्तदेह तोतापक्षीके मार्गमें लगकर गन्धान्ध भ्रमरकुल घूम रहा है ॥ ६६ ॥

एत्थ णिमज्जइ अत्ता एत्थ अहं एत्थ परिअणो सअलो ।

पन्थिअ रत्तीअन्धअ मा महं सअणे णिमज्जिहिसि ॥ ६७ ॥

[अत्र निमज्जति श्वधूरग्राहमत्र परिजनः सकलः ।

पथिक रात्र्यन्धक मा मम पापने निमज्जयति ॥]

यहाँपर सास निरपन्दभावसे सोनेमें मग्न रहती हैं, यहाँपर मैं और यहाँपर सारे परिजन सोते हैं। अरे रतौंधी रोगके मारे हुए राहगीर, तुम कहीं मेरी शय्यामें निमग्न न हो जाना ॥ ६७ ॥

परिओससुन्दराइं सुरप्सु लहन्ति जाइं सोअ्खाइं ।

ताइं च्चिअ उण विरहे खाउग्गिण्णाइं कीरन्ति ॥ ६८ ॥

[परितोपसुन्दराणि सुरतेपुलभन्ते यानि सौख्यानि ।

तान्येव पुनर्विरहे खादितोद्गीर्णानि कुर्वन्ति ॥]

महिलाएँ सुरतप्रसङ्गमें जिनसारे परितोपसुन्दरसुखद अनुभव करती हैं, विरहप्रसङ्गमें उन्हें दुःखरूपमें परिणत होनेके समान उसकी प्रतीति होती है ॥ ६८ ॥

मग्नं च्चिअ अलहन्तो हारो पीणुण्णआणं थणआणं ।

उट्ठिअग्गो भमइ उरे जमुणाणइफेणपुञ्जो इव ॥ ६९ ॥

[मार्गमिवालभमानो हारः पीतोद्धतयोः स्तनयोः ।

उद्विग्नो भ्रमयुरति यमुगानदीफेनपुञ्ज इव ॥]

पीन एवं उद्धत स्तनद्वयके बीच मार्ग न पानेके कारण ही हार जैसे यमुना नदीके फेनपुञ्जकी भाँति हृथर-उधर डोल रहा है ॥ ६९ ॥

पद्मेण चि यडयीअकुरेण सजलवणराइमज्जम्मि ।
 तद्द तेण कओ अण्णा जह सेसदुमा तले नन्स ॥ ७० ॥
 [पदेनापियटयीजाहुणेण सकलपनराजिमप्ये ।
 तथा तेन कृण आत्मा यथा दोषदुमास्तले तस्य ॥]

मारे वनों में यटपुत्रके उम एक धीजाहूरने अपनेको ऐसा कर डाला है कि
 अवशिष्ट दुम उसके नीचे पड़े हुए हैं ॥ ७० ॥

जे जे गुणिणो जे जे अ चादणो जे विट्ठविण्णाणा ।
 दारिद्रे विअक्कण ताणं तुमं माणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये अ यस्यागिनो ये विद्वद्विज्ञानाः ।
 दारिद्र्ये विचक्षण तेषां स्वं मानुरागममि ॥]

जो-जो गुणी हैं, जो-जो दाता हैं एवं जो-जो विज्ञानमें निपुण हैं, अरे
 विचक्षणदारिद्र्य, तुम उनके प्रति अनुरक्त हो जाने हो ? ॥ ७१ ॥

जइ फोत्तियो सि सुन्दर सअलनिहीचंददंसणमुहाणं ।
 ता मसिणं मोइज्जन्तकञ्चुअं पेक्कपसु मुहं से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽपि सुन्दर सललनिषिचन्द्रदर्शनमुष्णानाम् ।
 तन्ममृगं मोक्षयमानकञ्चुकं प्रेषन्व मुह्यं तस्याः ॥]

हे सुन्दर, यदि मारी तितियोंके चन्द्रको देव आनन्दमग्नधी कृष्ट
 दूर करना चाहते हो तो धीरे धीरे कञ्चुक गोलनेके समय परिहरयमान श्व
 नादिकाके मुखदेको देगो ॥ ७२ ॥

समचिसमणिग्घिसेसा समन्तओ मन्दमन्दसंआरा ।
 अइरा हौहिन्ति पद्दा मणोरहाणं पि दुल्लहा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिविशेषा, समन्ततो मन्दमन्दमञ्जाराः ।
 अचिराद्भविष्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुर्लभाः ॥]

धोदे हो दिनोंमें सर्वत्र मार्गोंकी यह अवस्था होगी कि समविषमग्यलोंका
 पता नहीं चलेगा, एवं वहाँ पर आना-जाना भी धीरे-धीरे होगा, यद्यत्कि कि
 पृथ सब मनोरथके चलनेके योग्य भी नहीं रह जायगा ॥ ७३ ॥

अइदीहराईं यहुए सीसे दीसन्ति वंसपत्तारं ।
 भणिप भणामि अत्ता तुम्हाणं रि पण्डुरा पुट्ठी ॥ ७४ ॥

[अतिदीर्घाणि घन्वाः शीघ्रं हरयन्ते वंशपत्राणि ।

भगिते भगामि श्चु युष्माकमपि पाण्डुरं पृष्टम् ॥]

अरी सास, अगर तू कहे कि यहूके मस्तकपर बड़े-बड़े घाँसके पत्ते लगे दिख रहे हैं तो मैं भी कहूँगी कि भापकी पीठ (धूलिके कारण) पीतवर्णकी दिख रही है ॥ ७४ ॥

अत्यक्करूतणं रणपसिज्जणं अलिअचअणिव्वन्धो ।

उम्मच्छरसंतावो पुत्तअ पअवी सिणेहस्स ॥ ७५ ॥

[आकस्मिकरोपकरणं षणप्रसादनमलीकवचननिर्धन्धः ।

उन्मासरमंतापः पुत्रक पदवी स्नेहस्य ॥]

हे पुत्रक, अचानक ही हट और दूमेरे ही षण सुष्ट, शूरी घातें बनाना एवं द्वेषसे उत्पन्न मनःताप ये स्नेहकी पदवियाँ हैं ॥ ७५ ॥

पिज्जइ कण्णञ्जलिहिं जणरवमिलिअं वि तुज्झ संलावं ।

दुद्धं जणसंमिलिअं सा घाला राजहंसि व्व ॥ ७६ ॥

[पिबति कर्णाञ्जलिभिर्जनरमिलितमपि तव संलापम् ।

दुग्धं जलसंमिलितं सा घाला राजहंसीव ॥]

राजहंसी जिसप्रकार दूधमिले जलमें केवल दूधको पी लेती है, उसी प्रकार वह घाला अन्यव्यक्तियों की घातमें मिले हुए केवल तुम्हारे संलापको कर्णाञ्जलिद्वारा पी ले रही है ॥ ७६ ॥

अइ उज्जुप् ण लज्जसि पुच्छिज्जन्ती पिअस्स चरिआइं ।

सव्वङ्गसुरहिणो मरुअस्स किं कुसुमरिद्धीहिं ॥ ७७ ॥

[भवि श्रुक्ते न लज्जसे पृच्छन्ती प्रियस्य चरितानि ।

सर्वाङ्गसुरभेर्मरुकस्य किं कुसुमर्द्धिमिः ॥]

अरी सरलस्वभाववाली, प्रियजनोके चरितके सम्बन्धमें पूछकर क्या लज्जित नहीं होती ? सर्वाङ्गसुगन्धित (पिण्डलजूरके) मरुत्कको सुमनसमृद्धिसे क्या प्रयोजन ? ॥ ७७ ॥

मुद्धे अपत्तिअन्ती पवालअङ्कुरअवण्णलोहिअप ।

णिद्धोअघाउराप् कीस सहत्थे पुणो धुअसि ॥ ७८ ॥

[मुग्धेऽप्रारथयन्ती प्रवालाङ्कुरवर्णलोहितौ ।

निर्धौतधानुरागौ किमिति स्वहस्तौ पुनर्धावयसि ॥]

अरी मुग्धे, प्रबालाङ्कुर वर्णही भौंति रगिम, अरने दापने जो धातुराग
पुष्टगया दे, यह विधाम न कर तुम पुनः दोनों हाथोंको बसों धो
रही हो । ॥ ७८ ॥

उभ सिन्धवपदव्रसच्छदारं धुमनूलपुत्रसरिमार् ।
सोदन्ति मुत्रणु मुफोयभारं सरप सिभ्रम्भारं ॥ ७९ ॥

[परप सैन्धवपर्वनमरुधाति पुत्रनूलपुत्रमरुधाति ।
शोभन्ते सुत्रमु मुनोदकानि वादि तिताम्राणि ॥]

दे सुतनु, देणो, शरन्में सैन्धवपर्वतही भौंति प्रतीपमान एवं कश्चिन्म
नूलपुत्रकी भावृतिविशेषमे मुकत्रल रथेन मेप शोभित हो रहे हैं ॥ ७९ ॥

आउच्छन्ति सिरैद्दि विपलिपद्दि उभ राभ्रद्विपद्दि णिञ्जन्ता ।
णिप्वच्छिमयलिअपलांरपद्दि मदिसा कुट्टारं ॥ ८० ॥

[आश्रुच्छन्ति शिरोभिर्विश्लितैः परप सन्निकैर्नविमानाः ।
निःपश्चिमपठिनप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

श्रद्धाही शौनिकों (मानविकेनाभों अथवा कमारुषों) द्वारा ले जाने
हुए बेल विद्वान्मस्तक हो नवनोंमे अन्तिम बार मुक्कर देखने हुए कुञ्जोमे
विदाई ले रहे हैं (अब कुञ्ज निरापद हो गए हैं ।) ॥ ८० ॥

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ यादोभरणं विमेमरमणिञ्जं ।
मा एभं चिअ मुहमण्डपं लि सो काट्टिइ पुणो वि ॥ ८१ ॥

[अण्डेय मुगं तणुत्ति च (पुत्रिके) पाणोठरण विनेवमणीयम् ।
मा इदमेव मुणमण्डनमिति करिष्वसि पुनरपि ॥]

अरी घेरी, आँसू बहानेवाले विशेष रमणीय अपने मुखपेको पोंछ डालो ।
देतो, यह फिर कही यह न समझ ले कि यह मुखका गृहार है ॥ ८१ ॥

मज्जे पअणुअपङ्कं अयहोयासेसु साणविच्चिहणं ।
गामरस सीससीमन्तअं घ रच्छामुहं जाअं ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनुक पङ्कमुमयोः पारश्वयोः रपानकर्मम् ।
ग्रामरप शीर्षसीमन्तनिव रष्यामुगं जातम् ॥]

गौविका रासता, शीर्षमें स्वररङ्ग एवं दोनों ओर छप्परङ्ग धारणकर इसके
शीर्षगत सीमन्त जैसा प्रतीत हो रहा है ॥ ८२ ॥

अवरहागभजामाउभस्स विउणेइ मोहणुक्कण्ठ ।
बहुआइ घरपलोहरमज्जणपिसुणो वलथसहो ॥ ८३ ॥

[अपराहागतजामातुद्विगुणयति मोहनोत्कण्ठाम् ।

वध्वा गृहपक्षाद्भागमज्जनपिशुनो वलयशब्द ॥]

घरके बादवाले भागमें बधूके मज्जन (शयन वा स्नान) सूचक वलयशब्द
अपराहमें आगत जामाताकी सुरतोत्कण्ठाको दुगुना किये डाल रहे हैं ॥ ८३ ॥

जुज्झचवेडामोडिअजज्जरकण्णस्स जुण्णमह्वस्स ।
कच्चायन्धो च्चिअ भीरुमल्लह्दिअअं समुक्खणइ ॥ ८४ ॥

[युद्धचपेटामोटितप्रजरकणस्य जीर्णमल्लस्य ।

कचायन्ध एव भीरुमल्लहृदयं समुत्पन्नति ॥]

युद्धमें चपेटाघात पानेके कारण अमर्दित एव जरजरकणविशिष्ट युद्धमल्लका
मल्लकच्छवन्धन ही भीरुमल्लोंके हृदयको विद्रावित करता है । युद्धपतिसे
विरक्त रमणी युवा नागरको अधिक आदर देती है ॥ ८४ ॥

आणत्तं तेण तुमं पइणो पइएण पडहसहेण ।
मल्लि ण लज्जसि णच्चसि दोहग्गे पाअडिज्जन्ते ॥ ८५ ॥

[आश्रित तेम एवा परया प्रहतेन पटहशब्देन ।

मल्लि न लज्जसे मृत्यसि दौर्भाग्ये प्रकटोक्रियमाणे ॥]

अरी मल्लपत्नी, पतिके पटह (कर्ण) ध्वनिको सुननेपर भी तुम अपने
जिस दुर्भाग्यकी घोषणा ममशती थी, उस दुर्भाग्यके प्रकट होने लगनेपर भी
तुम लज्जित नहीं हो रही हो, वरन् श्राय कर रही हो ? ॥ ८५ ॥

मा वरुचह वीसम्भं इमाणं बहुचाटुकम्मणिउणाणं ।
णिव्वत्तिअकजपरम्मुहाणं सुणआणं व खलाणं ॥ ८६ ॥

[मा व्रजत विघ्नभमेवा बहुचाटुकर्मनिपुणानाम् ।

निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखानां शूनकानामिव खलानाम् ॥]

कुत्तोंकी तरह चाटुकारितामें निपुण एव काम निकल जाते ही पराङ्मुख
इन दुष्टों का विश्वास मत करना ॥ ८६ ॥

अण्णग्गामपउत्था कट्टुन्ती मण्डल्लाणं रिद्धोल्लि ।
अक्खण्डिअसोहग्गा घरिससअं जिअउ मे सुणिआ ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता कर्षवन्ती मण्डलानां पंक्तिम् ।

अखण्डितसौभाग्या वर्षशत जीवतु मे शुची ॥]

कुत्तोंके दलको आकृष्टकर दूमरे गाँव में जा बसनेवाली मेरी कुतिया
अखण्डसौभाग्यवती हो, सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ ८७ ॥

सत्त्वं साहसु देवर तद् तद् बहुआरण्येण सुणयण ।

णिन्वत्तिअकज्जपरम्मुहत्तणं सिक्खिअं फत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्त्वं कथय देवर तथा तथा चाटुकारकेण शुनकेन ।

निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखत्वं शिक्षित कस्मात् ॥]

हे देवर, मध्व बतानो तो-सभी प्रकार चापल्यीकर कुत्ता जो काम समाप्त
होने पर पराङ्मुख हो जाता है, यह उसने किससे सीखा है अर्थात् तुम्हीं से
सीखा है ॥ ८८ ॥

णिप्पणसस्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरप ।

दलितअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्कासु राईसु ॥ ८९ ॥

[निप्पन्नसस्यच्छदि स्वच्छन्दं गायति पामरः शरदि ।

दलितनवशालितण्डुलधवलमृगाङ्कासु रात्रिषु ॥]

शरत्कालमें दलित नये शालिधान्यके तण्डुलके समान धवलचन्द्र शोभित
विभावरीमें, पामर हालिक प्रचुर शरयसम्पद पाकर आनन्दमें गा रहा है ॥ ८९ ॥

अलिद्विज्जइ पङ्कअले हलालिचलणेण फलमगोपीय ।

केदारसोअरुम्भणतं सट्ठिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[अलिच्छयते पङ्कतले हलालिचललेन कलमगोप्याः ।

केदारस्रोतोवरोधतिर्षकं स्थितः कोमलश्रणः ॥]

(पूर्ववत्सर) केदारस्रोतके अवरोधवश निरुद्धे खड़ी कलम गोपीके कोमल
श्रणविद्ध इस वर्ष हलरेखाके खींचे जाते समय कीचदमें खींच डाले जा
रहे हैं ॥ ९० ॥

दिअहे दिअहे मूसइ सङ्केअअमङ्गचट्ठिआमङ्का ।

अचण्डुणअमुद्धी कलमेण समं कलमगोपी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति सङ्केतकभङ्गवर्धिताशट्टा ।

आवाण्डुरावतनमुखी कलमेन सम कलमगोपी ॥]

(कमल परिपाकमें) सङ्केतभङ्गकी भाशङ्का बङ्गजानेपर कमलगोपी कमलके साथ-साथ पाण्डुवर्ण एवं भवनतमुखी हो दिनों-दिन सूखती जा रही है ॥ ९१ ॥

णयकम्मिपण हअपामरेण ददूण पाउंहारीओ ।
मोत्तध्वे जोत्तअपग्गहम्मि अचहासिणी मुफ्फा ॥ ९२ ॥

[नवकर्मिणा पश्य पामरेण इष्टा भक्तहारिकाम् ।

मोक्षध्वे योत्रप्रमदहेऽवहासिनी मुक्ता ॥]

भक्तहारिकाओंको (भोजन लानेवालिपोंको) देखकर नवीन कर्मी निर्लज्ज किसान, जोतरश्मि मोचन करनेको उद्यत हो भ्रमवश थैलके नाथ खोल रहे हैं ॥ ९२ ॥

ददूण हरिअदीहं गोसे णइजूरप हलिओ ।
असईरहस्समग्गं तुसारधवले तिलच्छेत्ते ॥ ९३ ॥

[इष्टा हरितदीर्घं प्रातर्नातिखिषते हलिकः ।

असतीरहस्यमार्गं तुपारधवले तिलक्षेत्रे ॥]

तुपारधवल तिलके खेतमें असतीके हरिनवर्ण एवं दीर्घ रहस्यमार्गको देख प्रतिःकाल किसान खेदयुक्त नहीं होते ॥ ९३ ॥

सङ्केह्लिओ व्व णिल्लइ खण्डं खण्डं कओ व्व पीओ व्व ।
वासागमम्मि मग्गो घरहुत्तसुद्धेण पहिपण ॥ ९४ ॥

[सङ्कोचित इव नीयते खण्डं खण्डं कृत इव पीत इव ।

वर्षागमे मार्गो गृहभविष्यसुखेन पधिकेन ॥]

वर्षागमसे भावी गृहसुखकी बात स्मरणकर पधिक मानो पथको संचित कर अथवा मानो दुक्के-दुक्के कर, अथवा मानो चर्वण कर चल रहा है ॥ ९४ ॥

धण्णा बहिरा अन्धा ते च्चिअ जीअन्ति माणुसे लोप ।
ण सुणंति पिसुणवअणं खलानाँ ऋद्धि ण पेन्खन्ति ॥ ९५ ॥

[धन्या बहिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।

न शृण्वन्ति पिशुनवचनं खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]

जो बहरे हैं एवं जो अन्धे हैं वे ही धन्य हो जीवित हैं, कारण, वे ही खल मनुष्यों की सुनते नहीं एवं उनकी समृद्धि भी नहीं देखते ॥ ९५ ॥

एणिह वारेइ जणो तइआ मूइहओ कहिं व्य गओ ।
जाहे विसं व्य जाअं सब्यरूपहोतिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति जनस्तदा मूलमः कुत्रापि वा गतः ।
यदा विपमिव जात सर्वाङ्गघूर्जितं प्रेम ॥]

जब प्रेम विपकी भौंति सभी अहोमि व्याप्त हो गया था, तब सभी मूक हो
गए थे—भूय सभी मना कर रहे हैं ॥ ९६ ॥

कहँ तंपि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणं बहुआणं ।
काऊण उच्चवचिअं तुह दंसणलेहला पडिआ ॥ ९७ ॥

[कथं तदपि खया न ज्ञातं यथा मा भासंदिकानां षडूनाम् ।
कृत्वा उच्चावचिकां तव दर्शनलालसा पतिता ॥]

तुम क्या यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे दर्शनलालसासे अभिमूत हो
बह (नायिका) अनेक भासन्दिआ (बेंतके भासन वा छोटी खाट) द्वारा
बनायी हुई ऊँची सिढ़ी से गिर पड़ी है ॥ ९७ ॥

चौराणं कामुआणं अ पामरपडिआणं कुक्कुडो चअइ ।
रे रमह घहह वाहयह एत्थ तणुआअए रअणी ॥ ९८ ॥

[चौरान्कामुकार्थं पामरपथिकांश्च कुक्कुटो वदति ।
रे रमत पहत वाहयत अत्र सन्धी भवति रजनी ॥]

‘अब रात थोड़ी-सी ही बची है’ यह सूचितकर सुर्गा चौरों, कामुओं एवं
पथिकों से क्रमानुसार ‘लेते रहो’ ‘रमणमें मत्त होओ’ एवं (गार्दी) ‘घटते
रहो’ कहे दे रहा है ॥ ९८ ॥

अण्णोण्णरुडअन्तरपेसिअमेलीणदिट्ठिपमराणं ।
दो च्चिअ मण्णे कअभण्डणाइँ समहं पदमिआइँ ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाघान्तरप्रेषितमिहितदृष्टिप्रवती ।
द्वावपि मण्ये कृतकलहौ समर प्रहवित्री ॥]

एक दूसरेके प्रति एक दूसरेके कटाघसे प्रेषित दृष्टिप्रवती प्रवृत्ति से
ऐसा प्रतीत होता है कि कलह करनेवाले दोनों पक्ष मत्त हो चुके हैं ॥ ९९ ॥

संज्ञागहिअजलअलिपडिमामंअन्तराणं ।
अलिअं चिअ फुरियोट्टं पिअदिअमण्णं अं अमइ ॥ १०० ॥

[संध्यागृहीतजलाञ्जलिप्रतिमासंक्रान्तगौरीमुखकमलम् ।

अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमंत्र हरं नमन ॥]

संध्याकालीन जलान्जलिमें प्रतिबिम्बित गौरीका मुखकमल देखकर, मंत्रोच्चारणलित होनेपर भी मिथ्याभावसे ओठोंको चलानेवाले (हिलानेवाले) हरको नमस्कार करें ॥ १०० ॥

इअ सिरि ह्यलविरद्वय पाउअकव्वम्मि सत्तस्सए ।

सत्तमसअं समत्तं गाहाणं सद्दावरमणिज्जं ॥ १०१ ॥

[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतकाव्ये सप्तशते ।

सप्तशतं समाप्तं गाथा स्वभावमणीयम् ॥]

इसी स्थानपर श्रीहाल (नरपाल) विरचित सप्तशती नामक प्राकृत-स्वरभावमणीय सप्तशतक समाप्त हुआ ॥ १०१ ॥



समाप्तोऽयं ग्रन्थः



परिशिष्ट (क)

गाथानुक्रमणिकादि

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
अइ लज्जुए-सर्वाङ्ग सुगन्धित		७ ७७	अज्जाइ णील-स्तन		४।१५
अइ वीवणा-दुष्ट सास		५।१३	अज्जाएँ णवणइ-नराक्षण		२।५०
अइ दिअर-अद्धेचन्द्र		६।७०	अणऊल विअ-अनुकूल वचन		६।२३
अइ दीदरार्हे-अपिचारिणी		७ ७४	अणुअपमाइ आए-अण्य अपराध		३।७७
अउलीणो दोमुइओ-दो मुहे		३।५३	अणुदिअइवडिड-आदर		३।६६
अकअणुअ घण-बैतकुअ		६।९९	अणुमरणपदिआए-सुहाग		७।३३
अकअणुअ सुजअ-अकणअ		५।४५	अणुवत्तण-कुलीनता		३।६५
अकअइइ पिआ-द्वेषादि		१।४४	अणुइसो-कृशाङ्ग		७।५७
अगगिअअणाव-लोकापवाद		५ ८४	अणुअणामपउत्था-कृतिया		७ ८७
अगणि अमिस-लोकमर्षादा		१।५७	अणुअण कुमुअ-रराणोमी		२।१९
अग्धाइ दिवइ-मधूकपुष्प		७ ७९	अणुअमहिला-रूपगविता		१।४८
अङ्गाण सुणुआरअ-शीलमङ्ग		४ ४८	अणुअ पि कि पि-पराधीन		६ ९
अञ्जासणुविवाहे-तरुणगोपी		७ ५५	अणुअ ण तीरइ-उपचार		४।४९
अच्छउ ता अणवाओ-मन्द स्नेह		३।१	अणुअणो वि शेणित्त-अभुविलाम		५।७०
अच्छउ डाव-उत्सुकता		२।६८	अणुअवराइ-द्वेषभाव		५ ८८
अच्छाएँ ता यइसस-हाँ ना		४ १४	अणुअसआइ-विरोधाभास		३।२३
अच्छेइ व गिहि-विवक्षा		१।२५	अणुअणु पदिअ-धिकारी		७।२९
अच्छोइअवत्थ-प्रस्थानशीला		२ ६०	अणुओ वो पि-निरस सरस		५ ३०
अउअ गाह-अह		२।८४	अणुओणकउत्तर-कटाव इष्टि		७।१९
अउ कइमी वि-याध वधू		२।१९	अत्ता तइ-आशङ्का		१।८
अज्ज गओसि-रेखाङ्कन		७।८	अत्तकसुअण-स्नेह पदवी		७ ७३
अज्ज अए गन्त-व-अभिमार		३।४१	अइसणेग पुत्तअ-स्नेहानुबन्ध		३ ३६
अज्ज मए नेण-प्रतिध्वनि		१।२०	अइसणेग पेम्म-दुराव		१।८१
अउ पि ताव-सशय		६।०	अइसणेग महिला-प्रेमलोला		१।८२
अज्ज मोण-इन्द्रिक		४।६०	अइच्छिउपेच्छिअ-मुग्धा		३।२५
अज्ज भिइ हासिआ-मनोरजन		१।६४	अओ हुत्त उजअइ-विधुर		४।७३
अज्ज वि बाली-अहस्यमय		२।१२	अणुअअरवोरपत्त-ईश्वरपरायण		३।४०
अज्ज अवेअ पउत्थो अज्ज-मुना		२।९०	अणुअउत्पन्न-विविक्रम		५।११
अज्ज अवेअ पउत्थो उज्जा-चौर रति		१।५८	अणुअउत्पन्न-मृगशृङ्गा		७।२
अज्ज सदि वेल-सवेदना		४।८१	अणुअउत्पन्न-अस्तुत्ति		३ ४१

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
अप्यत्तमणु-द्वेष		२१७	अदिणवपाउत्त-मयूरनृत्य		६१५९
अप्याहेर मरन्तो-मृत्युशयदा		७३२	अदिलेन्ति सुर-अपराजिता		४१६६
अभम-तरसरसाभो-वीचड		७१२३	आभण्णा-भाला		६१९४
अमभमअ गअण-स्पर्शास्तु		११२६	आअण्णेइ अइअणा-पदचाप		४६५
अमिअ पाउअ-प्रयोजन		११२	आअम्बन्तकवोल छुरं मुई		२९०
अम्बवणे भमर-भमराई		६१४३	आअम्बलोअणाण-सद्य खाता		५१३७
अम्हे उज्जुअसीला-नखरा		६६४	आअरपणामिओठु-तुवन		११२२
अलिअपसुत्तअ-उरअण्ठिना		११२०	आअस्स कि णु-सोच विचार		२१८७
अलिअपसुत्तवल्ठमि-दावपैच		७१४६	आउउअणविच्छाअ-विदा के क्षण		५११००
अलिहिज्जइ-केदार धोन		७९०	आउउअग्नि सिरेहिं-वसाई		७८०
अवमाणिओ वि-प्रत्युपकार		४१२०	आक्खेवआई-प्रियवाणी		३१४२
अवरज्जसु-सदिष्णुना		४१७६	आणत्त तेण तुम-मल्लपत्नी		७१८५
अवरण्हागअजामाउ-जामाता		७१८३	आम असइ हा		५१२७
अवराहेहिं-शिष्टाचार		४१५३	आमजरो ये मन्दो-उदासीन		१११२
अवलम्बइ-उद्भान्त		४१८६	आम बहला-नर्मदा		६१७८
अवलम्बिअमाण-रुद्ध न		११८७	आरम्भन्तरस-विजयलक्ष्मी		११४२
अवदत्थिकण-सहायापन्न		२५८	आरुइ जुण्णअ-इधुमय		६१३४
अविअण्णपेक्कमणकजेण-अतुत्त		११९३	आलीअन्त दिशाओ-क्षितिज		६१४६
अविइण्णपेक्कणिज्ज-सचिन कर्म		११९९	आण्णेअग्नि पुलिन्दा-पुलिन्द		२१२६
अविरल पदन्नगव-वर्षा		५३६	आवण्णाई कुलाइ-सालाहण		५१६७
अविइत्तसधिबन्ध-अमर		७३३	आसण्णविआइ-मुरत कथा		५७९
अविइवल्कण-चुडिहारिन		६१३९	आसासेइ परिअण-आश्वासन		३१८३
अवो अणुणअ-अनुनय		४६	अभरो जणो-सगम सुर		३१२१
अवो दुक्कर-कैशपाश		३१७३	ईस जणेन्ति-बहुविध गुणावली		४१२७
असमत्तगुरुअकजे-अट्टहास		६१३७	ईमामच्छर-ईश्यां मातर		६१६
असमत्तमण्डगविअ-निर्णायक षठी		११२१	ईमालुओ पई-ईश्यांतु पति		२१५९
असरिसचित्ते-विकल्प		११५९	उअअ लडिउण-रहुँट		५१९०
अइ अम्ह आअदो-उपपत्ति		४१२	उअ ओलिउइ-निर्झर		७१४०
अइअ लज्जालुणी-महावर		२१२७	उअगअउत्थि-विदोगाक्षु		७१४४
अइअ विओअ-विरहाग्नि		५१८६	उअ णिच्छल-बकध्यान		११४
अहरमहुपाण-जैसीक		७६१	उअ पोम्मराअ-शुकपत्ति		११७१
अहव गुणविव-गुणविना		३३	उअरि दरदिठु-बबूतर		११६४
अइ सभाविअ-दोरगापन		११३२	उअ ममम-ध्वजा		५१६१
अइ सरसदन्त-चौदनी		३१२००	उअ सिन्धवपन्वअ-सिन्धवपर्वन		७१७९
अइ सा तहिं-वागीकुअ		४१२८	उअइ तरकोउराओ-वृक्षकोटर		६१६२
अइ सो विलक्क-पक्षात्ताप		५१२०	उअइ पडलन्तरो-बकुल		११६३
अहिआअमाणिओ-कुलाभिमानिनी		११३८	उविल्लपइ-चक्रवात		२१२०

भाषा	संज्ञा	पृष्ठ	भाषा	संज्ञा	पृष्ठ
उज्जयिणी-अकमारभ-लज्जाशीला	५१८२	ओमदिभज्जो-सर्पान्त	४५६		
उज्जयिणी-तुमार-नकाशप्रति	५१७९	ओदिभभ ओदिभ्रु-विधामय नी	७३७		
उज्जयिणी-ग्रीत भार	३७५	ओदिभभ महह-संनष्ट निष्	३७		
उज्जयिणी-नि-प्राग	४८७	ओदिदिभ्रु-अवधि रोग	३९		
उज्जयिणी-परा-पुत्री	११३३	कइभवादिभ्र-नौकिक प्रेम	३३४		
उज्जयिणी-प्याक	२१६१	कण्ट-भक्त-नष्ट कीर्त	७९६		
उज्जयिणी-प्रेतावती	३१४	कण्ट-भक्त-भयराष	५१७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-मधुग्गव	६३०	करव गर्भ रद-कुण्डली	५३०		
उज्जयिणी-बोर-जारी	३४८	कण्ट-भक्त-भयराष	३१६		
उज्जयिणी-सुहृद-सुहृद-सुहृद	४३९	कण्ट-भक्त-भयराष	७४१		
उज्जयिणी-उपनिषद्-क्रीडा	२७६	कण्ट-भक्त-भयराष	२१०		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	५१४६	करमरि कीम ल-भोर	३१७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६३६	करिमरि भक्त-भयराष-भयराष	११७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६३४	कण्ट-भक्त-भयराष	५१९		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६३७	कण्ट-भक्त-भयराष	११६		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	५४	कण्ट-भक्त-भयराष	३१८		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	७१	कण्ट-भक्त-भयराष	४८०		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	४४३	कण्ट-भक्त-भयराष	३६८		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६१३	कण्ट-भक्त-भयराष	७९७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	११६६	कण्ट-भक्त-भयराष	३६८		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	७३८	कण्ट-भक्त-भयराष	३१७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	३२०	कण्ट-भक्त-भयराष	५१७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	७७०	कण्ट-भक्त-भयराष	७१३		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	५९	कण्ट-भक्त-भयराष	७१७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	११२५	कण्ट-भक्त-भयराष	११७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	७९६	कण्ट-भक्त-भयराष	४३०		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	५३०	कण्ट-भक्त-भयराष	११०		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	७३७	कण्ट-भक्त-भयराष	७१७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	४५८	कण्ट-भक्त-भयराष	३९		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	४३	कण्ट-भक्त-भयराष	६१६		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६१	कण्ट-भक्त-भयराष	३७७		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	३२४	कण्ट-भक्त-भयराष	४८		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६७९	कण्ट-भक्त-भयराष	५१३		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	३१७	कण्ट-भक्त-भयराष	४१६		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६६	कण्ट-भक्त-भयराष	५७४		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	५१८५	कण्ट-भक्त-भयराष	२१३		
उज्जयिणी-विद्वज्जो-उपनिषद्	६३१	कण्ट-भक्त-भयराष	६८१		

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	स-दर्भ	पाठ
कोलीभ वि रुसेउ-अनुरक्ता		२।९५	गोलाणद्वय-संवेन-स्थान		२।७१
केमररभ-केसर पराग		४।८७	गोलाविसमोभार-पवित्र पाप		२।९३
कोत्थ जअम्मि-पयोधर		४।६४	परिणिमाणत्यग-शकुन		३।६१
बोसँवकिंसलअ-प्रोत्साहन		१।१९	परिणीयें महा-परिहास		१।१३
रत्नमङ्गुरेण-क्षणमङ्गुर		५।१३	पेत्तुग चुण्ण-हवोंवड्वास		४।१२
रत्नमेत्त-प्रच्छन्न पाप		२।८३	पञ्चपुढाहअवि-प्रमाधन		७।६६
रत्नधम्मिगणा-सिन्नमना		१।७७	पत्तरघरिणी-कुल शील		१।३६
रत्नपवगरअरण-विजली		६।८३	चन्दसुद्धि-चन्द्रसुरी		३।८०
रत्नसिप्पिर-पुआल		४।३०	चन्दमरिस-अनुपम		३।१३
रत्नगेण अ पाणेग-प्रशिक्षण		७।६२	वलणोआसगि-वेशाकवर्ण		२।८
रत्नणस उरे-खिन्नपति		३।९९	वावो सदावसरल-वकावक		५।१४
खिण्णह हारो-काल प्रभाव		५।२९	चिक्खिल्लुत्त-अभिशाप		४।२४
खेम कन्नो-आप्रमञ्जरी		५।९९	भिराणिअदहअ-कलहिणी		१।६०
गअकलह-मत्तगामिनी		३।५८	भिरडि पि अभाण-तो-वर्णमाला		२।९१
गअगण्डरथल-मद		२।२१	बोरारणं कामुआणं-कुक्कुटध्वनि		७।९८
गअवहुवेहवभरो-भारवाहक		७।३०	बोरा सभअसनण्ह-प्रीटपनिका		६।७६
गअ मह-कओर हृदय		६।६६	बोरिअरअसदालुह-चौर्यरति		५।१५
गअ अन्वाअन्नअ-आश्वासन		६।६५	उज्जह पटुस-शोभनीय		३।४३
गअधेण अरणो-परिमल		३।८१	टिअन्तेहि-असमजस		४।४७
गअम्मिहिसि तरस-सृगाङ्क		७।७	अह कोत्तिओ-कल्लुवी		७।७२
गरुअल्लुआउलि-उद्धिअ		४।८३	अह चिक्खल्ल-रोमाअ		१।६७
गहह गओम्ह-जारपति		३।९७	अह जूरद-नियत्रण		७।८
गहवण्णा-आभूषणादि		२।७२	अह ण खिवसि-चञ्चल हाथ		५।८१
गहवहसुओच्चिण्णु-पुलक		४।९९	अह भमसि-गोष्ठ भ्रमण		५।४७
गामङ्गणिअडि-द्वारपाल		६।५६	अह लोअग्निदिअ-भयादामङ्ग		५।८०
गामणिघरम्मि-सदिवध		५।६९	अह मो ण वल्लो-प्रफुल्लित		४।४३
गामणिणो सव्वासु-ग्राम नायक		५।४९	अह होसि ण-पाढी		१।६५
गामनरुणिओ-ग्राम तरुणी		६।४५	अ ज आलिह-भद्रमनोरथ		७।१३
गामवडरस-पूर्ण प्रेम		३।९१	अ ज करेसि-अनुसरण		४।७८
गिअन्ते मङ्गल-मङ्गल गान		७।४१	अ ज ते ण-उपदेश		७।१५
गिअहे दवग्गि-अम निवारण		१।७०	अ ज पिणुल-कृशाणो		४।५
गिरसोत्तो-गिरि स्रोत		६।११	अ ज पुलमि-भर्वेव्यापक		६।३०
गैअच्छलेण-प्रलाप		४।३४	अ ज सो गिअज्ञाअद-प्रदर्शन		१।७३
गैइ पलोअह-प्रथमोद्गन दान		२।१००	अ तणुआअह-सनाप		७।११
गैह व विअरहिअ-त्रियोग		७।९	अ ज निअ गुल-अरभिक		६।५४
गैठकखल्ल-वध्यमहिष		५।९६	अ ज उज्ज सई-मूल कारण		३।२८
गैलाअडिअ-सवेत		२।७	अ ज मन्ने वि चरण-अमान्तर		५।४१

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
जसम जह-असोम सौन्दर्य		३१३४	गच्छगसलाह्न-मतिभ्रम		२११४
जह विन्देह परि-ग्रामणी नन्दन		७१२१	ग शिवद हृत्थेण-वानर बानरी		६१३०
जह जह उन्वहद-नवयौवना		३१९२	गन्दन्तु सुरभ्रमुह-वेदया प्रेम		२१५६
जह जह जरा चढाव उलाह		३१९३	ग सुभन्ति-बहुवल्लभ		२४७
जह जह बाण-द-खानुनरण		४१४	गलिनीसु भमसि-मधुकर		७१९०
जाएज वणुहेमे-रसिक जन		३३०	गवकमिदण-निर्लज्ज किसान		७९३
जाओ सो वि-गाढालिङ्गन		४५१	गवपहाव-नव पल्लव		६८५
जाणर जाणावेउ-शील		११८८	गवलभपहर-रोमाञ्ज		११०८
जाणि वभणाणि-प्रियवचन		७१४९	गववदुपेम्म-भारवहन		२१२२
जारमसाण-कापालिका		५१८	ग विगा सम्भावेण-माड		३१८६
जाव ण कोसपिकाम-रसलीलुप		५१४४	ग वि तह अह-विपरीत रति		५१८३
जिबिअ असामअ-विहम्बना		३१४७	ग वि तह अणालवन्ती-उदासीन वचन		६१६४
जीविभसेसाह-निष्फल प्रेम		२१४९	ग वि तह छेभ-रमण सुख		३७४
जीहाइ कुणति-कुलीन		६१४१	ग वि तह पढम-लओलापल		३१९
जुज्जचवेडामोडि-बुद्धपति		७८४	ग वि तह विपस-सत्ताप		१७६
जे जे गुणिणो-गुणगाहक		७७१	गास वा सा-दन्तधन		२१९६
जेण विगा-जीवनाधार		१६३	गाइ दूरं ण तुम-वर्म्बाना		२१७८
जे णोलम्भमर-शोकगीत		५१२२	गिअआयुमाण-शुद्धारहित		४४१
जेत्तिअमेत तोरद-सत्तुलिन		११७१	गिअथगिअ-इवकुटरव		६१८७
जेत्तिअमेता रच्छा-मितभिवनी		४१९३	गिअथखारोवि-नैपुण्य		५१४०
जे मँमुहागभ-मदन शर		३१२०	गिकण्ड दुरारोह-अविधमनीय		५१६८
जो वहँ वि-वामुक चोर		२१४४	गिकम्मार्हि-विधुर		२१६९
जो जसस विहव-विरमय		३१२२	गिकिव जाभा-जावामीह		२१३०
जो नीरँ अहरराओ-अधरराग		२१	गिह लहनि-विदग्धोत्तर		५१८
जो वि ण आणइ-भस वलय		५१३८	गिहायहो-असम्भव		४१७३
जो सीसमि-गणपति		४१७२	गिहालस-अलसहृष्टि		२१४८
ज्ञज्ञावाउत्तिणिअ-साधो		२७०	गिपत्तिदमाइ-कमक		२१४
ज्ञज्ञावाउत्तिणिअ-भोपिनपनिना		४१२५	गिपणमरसरि-वानन्द गान		७८९
टिड्ढाचभा-अपना पराया		२१९७	गिबुसरभा-अनुभवदोना		२१००
टाणाकमट्टा-स्थानअष्टा		७१२	गिहुअ-सिप-मुरनदिस्य		६१८९
ड-हासि ड-हासु-जह सझाव		५१२	गीभारं अज-निदं		४१००
ण अ दिट्ठि-नववधू		७१४५	गणपलपाउअट्टा-नीलवखवारिणी		६१२०
णअगभ-नर-अपुपूरिन नेत्र		४७१	गणानुक भेअ-अत्मविमृता		८०१
णइकरमच्छहे-अनित्य यौवन		२१४१	गूरा रिअअ-अनुपामो		४१३०
ण कुणलो-मान		१०६	गूदेनि जे पटुण-नारी निय		११९१
णकतुसुडिअ-युवा अमर		४१३१	गेन्द्रकोडि-नूपर		२१८८
ण गुणेण-रुचि		४१०	गोहलिअ-मनोक्षमना		१६

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
तद्भा कथय-गर्मिणी		११२२	तेण ण मरामि-पुनर्जन्म		४१७५
तद् बोल्न्ते-प्रेमातुर		३१२३	ते विरला-सत्पुरुष		२१२३
तद् सुहअ-अधुपात		४१३८	ते थोलिआ-अतीत		३१३२
तडविणिहिअग्ग-मैडकी		४९१	थणजहणभिअ-रमारक		३१३३
तडसठिअ-बाढ		२१२	धीअं पि ण-आमगण		११४९
तणुएण वि-मध्यस्य		४६२	धोरंसुएई कण्ण-सपलिवी		६२८
त णहम-नारायण		२१५१	दइअकरगह-मदनोत्सव		६१४४
तत्तो च्चिअ-ल्लेइ के-द्र		७१४८	दक्खिण्णेण-दाक्षिण्य		११८५
तं मित्त काअन्वं-मित्र लक्षण		३११७	दट्ठूण उण्णम-ते-पथिक पत्ती		६१३८
तम्मिपरसरिअ-सुख हरिण		६१८८	दट्ठूण तरुणसुरअं-सुरत		६१४७
तस्स अ सोहग्ग-साइसपूर्ण		३१३१	दट्ठूण रुन्दतुण्ड-शूकरी		५१२
तस्स कदाकण्ठइए-उपगूढा		७१५९	दट्ठूण हरिअदीई-रहस्य मार्ग		७१९३
तद् तस्स माण-प्रेमतक		५१३१	दढरोस-सृष्टुभाषी		४११९
तद् तेणवि सा-तृप्ति		७१२५	दरफुडिअ-अंकुर		११६२
तद् परिमलिआ-उपचार चातुरी		७१३७	दरवेविरोह-युगसञ्जा		७११४
तद् माणो-प्रतिक्रिया		२१२९	दिअरस्स-पतिव्रता		११३५
तद् सोण्दाइ-चित्रवन		३५४	दिअह खुडकिआ-स्मृति		३१२६
ता ईं करेउ जइ-वेरा		३१२१	दिअहे दिअहे सूसइ-आशङ्का		७१९१
ता मग्गिअ-सामान्य पुरुष		३१२६	दिट्ठा चूआ-नायक		१९७
ता कण्णं-अभागिन		२१४१	दिदमण्णु-भान		११७४
तालरममाउल-भँवर		११३७	दिदमूलबन्ध-दृढभाव		३१७६
तावच्चिअ-विभ्रम		११५	दीसइ ण चूअ-वसन्तागम		६१४२
तावमवणेइ-सुकैलि		७१८८	दीसन्तो णअणसुइ-दुष्प्राप्य		५१२१
ताविज्जन्ति-असमर्थता		११७	दीसन्तो दिट्ठिसुइ-लडली		७१११
ता सुहअ-अविचार		७१२	दीससि पिआणि-समस्या		५१८९
ताअ सुहाइ-पहेली		२१७९	दीहुणहपठर-दयामशबल व्रत		२१८५
तुङ्गाणं विसेस-रति समर		५१२७	दुकर देन्तो-सुखद दुःख		१११००
तुङ्गो च्चिअ-मनस्वी		३१८४	दुबखेई लम्भइ-कष्टसाध्य		४१५
तुङ्गद्वाराअ-उच्छिष्ट ग्रहण		२१८९	दुग्गअकुट्टुअ-दैन्य		१११८
तुङ्गद वमरत्ति-अनुराग		११४०	दुग्गअघरम्मि-दरिद्र पत्नी		५१७२
तुण्पाणणा-लज्जावनत		३८९	दुण्णिक्खेवअ-अर्पण		२१५४
तुइ दसणेण जणिओ-लज्जालु		७१२०	दुग्गेत्ति देत्ति-मदन शर		४२५
तुइ दसणे मअण्हा-दर्शनाभिलाषिणी		६१५	दुस्सिक्खिअरअ-रक्ष परीक्षा		७१२७
तुइ सुदसारीअ-विधि-विधान		३१७	दूइ तुम-नीतिचातुरी		२१८१
तुइ विरहुआगरओ-दुर्भाग्य		५८७	दूर्न्तरिप-अमगशील		७१५८
तुइ विरहे-विरह श्याकुल		११३४	देअम्मि पराट्ठे-बालू की भीत		३४५
ते अ जुआणा-आख्यान		६११७	देव्याअसम्मि-दैवापीन		३७१

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
दे सुअणु-उत्सव रजनी		५ ६६	पदिअवहू-अनुपारा		५१४०
दो अह्व-बानगी		७ २०	पदिउत्तरण-उक्ति		२ ६६
धण्णा ता महिलाओ-ध-या		४१७७	पाअटिअ सोइग्य-गाय बैल		५१६०
धण्णा वहिरा-अन्धे बहरे		७ ९७	पाअटिअणेइ-इष्टि चातुरी		२१९९
धण्णा वमन्ति-वर्षनीय प्राम		७३३५	पाअपटिअण-बलाकार		५१६५
परिओ परिओ-कामवाण		२११	पाअपटिअ-चरम सीमा		४१९०
धवलो अिअइ-दीर्घजीवी		७३३८	पाअपटिअरम-उपहाम		११११
धवलो सि जइ-विचरअन		७ ६५	पाअपटिओ-अनादर		५१३२
धारापुम्ब-न-कौए		६१६३	पाणउडीय-आत्मसर्पण		३१२७
धावर पुरवो-मागूस		५१-६	पालिगाइणे-पार्वती		११६९
धावर विअलिअ-शिणु मव		३१९१	पासासङ्की-सशक		३१५
धीरावलमित्रीअ-अन्नव्याथा		५१६७	पिअइसण-त्रिवदर्शन		४१२३
धुअइ -व-कलङ्क		३ ८०	पिअविरहो-शिष्टाचार		११२४
धूलिमइलो नि-डोल		६१२६	पिअमपरण-विरह-वथा		३१२२
पइपुरओ विअ-जार वैध		३१३७	पिअइ वणज-राजइसी		७३७६
पऊर जुवाणो-विबधना		११५७	पिसुणेनि कामिणोण-जलकीडा		६ ५८
पङ्कमइलेण-पङ्कमनि		६१६७	पुच्छिअ-ती-आलिङ्गन		७ ४७
पञ्चगण्ड-कुन्दकुमुम		६१९०	पुष्टि पुसइ-रहस्योदादन		४११३
पच्चुसमऊडावलि-प्रमान		७१४	पुणरुत्तरणकालण-नर्मदा		६१४८
पच्चुमागअ रअिन-दिनकर		७१-३	पुमइ खण-नखधुत		५१३३
पञ्चरसारी-रतिगुह		६१५२	पुसउ सुद-अक्ष प्रसाधन		७ ८१
पटिवकखमणु-स्तन		३१६०	पुमिओ षण्णा-विअम		४ २
पटम वामण-वामिन		५१२५	पेच्छइ अलङ्क-प्रेम-रक्षण		३१९६
पटमणिलीण-मसुओओ		५ ९५	पेच्छन्ति अणिमिस-राइगीर		४१८८
पणअकुविआण-भानसुक दमति		११७७	पेम्मस विरोहिअ-नीरसना		११३३
पणणिअन्धेणसा-अयामलाङ्की		६१५५	पोट्टपटिपदि-कृष्ण वर्ण		१ ८३
पणिअ ण पणिअन्नी-प्रमाण		३१२६	पोट्ट भरनि-उद्धार		३१८५
पत्तो छणो-इताइ		११६८	फग्गुच्छण-फग्गुबोरसव		४ ६९
पण्डुअणफकलम्बा-नेइ नीट		७ ३६	फलसपत्तीअ-अनुकूल प्रतिकूल		३१८२
परिओसविअसिपदि-अङ्गीकार		४१४१	फण्हावाइण-असदी		२१६५
परिओससुन्दरार-परितोष		६ ६८	फालेर अचरमअ-भान्ठ		३१९
परिमलणसुइ-काध्यालाप		५ २८	फुट्ट-वेण वि-मनो-वथा		३१४
परिरद्धकगअ-यामीण नायक		४ ९८	फुरिप वामच्छि-शकुल		२ ३७
परिहृवअ-कुट्टणो		२३४	वलिणो वामाण्णे-परदारापहारी		५१६
पतिअ पिअ-प्रओपर		४ ८४	वइलतमा-सुना धर		४ ३५
पनुवइणो-मगलाचरण		१११	वडुआइ-दीलमद		३११८
पहरवणमग-जायिका		११२१	वडुपुक-चेतावनी		२१३

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
बहुबलद्वय-मिठास		१।७२	मागदुमपरस-शुभकामना		४।४४
बहुविद्विलामरनिय-खडानुवन्धन		५।७७	माणुम्मत्ताइ-मानोम्मत्त		६।२२
बहुसो वि-पुनरुक्ति		२।९८	माणोसइ-औषध		३।७०
बालभ तुमाइ दिण्ण-बेरशुच्छ		५।१९	ममि सरसक्खराणो-वाणी वैशिश्य		५।५०
बालभ तुमाहि अहिअ-उद्देइव		३।२५	ममि हिअअ-बहुआ घूट		३।४६
बालभ दे वच्च-दयनीया		६।८७	मारोसि क ण-नयनवाण		६।४
भगगपिअसगम-ज्योरत्ता		५।९१	मालइकुमुमाई-सगुग निगुण		५।२६
भजस्तस्म-प्रहरी		२।६७	मालारीए वेत्तइल-मालिन		६।९८
भण को ण-असमय	४।१००		मालारी ललिउल्लुलिआ-व्याकुल		६।९६
भगन्तीअ-पक्षात्ताप		४।७९	मा वच्च पुष्प-शीलोन्मूलन		४।५५
भमइ पलित्तइ-जीवन-साथी		५।१४	मा वच्च वीसम-खल		७।८६
भम धम्मिअ-मुत्ताव		२।७५	मामपसूअ-रति रहम्य		३।५९
भरणमिअणोल-आधार		७।६०	मुद्धे अपत्तिअन्ती-मुग्धा		७।७८
भरिलच्चर-त-शोकात्तर		४।७७	मुइपुण्डरीअ-राजहस		७।२४
भरिमो से गहिआइर-स्मृति		१।७८	मुइपेच्छओ पइ-दर्शनाकांक्षी		५।९८
भरिमो से सअण-कपटनिद्रा		४।६८	मुइमारुपण-उपालम्भ		१।८९
भिच्छाअरों-भिष्ठाजावी		२।६२	मुइविज्जविअ-चौर रमण		४।३३
मुअसु स साहीण-लइ गरिमा		४।१६	मेइमहिसस्स-इन्द्रधनुष		६।८४
भोइणिदिण्णपद्देण-भोगिनी		७।३	इइकेलिहिअगि-रतिकेलि		५।५५
मअणविगणो-बेशमार		६।७७	इइविरमलज्जिआओ-रमणात्तर		५।१९
मग्ग विअ-फेन		७।६९	इइरोइ पुत्तअ-पथिक गृहिणी		७।२१
मज्झण्णपत्थिअस्स-मुखचन्द्र		४।९७	रण्णाउ तण-प्रम		३।८७
मज्झ पअणुअ-माग		७।८२	रत्थापरण्ण-प्रतीक्षा		२।४०
मज्झो पिओ-व्यापवली		६।९७	रन्धणकम्भ-सान्त्वना		१।१४
मण्णे आअण्णत्ता-बालव्यभिचारिणी		७।४३	रमिऊण पअ-रमण		१।९८
मण्णे आसाओ-अमृत		६।९३	रसिअ विअट्ट-समयश		५।५
मद वि ण-जामाना	६।१००		राअविरुद्ध-राजद्रोह		४।९६
मरण असूर्इ-सकेत स्थल		४।९४	रन्दारविद-वसतलक्ष्मी		६।७४
मसिण चङ्गमन्ती-वर्धनी		५।१३	रुअ अच्छीसु-भावना		२।३२
महमइर-अट्टोउ वृथ		५।०७	रुअ सिट्ठ-रूप		६।७३
महिलाण विअ-प्रवास		६।८६	रेइर गलन्त-विधाधरी		५।४६
महिणापइरस-सतसा		२।८२	रइत्ति कुमुअ-कुमुद		६।६१
महिसअखन्ध-वीणाअङ्कार		६।६०	रोवन्ति अब्ब अरण्णे-शिलोकीट		५।९४
महुमच्छिआर-मधुमक्षिवा		७।३४	लङ्कालभाण-लङ्कानिवासी		४।११
महुमाममारुआ-वसत		२।०८	लज्जा चत्ता-अपयश		६।२४
मा कुग पटिवस्स-गुरुमान		२।५२	लहुअग्नि-लघुवा		३।०५
मा जूर पिआ-छेद		४।१४	लुन्धीओ अङ्गण-दृष्टिशेष		४।२२

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
लोभो जूए-प्रलोभन		६।१९	वेसोसि जीअ-उपेक्षित		६।१०
वअणे वभणमि-हूँ हूँ		४।१३	वोडसुणभो-सकटाएअ		६।४९
वरविवर-विद्यापन		३।१७	वोलीगालविरुअ-वीरान		४।४०
वक्क को पुल-वकइष्टि		२।२४	मअणे विन्ना-अभिद्वन		२।३३
वक्कुच्छिउपेच्छिउ-षोडशी		२।७४	मकअग्गइरइ-मदिरा		६।५०
वज्ज वटणा-वन्दिनी		१।१४	मवेहिभो-वर्षागम		७।९४
वज्जदवमसि-विन्ध्य शोभा		२।१७	मच्च कएहे-कलइ		६।२१
वणअअयमल्लिअ-सको व		६।१९	मच्च जाणए-अनुराग		१।२०
वणअकमरइअरम-रेखाचित्र		७।१२	मच्च मगामि बालअ-उ माद		२।१५
वणअ-नीहिँ-भारीभूल		४।१०	मच्च मगामि मरणे-तृष्णा		३।३९
वणअवमिए-वशीकृत		५।७८	मच्च माइसु-चापउत्ती		७।८८
वन्दीअ गिहअ-गुणवैभव		२।१८	स नीवणोमइ-सुरक्षा		४।३६
वसइ जइ-एलप्रकृति		२।३१	ससागहिअजल-भिद्याभाव		७।१००
वसगमिअ-सत्पुरुष		४।८०	ससागभोःपरओ-नरत्तविद्ध		६।३९
वाआइ किं-विरइ दु ख		६।७१	ससाममए-शिव-गौरी		५।४८
वाउद्धअसिअअ-दन्नक्षत		६।७	मगिअ मणिअ-मोघ		५।१८
वाउलिआपरिसोसण-ग्रीष्म		७।२६	मत्त सत इ-अव परिचय		१।३
वाउवेहिअ-पट्टे के पीछे		७।१	मन्नमम त-कुलकलङ्किनी		६।१२
वाएरिएण-अनृत चुवन		२।७३	मभाव पुंउ-ना-सङ्गाव		४।१७
वावागविसवाअ-शुरुजन		७।१६	मभावणेइमरिए-आसक्ति		१।४१
वासारासे उणअ-काशकुसुम		५।३४	समविसमणिअविभेमा-मनोरथ		७।७३
वाहरउ म-प्रतिवच		०।३१	ममसोकएदुकए-आवन मरण		२।४२
वाहोइमरिअ-शरथ		६।१८	सरए मइइदाण-कुपित हृदय		२।८६
वाहिसा पट्टिवअण-नष्टस्थल		५।१६	सरए सरमिअ-तुलनीय		७।२२
वाहिव्व वेज्ज-विरइ		४।६३	सरसा वि सुमइ-पीतवर्ण		६।३३
विकिण्णइ-पामर जन		३।३८	सबाइणसुहरस-विकमादित्य		५।६४
विज्ज विअइ-अनुमरण		५।७	सवत्थदिमा-मेषमण्डल		२।१५
विज्जाअइणालाव-विन्ध्यारीहण		७।३१	सव्वरममिअ-मङ्गाव		३।२९
विण्णाणगुण-लज्ज नुमव		३।६७	सव्वाअरेण-प्रियजन		७।१०
विरइकावत्त-अशु		२।५३	सइइ सइइ रि-दुविदग्ग		१।५६
विइणालो-विरइ ज्वाला		१।४३	सइआहिँ-नलविद्ध		२।४५
विरहेण मन्दरेण-मन्दार पर्वत		५।७१	सइ ईरसिअविअ-प्रणय गति		१।१०
विरहे विस-विष पर्व अमृत		३।३५	सइ दुम्भेनि-कामदेव		०।७७
विवरिअसुअ-विपरीत रति		७।५४	सइ माइसु-अश		५।५३
विसमट्टिअपिके-शत्रुगृहिणी		६।०५	सा आम-हीन भावना		६।११
वीसत्थइसअ-दायित्व-भार		७।६	सा हुइ सइत्थ-निर्माल्य		२।९४
वेविरसिण-पञ्चाम्म		३।४४	सा तुज्ज वडइ-विहारयुक्त प्रेम		२।२६

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
मा तुह वएण-प्रत्याज्ञा		३१६२	सो अत्थो जो-वधार्थ		३५१
सामाह गरुअ-कर्णाभरण		५१३९	सो को वि गुणाह-नेत्रपान		६१९१
सामाह सामलिज्जह-रक्षण		२१८०	सो णाम समरिज्जह-रमृति		११९५
सालोएँ विअ-पाद प्रक्षालन		२१३०	सो तुज्ज कए-दूती		११८४
साहीणविअअमो-स्वाधीना		६११५	इसेहिँ वि तुह-मानसरोवर		५१७१
साहीणे वि विअअमे-कर्त्तव्य		११३९	इत्थप्पंसेण-अनुरक्ता		५१६२
सिक्करिअमणिअ-काम शिक्षण		४९२	इत्थाइत्थि-वर्षागम		६८०
सिद्धिपिच्छल्लिअ-प्रोत्साहन		११५२	इत्थेसु अ पाएसु-मुग्धा		४१७
सिद्धिपेहुणाव असा-मयूरपया		२१७३	इहिँहिँ विअरस-गमन निवारण		२१४३
सुअणु वअण-जिज्ञासा		३१६९	इत्थकलणहाण-वडप्पन		११७९
सुअणो ज देम-अलंकरण		११९४	इणणहलिहा-जिज्ञासा		११८०
सुअणो ण कुप्पह-सज्जन		३१५०	इमिअअदिट्ठदन्त-कुलवधु		६१२५
सुअखन्त वहलवहम-नलमदेश		५११४	इरिअ सहत्थ-उपहास		३१६३
सुअअपउरमिअ-पासा		२१३८	इमिअहिँ उवाअम्मा-मान वी रीति		६११३
सुन्दर जुआग-उद्विग्न		५१९२	इआमविअो जणो-प्रसूनिवर्जन		२१२३
सुप्पठ तहओ-शोफालिका		५१२२	इअअ इअए-प्रणय-पत्रिका		४१८५
सुप्प डडू-व्यर्थ		६१५७	इअअ अवेअ-दारिद्र्य दुख		३९०
सुइउअअ-कृतज्ञताशापन		१५०	इअअअट्ठिअरस-मोहासक्त		३१०८
सुइपच्छिआर-कटु औपधि		४१७	इअअअणएहिँ-प्रतीति		११६१
सुइज्जइ हेम-दरिद्रता		४१२९	इअअअमि अमसि-प्रेम शक्का		६१८
सुइविहे मुसल-तिल का ताड		६११	इअअअहि-तो-कपट वचन		५१५१
सुइअल्लेण-व्याक्ष		४१३२	हेमन्तिआसु-लोकापवाद		११६६
सेअअल्लेण-त्रिवली		३७८	हेअकरग्ग-गणःपिपति		५१३
सेअल्लिअअअवयो-दूती		५१४०	इओ-तपहिअरस-विश के क्षण		११४७
			इओन्वी वि गिप्फल-निष्फल		२१३६

परिशिष्ट (ख)

कवि एवं कवयित्री

गा.	क्र	पीतांबर	भुवनपाल	गा	क्र	पीतांबर	भुवनपाल
१	१	शालिवाहन	हाल	१	२६	अर्धराज्य	वत्सराज
"	२	०	०	"	२७	कुमार	वत्सराज
"	३	हाल कु	पोष्टिस	"	२८	प्रणाम	कुनाल
"	४	योदित, बोद्धिस कु	मालाहाग	"	२९	शल्याग	०
"	५	त्रिलोक, चुलोह कु	चलोय	"	३०	हरिनन	हरिराज
"	६	मकरन्द	मथरन्दसेर	"	३१	अगराज	दाक्षपतिराज
"	७	प्रवरराज, अमरराज कु	०	"	३२	भोगिव	भोज
"	८	कुमारिल	कुमारिल	"	३३	अनग	अनादेव
"	९	०	महिभूपाल	"	३४	अनग	रविराज
"	१०	अनाज सिरिराज कु	दुर्गस्वामिन्	"	३५	शालिवाहन	हाल
"	११	०	दुर्गस्वामिन्	"	३६	मछोष	माहिल
"	१२	दुर्गस्वामिन्	०	"	३७	अवक	अवक
"	१३	हाल कु	हाल	"	३८	०	चुलोटक
"	१४	भोमस्वामिन्, कु ग	०	"	३९	कविराज	विन्ध्य
"	१५	राजसिंह	रुद्रसुत	"	४०	०	सुग्ग
"	१६	शालिवाहन	श्री दातवाहन	"	४१	नाथा	रोहा
"	१७	०	श्रीवर्मग	"	४२	बह्म	बह्म
"	१८	०	श्रीवर्मग	"	४३	अमृत	वैरमिह
"	१९	गज	गुण	"	४४	रतिराज	कविराज
"	२०	च द्रस्वामिन्	वर्ष	"	४५	प्रवरराज	प्रवरराज
"	२१	बलिराज	कलिग	"	४६	रूप	मेष
"	२२	०	बहुराज	"	४७	सिंह	साहल
"	२३	मकरन्द	मेघाथकार	"	४८	अनिरुद्ध	अनिरुद्ध
"	२४	ब्रह्मचारिन्	ब्रह्मचारिन्	"	४९	सुरभवसल	सुरभवक्ष
"	२५	जालसार	कालसार	"	५०	स्वर्गवर्म	गजवर्म
				"	५१	काल	हाल
				"	५२	वैशार	वेरल
				"	५३	ममथ	षण्मुत्त
				"	५४	वर्ण	वर्णराज
				"	५५	कुसुमायुध	कुसुमायुध

गा. क्र.	पीतांबर	भुवनपाल	गा. क्र.	पीतांबर	भुवनपाल
१	५६ गजलज्ज.	गृहलपित	१	९३ वज	बडुक
२	५७ मकरंद.	'करमदशेक	२	९४ हारकुन.	परकुन
३	५८ असदृश.	असद	३	९५ वप्रराज.	वाक्पनिराज
४	५९ मुग्धाधिप.	हृणाधिप	४	९६ स्थिरमाहम.	स्थिरसाहस
५	६० मुग्धाधिप.	विग्जहृराज	५	९७ वप्रराज.	०
६	६१ मुग्धाधिप.	निचित्र	६	९८ मकरन्द.	नन्नराज
७	६२ ब्रह्मराज.	ईश्वरराज	७	९९ आशक्तिक.	धर्मण
८	६३ कालित.	पालिक	८	१०० श्रीशक्तिक.	नरनाथ
९	६४ प्रवरसेन.	सयरसेन	९	१ मान	मान
१०	६५ मुसुराज.	आढ्यराज	१०	२ मान	ग्रामर्णोक
११	६६ धीर.	कृष्टमदिर	११	३ मान	महादय
१२	६७ धीर.	कोटिलक	१२	४ मान.	श्रीधर्मिल
१३	६८ कालाधिपर.	चित्तराज	१३	५ महादेव.	दामोदर
१४	६९ अनुराग.	धृवरराज	१४	६ दामोदर.	०
१५	७० अनुराग.	चन्द्रपुट्टिका	१५	७ अर्लाक.	महादेव
१६	७१ ०	मुद्दसील	१६	८ अमर.	चमर
१७	७२ ०	अज्ज	१७	९ कालनिह	कालियसिंह
१८	७३ वसलक.	पीतहर्म्यंग	१८	१० मृगाक.	रसिक
१९	७४ पौलिनय.	पालित्तक	१९	११ मृगाक.	ताराभद्रक
२०	७५ ०	वासुदेव	२०	१२ निधिभिग्रह.	नारायण
२१	७६ भीमविक्रम.	भोमविक्रम	२१	१३ मुद्.	मृगेंद्र
२२	७७ विनयायिन.	विरयादित	२२	१४ बुर.	शुरप
२३	७८ मुक्तापर.	मुक्तापल	२३	१५ कमल.	कमलाकर
२४	७९ काटिह.	काटिलक	२४	१६ हालिक.	ललित
२५	८० मकरन्द.	मधुकर	२५	१७ शालिवाहन.	काहिल
२६	८१ स्वामिक.	मधुकर	२६	१८ शालिवाहन.	कृष्णराज
२७	८२ स्वामिक.	स्वामिन्	२७	१९ शालिवाहन.	स्कददाम
२८	८३ कूनशशील.	कूनपुराशील	२८	२० शालिवाहन	०
२९	८४ ईशान.	निषट्ट	२९	२१ गधराज	०
३०	८५ आदिवराह.	आदिवराह	३०	२२ कर्णपुत्र.	कर्णपूर
३१	८६ प्रह्ला.	धृषिवा	३१	२३ अविराग.	अनुराग
३२	८७ रेवा.	रेवती	३२	२४ राम.	राम
३३	८८ ग्रामकूट.	ग्रामकूटिका	३३	२५ राम.	प्रवरसेन
३४	८९ पोट.	पुट्टिस	३४	२६ उजय	०
३५	९० रेवा.	०	३५	२७ शालिवाहन.	०
३६	९१ गम्भदेव	०	३६	२८ शालि.	ग्रामकूटिका
३७	९२ मानग	मानंग	३७	२९ शालिक.	स्वामिन्

गा. क्र.	पीतांबर	भुवनपाल	गा. क्र.	पीतांबर	भुवनपाल
२	३० शालिवाहन.	नरभिवृक्ष	२	६७ ०	आद्यराज
"	३१ सोमराज.	बोगराज	"	६८ ०	महिषासुर
"	३२ ०	०	"	६९ ०	पुण्डरीक
"	३३ ब्रह्मगनि	०	"	७० ०	०
"	३४ विकमराज	०	"	७१ ०	नरवाहन
"	३५ कीर्तिराज.	पीतिरमिक	"	७२ ०	मवंभवामिन्
"	३६ कुदपुत्र.	मडुष्क	"	७३ ०	०
"	३७ शक्तिहस्त.	माधव	"	७४ ०	०
"	३८ ०	देवराज	"	७५ ०	व्याम्रभवामिन्
"	३९ अनुराज.	अनुराज	"	७६ ०	आन्ध्रलक्ष्मी
"	४० ०	हाल	"	७७ ०	नागधर्म
"	४१ वैरशक्ति.	रवशक्ति	"	७८ ०	०
"	४२ ०	बधुधर्मन्	"	७९ ०	हल्ल
"	४३ ०	०	"	८० ०	अविरत
"	४४ बलयोपित.	मालवाधिप	"	८१ ०	माधवशक्ति
"	४५ बलयीपित.	मालवाधिप	"	८२ ०	नागभट्ट
"	४६ ०	विजयशक्ति	"	८३ ०	अचल
"	४७ ०	हाल	"	८४ ०	हाल
"	४८ ०	विरहागेल	"	८५ ०	साहस
"	४९ ०	अवरक	"	८६ ०	निकोप
"	५० ०	केशवराज	"	८७ ०	शक्त
"	५१ कलव	निभरक	"	८८ ०	०
"	५२ ०	मानग	"	८९ ०	अनगदेव
"	५३ ०	मातुल	"	९० ०	धर्मिण
"	५४ ०	सवज्ज	"	९१ ०	हाल
"	५५ ०	मगलबालरा	"	९२ ०	मदाहड
"	५६ ०	हाल	"	९३ ०	रिधरविच
"	५७ ०	प्रवरराज	"	९४ ०	काटिल
"	५८ ०	०	"	९५ ०	गागिल
"	५९ ०	हरिकेशव	"	९६ ०	वत्सराज
"	६० ०	शुगाळ्य	"	९७ ०	भान
"	६१ ०	भानूक	"	९८ ०	कशपुत्र
"	६२ ०	रवधर्मग	"	९९ ०	हरिवृद्ध
"	६३ ०	रेदा	"	१०० ०	मगिनाग
"	६४ ०	हाल	३	१ ०	राप्रदेव
"	६५ ०	काठिलक	"	२ ०	प्रवरसेन
"	६६ ०	स्वामिन्	"	३ ०	कुशलइतिन्

गा.	क्र.	पीतांबर	मुवनपाल	गा	क्र.	पीतांबर	मुवनपाल
३	४	०	बधुदत्त	३	४१	०	ममथ
"	५	०	हाल	"	४२	०	बलमट्ट
"	६	०	०	"	४३	०	सुदर
"	७	०	नागहरितन्	"	४४	०	इहक
"	८	०	प्रवरसेन	"	४५	०	रोल्देव
"	९	०	भानुशक्ति	"	४६	०	०
"	१०	०	माधवराज	"	४७	०	हाडुछ
"	११	०	अनग	"	४८	०	सुचरित
"	१२	०	अहमरि	"	४९	०	सुवक
"	१३	०	त्रिविक्रम	"	५०	०	सम्जन
"	१४	०	०	"	५१	०	हाल
"	१५	०	हाल	"	५२	०	रिद्र
"	१६	०	सर्वसेन	"	५३	०	०
"	१७	०	पालितक	"	५४	०	पालितक
"	१८	०	आढ्यराज	"	५५	०	गोविंदस्वामिन्
"	१९	०	देवराज	"	५६	०	पालितक
"	२०	०	अरिकेसरिन्	"	५७	०	पालितक
"	२१	०	मह्यचारिन्	"	५८	०	कविराज
"	२२	०	अनवरत	"	५९	०	हाल
"	२३	०	०	"	६०	०	ऊर्ध्वेश
"	२४	०	०	"	६१	०	दुर्विदग्ध
"	२५	०	मकरन्द	"	६२	०	पालितक
"	२६	०	विक्रम	"	६३	०	आभलक्ष्मी
"	२७	०	हाल	"	६४	०	सुईक
"	२८	०	आभलक्ष्मी	"	६५	०	हाल
"	२९	०	बलभे	"	६६	०	पराकम
"	३०	०	असमसाह	"	६७	०	समुद्रेशक्ति
"	३१	०	०	"	६८	०	हाल
"	३२	०	निरुपम	"	६९	०	मिघनील
"	३३	०	सर्वसेन	"	७०	०	राघव
"	३४	०	आढ्यराज	"	७१	०	पर्वतकुमार
"	३५	०	हाल	"	७२	०	०
"	३६	०	वेङ्कट	"	७३	०	हाल
"	३७	०	मलसेन	"	७४	०	०
"	३८	०	०	"	७५	०	ईशान
"	३९	०	अनुराग	"	७६	०	समरस
"	४०	०	०	"	७७	०	निरवमह

गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल	गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल
३ ७८ ०	हाल	४ १५ ०	नागहस्तिन्
" ७९ ०	जीवदेव	" १६ ०	त्रिभोजन
" ८० ०	विन्ध्यराज	" १७ ०	यष्टस्तामिन्
" ८१ ०	विजुद्धशौल	" १८ ०	श्रीमाधव
" ८२ ०	०	" १९ ०	अवन्तिवर्मन
" ८३ ०	अलकार	" २० ०	प्रवरराज
" ८४ ०	०	" २१ ०	०
" ८५ ०	अभिनवगजेंद्र	" २२ ०	हम
" ८६ ०	०	" २३ ०	हम
" ८७ ०	रत्नानर	" २४ ०	सुतोदक
" ८८ ०	हरिसृग	" २५ ०	सुतोदक
" ८९ ०	लक्ष्मण	" २६ ०	- हाल
" ९० ०	कृष्णचित्त	" २७ ०	महासेन
" ९१ ०	कृष्णराज	" २८ ०	धनजय
" ९२ ०	राज्यधर्मन	" २९ ०	कृष्णचरित्र
" ९३ ०	पाहिल	" ३० ०	प्रमथ
" ९४ ०	मधुसूदन	" ३१ ०	महाराज
" ९५ ०	गल	" ३२ ०	वज्रदेव
" ९६ ०	विषद	" ३३ ०	विरहानक
" ९७ ०	मन्त्रविपनाक	" ३४ ०	आरु
" ९८ ०	मर्वस्वामिन्	" ३५ ०	कैवर्ष
" ९९ ०	कीर्तिवर्मन	" ३६ ०	भूतदत्त
" १०० ०	आउर	" ३७ ०	महादेव
४ १ ०	शिराडिन्	" ३८ ०	विषतेन
" २ ०	वल्मचिह्न	" ३९ ०	हाल
" ३ ०	माधव	" ४० ०	प्रवरराज
" ४ ०	शशिप्रभा	" ४१ ०	जीवदेव
" ५ ०	ग्रामकुट्टिका	" ४२ ०	पाणराज
" ६ ०	सुप्रोव	" ४३ ०	पाहिल
" ७ ०	०	" ४४ ०	सुतोदक
" ८ ०	भूराज	" ४५ ०	कैलाम
" ९ ०	०	" ४६ ०	मदर
" १० ०	सुदर्शन	" ४७ ०	मन्त्रिवराज
" ११ ०	अनुगा	" ४८ ०	शेखर
" १२ ०	हाल	" ४९ ०	नागहस्तिन्
" १३ ०	रुडिन्	" ५० ०	०
" १४ ०	नरानि	" ५१ ०	चंद्रक
		" ५२ ०	कदलगृह

गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल	गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल
४ ५३ ०	मिधराज	४ ९० शालिवाहन	तारामट्ट
५ ५४ ०	नकुल	५ ९१ ०	हाल
६ ५५ ०	नरन	६ ९२ नन्दिपुत्र	०
७ ५६ ०	अशोक	७ ९३ पालित	पालितक
८ ५७ ०	०	८ ९४ पालित	वयरय
९ ५८ ०	गुणनदिन्	९ ९५ मानस्वामिन्	०
१० ५९ ०	जयकुमार	१० ९६ बहण	श्रादत्त
११ ६० ०	०	११ ९७ मलयशेखर	मलयशेखर
१२ ६१ ०	रोलदेव	१२ ९८ ०	०
१३ ६२ ०	ब्रह्महृक	१३ ९९ मंगलकलश	मालवलश
१४ ६३ ०	वासुदेव	१४ १०० महोदधि	महोदधि
१५ ६४ ०	विशाल	१५ १ शालवाहन	०
१६ ६५ ०	विक्रमादित्य	१६ २ विम्वहराज	०
१७ ६६ ०	०	१७ ३ ०	०
१८ ६७ ०	राहव	१८ ४ कट्टिल	०
१९ ६८ ०	०	१९ ५ ब्रह्मचारिन्	०
२० ६९ ०	०	२० ६ ०	०
२१ ७० ०	वसुगव	२१ ७ ०	०
२२ ७१ ०	हाल	२२ ८ शालवाहन	०
२३ ७२ ०	हाल	२३ ९ शालवाहन	०
२४ ७३ ०	नागहस्तिन्	२४ १० ०	ध्वानदन
२५ ७४ ०	दुग्दहक	२५ ११ ०	०
२६ ७५ ०	अनुराग	२६ १२ आशक्ति	नील
२७ ७६ ०	मानुराज	२७ १३ शकर	श्रीदत्त
२८ ७७ ०	विशेषरसिक	२८ १४ शालवाहन	स्वभाव
२९ ७८ ०	वस्यागमिह	२९ १५ ब्रह्मदत्त	ब्रह्मदत्त
३० ७९ ०	सवमर	३० १६ रोलदेव	रोलदेव
३१ ८० प्रतान	मृणाल	३१ १७ पालित	देवदेव
३२ ८१ केशव	वैशव	३२ १८ देवदेव	०
३३ ८२ नीलमानु	शिल्भि	३३ १९ तुहक	भुजग
३४ ८३ मत्तगजेंद्र	मत्तगजेंद्र	३४ २० शालवाहन	०
३५ ८४ कुविद	कृषिद	३५ २१ राजरमिक	प्रवरराज
३६ ८५ अह	०	३६ २२ दशरथ	मुग्धहरिण
३७ ८६ दुर्दर	दुर्दर	३७ २३ सरण	परवल
३८ ८७ दुर्दर	०	३८ २४ कवणतुग	वाचनतुग
३९ ८८ सुगमिवत्स	०	३९ २५ पालित	स्फुटिक
४० ८९ सुरमिवत्स	विरहानल	४० २६ मृगावलक्ष्मी	०
		४१ २७ लक्ष्मण	स्फुटिक

गा. क्र. पीतांबर	मुचनपाल	गा. क्र. पीतांबर	मुचनपाल
५ २८ पोणिस	विपप्रथि	५ ६५ शालवाहन	हाल
२९ मकरद	०	७६ पोणिस	पोणिस
३०	रामदेव	६७ पृथ्वीनाथ	वृद्धिन
३१ शालवाहन	०	६८ पृथ्वीनाथ	वृद्धिन
३२ मान	पालितक	६९ ०	मतुल
३३ पालिन	कुमारदेव	७० चुहोन	चुहोदथ
३४ पालिन	०	७१ चुहोन	हाल
३५ ०	०	७२ मुकुन्द	इन्द्र
३६ शालवाहन	०	७३ अनगव	अनङ्गदेव
३७ वहिल	०	७४ गुणाद्वय	गुणगुग्धा
३८ उहोल	०	७५ शालवाहन	आम्भरक्ष्मी
३९ अट्टराज	हाल	७६ आ भ्रलक्ष्मी	आ भ्रलक्ष्मी
४० माधव	मार्गशक्ति	७७ वहिल	साहाल
४१ सरप्रह	सरप्रहण	७८ वराह	वराह
४२ मुग्ध	वर्षधर्मन्	७९ सेनेन्द्र	कुमिमोगिन्
४३ गजेन्द्र	उत्त	८० नि मह	निपद्
४४ गजेन्द्र	दोसीर	८१ प्रवरसेन	परमेश्वर
४५ जोज्जदेव	पेष्टा	८२ दुर्लभराज	दुर्लभराज
४६ कैशोराय	बल फत	८३ नि मह	०
४७ शालवाहन	देव	८४ हरिराज	हरिराज
४८ शालवाहन	०	८५ विदग्ध	धृवमट्ट
४९ कुमारिल	विन्ध्यराज	८६ अजय	सुद्रक
५० कुमारिल	विन्ध्यराज	८७ महादेव	विद्याचार्य
५१ चारदत्त	विष्णुना	८८ वनगन	वनदेव
५२ विष्णुराज	कुन्ददत्त	८९ राघव	राघव
५३ वञ्जलराय	कर्णराज	९० राघव	०
५४ दुर्गराज	दुर्गराज	९१ दूरमान	दूरामर्ष
५५ शालवाहन	वसन	९२ विरहविलास	०
५६ वसन	वसन	९३ विन्ध्य	दुष
५७ ०	वासुदेव	९४ दुर्लभराज	हाल
५८ चुहोन	चुहोदक	९५ परमेश्वर	०
५९ चुहोन,	धवल	९६ दुद्रकूट	दुर्गस्वामिन्
६० चुहोन	वहम	९७ माधव	विन्ध्यराज
६१ शालवाहन	रोहा	९८ शालवाहन	रोहदेव
६२ रेखा	रोहा	९९ ०	०
६३ रेखा	सवरराज	१०० शालवाहन	बुद्धमट्ट
६४ पादवशवनिन्	हाल	६ १ विक्रममानु	विक्रान्तमानु

गा.	क्र.	पीतांबर	भुवनपाल	गा	क्र	पीतांबर	भुवनपाल
६	२	सर्वसेन	शिवराज	६	३९	०	अनुभङ्ग
"	३	सर्वसेन	सलवण	"	४०	०	स्पदन
"	४	महिषासुर,	महिषासुर	"	४१	०	०
"	५	श्यामाधव	आन्ध्रलक्ष्मा	"	४२	०	आदित्यसेन
"	६	रेखा	वनकेसरिन्	"	४३	०	आदित्यसेन
"	७	वेशव	सभ्रम	"	४४	०	०
१५	८	रोलदेव	०	"	४५	०	पालित्तक
"	९	०	जयदास	"	४६	०	सिरिसत्ता
"	१०	रमिह	जयदेव	"	४७	०	०
"	११	यश सिंह	जयसिंह	"	४८	०	०
"	१२	बहुबल	साधुवलित	"	४९	०	कालिंग
१५	१३	कुमारिल	भुमति	"	५०	०	०
"	१४	मन्मथ	ब्रह्मभट्ट	"	५१	०	०
"	१५	इश्वर	गिरिसता	"	५२	०	हाल
"	१६	ईश्वर	अभिमान	"	५३	०	बाणसूर
"	१७	शालवाहन	हाल	"	५४	०	०
"	१८	०	रघुवाहन	"	५५	०	विद्व
"	१९	०	विपश्चावित्क	"	६४	०	शातवाहन
"	२०	०	सरस्वता	"	६५	प्रवरसेन	प्रवर
"	२१	०	कालदेव	"	६६	कलश	बलशचिह्न
"	२२	०	अनुराग	"	६७	बहुगुण	बहुगुण
"	२३	०	बलितसिंह	"	६८	शालवाहन	प्रमराज
"	२४	०	तारागण	"	६९	चामीकर	अर्जुन
"	२५	०	आन्ध्रलक्ष्मा	"	७०	०	अर्जुन
"	२६	०	०	"	७१	चारुदत्त	अर्जुन
"	२७	०	हर्ष	"	७२	चारुदत्त	कन्वाहनर
"	२८	०	०	"	७३	देहल	भोगिन्
"	२९	०	०	"	७४	इद्रराज	इद्रराज
"	३०	०	शिव	"	७५	अनुराग	हाल
"	३१	०	गगढ	"	७६	समर्थ	अनप
"	३२	०	जयतकुमार	"	७७	इ दीवर	इद्रकर
"	३३	०	बहुव	"	७८	पालिन	पालित्त
"	३४	०	०	"	७९	अनुसाहव	पालित्तक
"	३५	०	रुद्रराज	"	८०	शालवाहन	०
"	३६	०	अर्जुन	"	८१	नारायण	वाडिहर
"	३७	०	अनग	"	८२	चुहोह	आन्ध्रलक्ष्मी
"	३८	०	अनुभङ्ग	"	८३	जावदेव	जावदेव

शा.	क्र.	पीतांबर	मुयनपाठ	शा.	क्र.	पीतांबर	मुयनपाठ
६	८४	शेखरा.	श्रीव्या	७	२१	शास्त्रवाहन.	०
"	८५	०	शेखरा	"	२२	शास्त्रवाहन.	०
"	८६	शेखर.	शंभुपट्ट	"	२३	पालिन.	०
"	८७	मुग्धहरिन.	बाग	"	२४	रोहा.	०
"	८८	सार.	माग	"	२५	माधव.	मदन
"	८९	सार.	शरटं	"	२६	विद्युत्.	०
"	९०	सार.	शुगानुगाव	"	२७	०	०
"	९१	कुमार.	माधवधिय	"	२८	शास्त्रवाहन.	०
"	९२	अनंग	माहल	"	२९	शास्त्रवाहन.	०
"	९३	अनंग.	देव	"	३०	बोधा.	०
"	९४	पोटिम.	०	"	३१	०	०
"	९५	भीमस्वामिन्.	०	"	३२	०	०
"	९६	शालवाहन.	०	"	३३	०	०
"	९७	०	०	"	३४	०	०
"	९८	शास्त्रवाहन.	०	"	३५	०	०
"	९९	मरगन्दसेन.	०	"	३६	०	०
"	१००	०	०	"	३७	०	०
७	१	सुतोद.	०	"	३८	०	०
"	२	सुतोद.	०	"	३९	०	०
"	३	सुतोद.	०	"	४०	०	०
"	४	दुर्लभराज.	गोमन	"	४१	०	०
"	५	शालवाहन.	रेखा	"	४२	०	०
"	६	शास्त्रवाहन.	विन्ध्याधिप	"	४३	०	०
"	७	महिषासुर	जीवदेव	"	४४	०	०
"	८	पोटिम	अरदेव	"	४५	०	०
"	९	पालिन.	अनराजिन	"	४६	०	०
"	१०	चन्द्रोद	सुरोदक	"	४७	०	०
"	११	भामस्वामिन्.	गणरति	"	४८	०	०
"	१२	भीमस्वामिन्.	विध	"	४९	०	०
"	१३	मुग्धराज.	रविराज	"	५०	०	०
"	१४	मेषचन्द्र.	बोधादेव	"	५१	०	०
"	१५	मेषचन्द्र.	सुगन्धिवृक्ष	"	५२	०	०
"	१६	वाक्पतिराज.	०	"	५३	शास्त्रवाहन.	०
"	१७	वाक्पतिराज.	कुम्भरणी, कुम्भ ?	"	५४	०	०
"	१८	वाक्पतिराज.	कुम्भरणी, कुम्भ ?	"	५५	०	०
"	१९	शास्त्रवाहन.	०	"	५६	०	०
"	२०	अनुराग.	शोभसुन्द	"	५७	०	०
"				"	५८	०	०

[१८८]

गा. क्र. पीतांबर	मुवनपाल	गा. क्र. पीतांबर	मुवनपाल
७१ ५९ ०	०	११ ७९ ०	०
११ ६० ०	०	११ ८० ०	०
११ ६१ ०	०	११ ८१ ०	०
११ ६२ ०	०	११ ८२ ०	०
११ ६३ ०	०	११ ८३ ०	०
११ ६४ ०	०	११ ८४ ०	०
११ ६५ ०	०	११ ८५ ०	०
११ ६६ ०	०	११ ८६ ०	०
११ ६७ ०	०	११ ८७ ०	०
११ ६८ ०	०	११ ८८ ०	०
११ ६९ ०	०	११ ८९ ०	०
११ ७० ०	०	११ ९० ०	०
११ ७१ ०	०	११ ९१ ०	०
११ ७२ ०	०	११ ९२ ०	०
११ ७३ ०	०	११ ९३ ०	०
११ ७४ ०	०	११ ९४ ०	०
११ ७५ ०	०	११ ९५ ०	०
११ ७६ ०	०	११ ९६ ०	०
११ ७७ ०	०	११ ९७ ०	०
११ ७८ ०	०	११ ९८ ०	०
		११ ९९ ०	०



गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल	गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल
७१ ५९ ०	०	११ ७९ ०	०
११ ६० ०	०	११ ८० ०	०
११ ६१ ०	०	११ ८१ ०	०
११ ६२ ०	०	११ ८२ ०	०
११ ६३ ०	०	११ ८३ ०	०
११ ६४ ०	०	११ ८४ ०	०
११ ६५ ०	०	११ ८५ ०	०
११ ६६ ०	०	११ ८६ ०	०
११ ६७ ०	०	११ ८७ ०	०
११ ६८ ०	०	११ ८८ ०	०
११ ६९ ०	०	११ ८९ ०	०
११ ७० ०	०	११ ९० ०	०
११ ७१ ०	०	११ ९१ ०	०
११ ७२ ०	०	११ ९२ ०	०
११ ७३ ०	०	११ ९३ ०	०
११ ७४ ०	०	११ ९४ ०	०
११ ७५ ०	०	११ ९५ ०	०
११ ७६ ०	०	११ ९६ ०	०
११ ७७ ०	०	११ ९७ ०	०
११ ७८ ०	०	११ ९८ ०	०



परिशिष्ट (ग)

प्रमुख प्राकृत शब्द-सूची

अआणन्ती २।५५, ५।३३	अपत्ति अ-नी ७।७८
अआणमाण ३।४३	अवहृत्थिअ ४।५३
अदरा ७।७३	अपद्रुत्त ३।७७, ५।३६
अरिक्किम्मि २।८८	अपद्रुप्पन्न ५।२१
अरुसन्ते २।४४	अप्पाहेर ७।३२
अरुमन्तो ३।२४	अप्पेइ २।१००
अकअणुअ ५।४५	अक्कुण्णअन्तोए ३।६४
अकलाग अ ६।१७	अक्कमत्थिओ ५।२१
अच्छउ २।६८, ३।१	अमअ ३।१३
अच्छन्ति ४।४२	अम अमआ ३।३५
अच्छसल २।९	अमिअ १।२
अच्छिअइ २।८३	अमुगिअ ४।४५, ६६
अच्छेर २।२५, ३।२२	अमाअन्न ३।७८
अच्छोडिअ २।६०	अमाअन्नी २।८२
अअअ २।८४	अमाअन्ने ६।७९
अट्टिअ ५।३	अम्वाण ४।९६
अड्डमणा २।९३, २।७, ४।५५, ७।६२	अल्लिअरि ७।६३
अणहा ३।७२	अल्लिअर २।९०, ५।४५
अणिसत्तामु २।४५	अलाहि २।२७
अणुमरण ५।४९, ७।३३	अलिहिअइ ७।९०
अणुमिक्खरी ४।७८	अवउइमु २।८४
अणोह ६।४०	अवगिअइ ६।२०
अणहोन्त ३।१२	अवहृत्थिअण २।५८
अण्ह ४।३७	अवहासिणी ७।९७
अण्णा २।२३	अवहीरण २।४६
अणुअ ३।७५	अवहो ७।८७
अत्ता २।८, ६।४२, ४९, ७।५२	अवेइ २।८२
अत्थक ४।८६, ७।७५	अवो ३।७३, ४।६, ६।८०
अत्थेका ५।३७	असइत्ता ३।२९
अत्थमगम्मि २।८४	अमन्दिआण ७।९७
अन्तोदुत्त ४।७३	असामअ ३।४७

अहमहमिआह ६।८०
 अहयवे ४।९०
 अहिआअ १।३८, ३।६६
 अहिलेन्ति ४ ६६
 अस २।५३, ४।२
 आअट्टइ ४।७९
 आअट्टिअ ६।२४
 आअण्णपेग २।६६
 आउत्तण ५।१००
 आउत्तण ५।७२
 आकरोव आई ३।४२
 आणहँ ५।३८
 आणन्त १।५०
 आणन्दवड ५।१७
 आणन्दिवर ६।६७
 आणिमो ६।८९, ९१
 आणसे ३।४
 आम ५।१७, ६।११, ७८
 आरसइ ३।५३
 आवण्णुरत्तण ४।७४
 आवण्णाइ ५।६७
 आससु २।७०, ६।६५
 आसासेइ ३।८३
 आहिजार्प १।२४, ३।६५
 इण १।६७
 इस ४।२७
 इसाअन्ति ३।४०
 इसासुओ २।५९, ७।३४
 इत्तिअ ६।१०
 ईसीस ५।४४
 ईसीसि ४।७०
 उअ १।७५, ५।६१, ७।४०, ७९, ८०
 उअह १।१८, ६२, ६३, २।९, २०, ३।४१,
 ८०, ४।५९, ५।३६, ६०, ६।३, ३४,
 ६२, ७।२४, ४२
 उअवत्तिअ ७।९७
 उअेइ २।५९
 उअ्हु ६।४१

उवउहसु ६।८२
 उअ्हुअस्स ५।२४
 उअ्हुआ ५।३८
 उअ्हुण ७।७७
 उअ्हुसि १।७१
 उअ्हुइ ३।१८
 उअ्हुणामन्ते ६।१८
 उअ्हाई १।३३
 उअ्हुअ १।६७
 उअ्हुअ ६।८५
 उअ्हुइ २।७१
 उअ्हुहिआइ २।९६
 उअ्हुइ १।३७
 उअ्हुमन्ति २।९१
 उअ्हुत्तविरिणो २।७४
 उअ्हावो ६।१४
 उअ्हुअइ ६।९६
 उअ्हुअइ ६।९६
 उअ्हाइ ६।४०
 उवउहसु ६।८२
 उवउहाओ ५।७७
 उवउरिआ ५।७४
 उवउसिअ २।९४
 उवउसिआप ४।१२
 उअ ३।४१, ४।९७, ६।७९
 उअ्हुमेअस्स ५।१६, ६।१६
 उअ्हुअ ७।१८
 उअ्हुइ १।३२, ६७, ९२, २।४९, ४।७, ७२,
 ५।६६, ६।६, १९, ३७, ७।३७
 उअ्हाण १।३८
 उअ्हाइ १।९०, ४।४७, ५।२३, ७।३
 उअ्हासिअ ६।४४
 उअ्हासिअ २।२१
 उअ्हाओ १।८५
 उअ्हाइ ४।३, ६।५३
 उअ्हाइनेत्त ३।५७
 उअ्हास १।८७

एन्ते ७६२
 एमेअ १८६, ८२; २१९
 षडिह ११७, २३७
 षडिसि ४८५
 ओभत्ते ७५४
 ओअन्न ३५
 ओइण्ण १६३
 ओगलिअ ३५
 ओच्छ ७२१
 ओअर ७३६
 ओमालिअ २१५
 ओरण्ण ६३८, ७११
 ओळ ३१९
 ओळ ५७३
 ओहिअन्त ७२१
 ओहिअिह ७४०
 ओहे ६४०
 ओलेह ७३७
 ओसरह ३७८, ६३१
 ओसरमु ५५१
 ओमहिअ ४४६
 ओसाहन्ते ७३६
 ओमसर ३६२
 ओहि ५३७
 कइअव १८५, २१४, ५६
 कइआवि ३१२
 कइवचइलेग १३
 कअण्ड २८१
 कयिरि १५७, ४६
 कइलि ३७९, ५४
 कअदा ७८४
 कअरआ ६४५, ७२०
 कइमि ५१
 कइह ५३५
 कइअण ४२४
 कइअन्ती ७८७
 कइतेग ७६३

कण्डुअन्तीए ५६०
 कण्ड १८९; २१२, १४, ५४७
 कत्तो १७२; ६४३, ७८८
 कन्तो ४१९
 कन्दोइ ७२२
 कयिरि ७५९
 कअरि ६२७
 कयिरि १५४, ५७
 कयिअसु २५४, ८१
 कयिहिमि २८७
 कयिअसु २८१, ७३२
 कअम्ब १३७, ६६५, ७३६
 कलिअिहिसि ३२५, ४३३
 कहि ६३
 कअलाव ५२८
 कअण २३३
 कअतओ ३१९
 कयिरि ५५७
 कअलिआ ५८
 कयिह ५१०, ७८१
 कयिओ १६७, ४६९
 कयिअिअ १८०
 कयिअिहिसि २१६
 कयिअिअ १४०, २१७
 कयिह ३७९, ७६८
 कयिअन्ती ३७२
 कयि ३६०, ४४३, ८४
 कअण्णो ६१७
 कइअ २७०, ३३२, ३९; ४६५, ५६१,
 ७४३
 कअन्तो ३८
 कअ २५२
 कअ २१८; ३४९, ५६३, ७३६
 कअन्ती २८८, ४६; ६२२
 कअन्तो १२६, ३६५
 कअसु ७५
 कअप ३५०
 कअणाहो ५४३

कुलवालिआ ३१९३
 कुलुत्रिऊण ५१२६
 केन्तिअ ६१९
 वोडह्लाह ४१४२
 कोत्वहम्मि २१५१
 कोसपाण ५१४८
 राजन्ति ३१४८
 खडिण्हि ७१८०
 खण्टिण्ह ३१७
 मन्धेहि २१९१
 खविअ २१३४, ७१५३
 खाणेण ७१६२
 सिज्जह ५१८५
 खिण्णह ५१२९
 रतीरोअ २११७
 खुडकिआ ३१२६
 खुडिअ ११३७, ४१३१
 खुत्त ३१७६, ५१५४
 गोक्कण २१७१
 खोक्खा ६१३१
 मरन्दो ६१२६
 गज्जिर ११५७
 गणरी ३१८
 गणवई ४१७२
 गणाहिवई ५१३
 गण्ठि ६१६१, ७१४६
 गम्मिहिसि ७१७
 गविरी २१७३, ५१४७
 गलत्थिअ ६१८३
 गह्वर २१७, ७२
 गाअर २१२८
 गामडाह ३१२९, ६१३५
 गामणि ११३०, ३१, ४१७०, ५१४९, ६९
 गामणिधूआ ६१९२
 गिट्ठोओ ७१३८
 गिम्ह ४१९९
 गुगन्धिअ ३१३
 गुल ६१५४

गेहन्ति ४११०
 गोआअरी ४१५५
 गोच्छ ६१३२
 गोदआ ५१२२
 गोरअ ११८९
 गोरि १११, ७११००
 गोरी ५१४८
 गोला २१३
 गोलाउर ३१३१
 गोलाणह ११५८, २१७१
 गोविआ २११४
 गोवी २११४, २८, ७१५५
 गोसे ११२३, २१६, ४१८१, ७१९३
 घरणी ५१९
 घेतुण २१३०, ४११२
 घेण्णह ३१८६, ६१८१
 घोलह ४१७१, ६१६०
 घोलिर ४१३८, ९१
 चरिबमङ्गल ७१४४
 चम्मिअ ७१३
 चक्कन्तो २१७१
 चङ्गम्मन्तम्मि ७१२३
 चङ्गम्मन्ती ५१६३
 चट्ठअ २१६२
 चत्ता ६१२४
 चन्दिल ३१९१
 चलण ५१४१, ७१५७
 चारणी ७१७१
 चितर ६१७२
 चिकण्ह ११६७
 चिकिरह ४१२४, ५१४५, ७१८२
 चिन्तिऊण ४१५८
 चिरडि २१९१
 चिराहत्त ११२४
 चिदुरा ६१५५
 चुक २१९५, ४११८
 चुकासि ५१६५
 चुलचुलन्त ५१८१

चेम ६१४२
 छन्द ३१४३
 छग ७२४, १६८, ७९, ६२४, ३५
 छपरारै ५६६
 छलि २१२५
 छाहि १३४, ३८, ४९, २३६
 छिजए २१४१
 छिजन्त ४१४७
 छिजामो ६६
 छिजिहिसि २१५२
 छिन्दई ४१५०
 छित्त ११२३, १६
 छिप्प ४१९३
 छिप्पन्तो ५१४३
 छिवर ११२६, ५१, २६७, ९२, ५१८,
 ६३२, ७३९
 छिवन्तो ३६९, ५१२१, ६१२९
 छिविऊ ७१४१
 छिविऊग ७ ५१
 छीगो ११८४, २१४२
 छीर ६१६७
 छूहा ४१८३, ६१८९
 छेआ ४१२३
 छेक ३१७८
 छेन्दई ४११
 छेत्त २१६८, ६९
 छेफाहिन्तो ३१४०
 छेप्य ११६२
 जअम्मि ४१६४
 जए ४१३
 जमिअ ४१८५
 जनेत्ति ४१२७
 जणगवाड ३१२७
 जमुना ७ ६९
 जप्पइ ३११०, ९६, ५१२८
 जपिदि २१९२
 जणिका ३१२७
 जसोआ २१२२, ७१५१
 जइग ५१५९

जापज ३१३०
 जागमु ११५१
 जानिकण ३१९०
 जानिहिसि ६१२७
 जान्तिअ ६११४
 जाहे ७१९६
 जीअ ३१२१, ४७, ६१८६
 जावेज्जर ६१८७
 जाहइ ६१५१
 जुआ ३१२८
 जुआण ३१४६
 जुण २१७७, ४१२९, ६५, ६१३४
 जुइ ११३८, ४१५४, ६१२९, ७ ८
 जुसु ११२४
 जुह ६१४८
 जेकार ४१३२
 जेत्तिओ ४१८७
 जेणहा ४१९९, ६१९१
 जेत्तअ ७१९२
 जङ्का २१७०
 जडिअ ३१३०
 जणजनद ६१७४
 जसि २१६८
 जिजन्ति ६१९७
 जिजिहिसि ७१२६
 ठवेइ ३१९९
 ठइण ६१३४
 ठेरी २१९७ ७११२
 ठेवइ ७१२९
 ठको ६१३१
 ठरु २१४९ ६१५७, १००
 ठजइ ४१७३
 ठजमि ५११
 ठजिसि २१५
 ठइइ ४१२१
 ठिन् ३१६१ ६१५५
 ठण्डुम २१७२
 ठोर ३१११
 ठक ६१२६

ठकणित ५११९
 ठकुरस ४१२४
 पाअरदाहे २१६३
 पचरिहिं ५१२०
 पाअइ ६१८४
 पाठि ११९
 पाठिअइ ११७७
 पाम्मआ ६१४८
 पावर ४१३
 पावर ११२५, ३२, ३१४८, ६१८५
 पावरअ ३१४१, ५१६१
 पावरि ७१२२
 पाअ ११६९

 पाण २१२१
 पहाण ३१४६
 पाअत्तन्ते ६१३७
 पाअत्तन्तो ११७६
 पाअत्ताइ ७१५८
 पाअलाइआ ५११४
 पाअलाविण ५१२००
 पाअसण ४१११, ५१५५, ५९
 पाअच्छमाण ५१२००
 पाअच्छइ ६१७९
 पाअच्छेसि ४१७८
 पाकिव ११३०, ४१२८
 पाअइ ३१३७, ७१९४
 पाअहाअइ ११७३, ५१३३
 पादिठअ ४१९
 पाडाल ११२२
 पाणहुविअनि ७१५५
 पात ४१३४
 पात्यणइ ११६४
 पावुठु ११३७
 पाम्मअए ३१२०१
 पाम्मअसु ६१२९
 पाम्मिअहिंसि ७ ६७
 पारीच्छए ६१६
 पाअरअ ७११६
 पातुअ ११६२, ६४

पाअवणिअइ ३१७१
 पाअवरण ३१५५
 पाअवइअए ३१४
 पाअवविअ ४१२७
 पाअवाण ५१८०
 पाअवुइ ३१२९, ४२, ६१४१
 पाअवुइ ३१५५
 पाअसण २१२१
 पाहाआ ६१६१
 पाहाणकलस ६१७
 पाहाणाई ४१७३
 पाअिकलसे ६१७६
 पाअिअ २१२२, ६६, ७१५६
 पाअिअण ६१८९
 पाअिससइ ३१९६
 पाअेअि ११९१
 पाअेअण २१७२
 पाअेअ २१५०, ५१२०, ६१३९
 पाअ ११४१, ३१७४, ५१५०, ५४, ६१८
 पाअुअिअ ११६
 पाअआ ११९२, ५१३७, ७१९६
 पाअसो ६१३४
 पाअ ३१८७
 पाअणअ ११२९
 पाअुआअइ ३१९२, ९८, ७१११
 पाअुआअए १११९, ७१९८
 पाअुआइ ११३०
 पाअुओ २१२२
 पाअुअअइ ४१६२
 पाअुअे ३१४१
 पाअुअइ २१६१, ८२
 पाअन्तो ११५१, ३१७१
 पाअ्वाए ५१६०
 पाअ्वे ७१३८
 पाअम् ६१९
 पाअम् ५१८३
 पाअमर ६१८८
 पाअर ३१८६
 पाअरणिओ ३१७३

तरणि ६१९९
 तारि ३१३०
 तावीए ३१३९
 ताव्हर ३१३७
 तिमसेहि ६१९३
 तिक्क ६१४
 नित्तिल्ल ६१२६
 तीरह ३१७१, ३१८८, ४१४९
 तीरण ३१९५
 तुण्डिका ७१४७
 तुण्य ३१२२, ६१२८
 तुण्यागणा ३१८९
 तुमाह ५११९
 तुमाहिणी ६१२३
 तुम ७१७
 तुमि ३१९७
 तुवरी ४१५८
 तुमर ५१७६
 तुंगम ४१७५
 तुसिज्ज ६१७
 थरउ ४१६४
 थरस ४१२४
 थरु ७१५
 थगुमा ३१७६
 थणए ४१८२
 थणे ३१६०
 थान्ती ३१६०
 थणुमा ५१२२
 थरहरेर २१८७
 थरहरन्ति २१६५
 थानुमा ३१३२
 थोम ३१४९, ६१५०
 थोर ६१२८
 थड्डण ४१८२, ७१६४
 थड्ड २१३४
 थावेइ ४१२५, ७१२०
 थावेन्ती ६१९६
 थामोमरो ३१२२
 थिमर ३१३५, ५९, ५१६९, ६१७०

थिगइ ३१३५, ३१४७
 थिज्ज ३१२२, ९८
 थिज्जण ३१२२
 थिज्जन्तो ३१२
 थिणवर ७१५३
 थोओ ६१४७
 थोव ३१६४
 थोवेन्ति ४१२७
 थोमर ३१२८, २१६, ५१, ३१३३, ५१३४, ६१६९
 थोममे ६१३०
 थोमिइ ७१२७
 थोइ ३१२२
 थोइर ३१६६, ४१७४, ७१७४
 थुण्णिआए ३१२१, ७४
 थुहोली २१४९
 थुमिमभइ ५१२३
 थुमिमज्ज ४१२०, ५१४३
 थुम्मेन्ति ३१७७, ४१२५
 थुम्मेमि ४१४०, ५३, ५६
 थु ५१४०
 थुणिआण ३१२००
 थुमेइ ६१६४
 थुमइ ३१८८
 थे ३१२६, २०, ४८, ६१८७
 थेयु ३१७१
 थेहली ६१२५
 थो ३१२४, ३१३५, ५९
 थोच्च ३१८४
 थोगच्च ३१७६
 थोच्च ३१२७, २१६२, ७१२५
 थोत्रिणि ६१८६
 थोहण ३१२२
 थोहल ३१९०
 थणिम ६१८२
 थम्मिल ३१९१
 थारिणिमार ७ ६१
 थुमर ३१३०, ३१८०, ४१६९, ५१३३
 थुम ३१४२

धुकाधुकर ६।८३
 धुव्वन्त ६।६३
 धूमा ४।७०, ८८
 धूमाद २।१४
 धोदण २।१८
 धोअं ४।६९
 धर्म्म ७।२२
 धमत्तेण ५।३६
 धम्मिपुअव्वाण ५।५०
 धमवीए २।७
 धमाव ४।२६
 धमाहिण २।२५
 धर्म्म ४।३३
 धउट्टम्मि ५।५३
 धउरथो २।१७, ३६, ३९, ५८, ६६, ७०, ९८;
 २।२९, ८८, ९०; ४।३५; ६।४६
 धंमुल ६।२०
 धम्मिपमाद ७।४९
 धट्ठाप्पन्ति ५।४०
 धट्ठिच्छए २।४०
 धडिमा २।५०
 धविवआ ६।६९
 धविवक्खो ३।९२, ७।२८
 धट्ठिहासद २।२५
 धणवट्ट ४।९५
 धणामेसि ४।३२
 धण्हइ ५।६२
 धण्हुअ ५।९
 धण्हइरिं ५।६२
 धत्थिअज्जन्तो ४।२००
 धत्तल ७।३५
 धत्तिअ ३।१६, ४५; ४।५३, ७६
 धण्होइ ५।३३
 धण्होडन्ती २।४५
 धराहुत्त ३।४५
 धामट्ठिज्जन्तो ७।८५
 धाडमकम्भं २।२
 धाउस २।७०; ४।९४, ४।४५; ६।३७, ५९, ७७
 धाउहारीओ ७।९२

धाठीणं ५।२४
 धाडला ५।६९
 धाडलिं ५।६८
 धाडि २।६५
 धाणउटी ३।२७
 धारोहो ६।७५
 धाव ३।२२, ९४; ५।४४
 धावालिआ २।६३
 धाविअ ३।९; ६।९३
 धाविऊण ३।४२; ६।२५
 धाविहिसि ५।६२; ६।९
 धासअसारि २।३८
 धामुत्त ४।२४
 धिमइ ४।२७
 धिमत्तेण ३।६७
 धिमन्त ३।४६
 धिउच्छा २।२०; ३।९५, ९८; ६।३७
 धिक्क ६।९५; ७।४२
 धिट्ठ ७।७६
 धिट्ठ ४।२२
 धिसुणन्ति ६।५८
 धिहुल ४।९
 धील्ल २।२
 धुच्छिरो ६।९८
 धुच्छीज्जन्तो ४।४७; ७।४७
 धुत्त २।८७
 धुत्ति ३।२३; ४।२३; ७।७४
 धुक्कवइ ५।८०, ८२
 धुक्कुआ ४।२९
 धुरिसाअन्ति २।९६, ४।९२
 धुरिसाहरी २।५२; ७।२४
 धुरुमाहरी ५।४६
 धुलहओ ३।५४
 धुलहज्जउ २।६४
 धुलिन्द २।२६; ७।३४
 धुव्वरक्क ४।४४
 धुत्तिअ २।५४; ४।२; ७।२९
 धुम ४।२३; ५।३३; ७।८२
 धुत्तिज्जन्ति ३।६; ७।६४

पेकराम ७१७२
 पेच्छरी ४१७२
 पेच्छिदिसि ६१६५
 पेम्न ३१३२
 पेल्ग ३१६१, ४१६८
 पेस्तिअ ३१२१; ४१६५
 पोई ११८३, २१७१; ३१८५
 परिघुम्मिर २१४८
 परिचत्ता ७१५२
 परिवत्तन्तीअ ३१८३
 परिमलसि ७१२९
 परिवादि ३१४९
 परिसाक्रिआण ७१६
 परिहरिअन्वा ३१२७
 परिहरिआसु ६१२०
 पहिरअइ ४१९८
 पमाणसुत्त २१५३
 पमहादिव ५१४८
 पम्माअ २१५५
 पम्हल ५१७०
 पम्हसिआसु ४१४८
 पम्हुसर ७१५६
 पलित्त ५१५४
 पलीविअ २१३३, ६१८८
 पलोहरीअ २१८०
 पलोहस्त २१३७
 पलोपसि २१२००, ३१५६, ६१७०
 पलोहर ७१८३
 पवित्रिम्हिअ ६१३५
 पवत्रिदिसि ७१५९
 पवसिपसु २१४५
 पवसिहदि २१४६
 पव्वर २१६९, ५१५५
 पसिअ ४१८४
 पसिअण ७१७५
 पसाअन्ति २१९२
 पसाप २१८४
 पसुवर २१२, ६९
 पसुअ २१५९

पहिम २१३६, ६१, ३१६१; ४१३०, ७०;
 ६१८५
 पहाविर ३१२
 पडु ३१४३
 पटुप्पन्ति २१४३
 पटुप्पन्तो २१७
 पदेणअ ४१२८, ७१३
 पडोलिरं ७१९६
 पग्गुच्छण ४१६९
 परिसो २१३२
 फलिह ६१४९
 पएही ४१५९, ६०
 फलहीवाहण २१६५
 पसेण ५१६२
 फालिअन्तमि २१५३
 फालेहि २१९
 पिडुह २१८३
 पिट्टा २१९३
 पुक्कन्ती २१७६
 पुट्टु ३१२८
 पुट्टिह ३१८९
 पुडसि ५१२
 बलामोदि ५१६५
 बहिरा ७१९५
 बात्तुकि २१२०
 बुद्ध २१३७
 बुद्ध ४१८
 बोर २१२००, ५१२९
 मअवर २१४६
 मडाय ५१२७
 मणिअ ३१४३
 मणिअऊ ६१७२
 मणिरी २१९७
 मण्डुगार ७१९९
 मण्डन्तीअ ४१७९
 ममिर ६१८२
 ममिरी २१७४, ४१५४
 भरन्त ४१८२, ८३
 मरिज ४१३४

भरिकग ११६०	मम्मह ६१७५
भरिमो ११२२, ७८; २१८, ९२; ३१२६; ४६८	मरउ ७२
भरिस्ति ४१८९	मरगअ ११४
भाअण ३१४८	मलिआ २११०
भामिज्जन्तं ५१५७	महि ७१८५
भासु ६१८२	मलेसि ५१४४
भिकसुसप ४१८	मसाण ६१३६
भिज्जन्ता ३११६	महं ६१६६
भिसमेमि ४११२	महइ २१२८; २१३९; ६१९०
भिमिणी ११४, ८	महम्महइ ७१४
भिसेण ५१४३	मम्मह ५१३०
मुकइ ७१६२	महिज्जण ५१७५
मुज्जसु ४११६	महुअ २१४
भोइओ ६१५६	महुमहण २११७; ५१२५
भोइणि ७१३	माअइ ३१४१
भोण्ठी ५१२	माअन्ति ४१७६
मअण ५१४३; ६१४४, ४५	माउआ ३१४०, ८५; ५१२३
मअणवड ५१५८	माउच्छा ७१४८
मअच्छी ३११००	माणसिणी ३१७०; ६१२१, ३९
मअरइअ २११	माणसं ५१७१
मसलो ३१८१	माणदहाणं ११२७
मइअ ७११८	माणिज्जन्त ४१२०
मइर ६१५०	माभि ११९३, ९७; २१२४; ३१४, ४६, ६४; ४१४४; ५१३१, ५०; ६१६, ९१; ७१८
मइराइ ३१७०	मारोसि ६१४
मइरं ३१८७	मारोहिसि ६१६६
मइलेन्ति ११५	मालारी ६१९६
मकइअ ११६३	माखर ६१७९
मगइ ११७२; ७१५०	माहप्य ३११२, ६६
मज्झिरी ५१७३	माहवस्त ५१४३
मज्झ ७१६५	मिलाण ४१८३
मज्झआरम्मि ११३	मिलावेइ ४११
मज्जर ३१८६	मुअ २१४२
मइह २१५	मुअइ २११५, ४७, ३१७५; ४११९; ७११९, ३१
मणसिणो २१११	मुइअ ७१३६
मणे ११६१; ३१८४	मुइहओ ७१९६
मण्डलो ७१६२	मुम्मुर ३१३८
मण्णन्ति ५१९८	मुइओ ३१५३
मणिहिसि ७१६१	मुहा ६१७०
मन्दरेण ५१७५	

मेसी ३७२	रेहर १४, २१७; ५४६; ६६९
मेलो ७१९	रोज ४१५
मोहजन्त ७७२	रुमा ५६४
मोसिअं ४१४	रुकिरज्जर ४२३; ५१५
मोस्तु ४६४	रुग ४७५, १०२; ५१८
मोस्तु ४६०	रुङ्गा ४१२
मोस्तुग ४१०	रुङ्गी १४२; २५२
मोगं ३४३	रुङ्गाउलाह ७१०
मोहामविच्छि ६७२	रुङ्गासुरगी ५८२
रमगाभराहि ६१३	रुङ्ग १७
रकुगो ६७८	रुङ्ग ११२, ९९; ५१२९; ७६०
रकुटा ११९; ३४२; ४१३; ५१९	रुङ्गि २४४
रुजं २१५	रुङ्गमत्त ५१९
रुजिज्जर १४२	रुङ्गमति ३५५
रुणाउ १८७	रुङ्गमि ४४५
रुमगिज्ज ४१०१	रुल ६१२
रुह १३४	रुलविर ४१५
रुहभाह २७२	रुलिर ६५२
रुम १३५	रुलितेग ५४२
रुमि २५२	रुभ १८
रुहिभाए १८९	रुङ्क १४९; ६५८
रुि ५३	रुम्मीओ ४४२
रुिङ्गोली १७५; २१०, ६६२, ७४; ७८७	रुहल ६१०, ७५४
रुिग २१२	रुङ्गी ३४४
रुिह ४१६	रुङ्गला ५६१, ७१७
रुमई ३१६	रुहल ५१५
रुमविमा ४८९	रुहिल २५२; ५४४, ७१३
रुमर ११९; ४७	रुमह ७१८
रुणा ११८; १७७	रुमवहृदि २१२
रुस्म ५१५	रु ११६; ३१७
रुन्द ३४२; ५१२; ६७४	रुङ्ग ५१४
रुम्प ११९, २०	रुथ ११२१; २६०; ४५५; ६८७
रुव २४३; ६१६, ६७	रुथर २६९
रुवर ११०; २४२	रुथली ५१२
रुस्म ४१००	रुथ ५१०
रुसेर ५१६	रुथि ७१७
रुसेर २१५	रुथीदि ७१६
रुसिज्जर ६१८	रुथ ७७०
रेबा ६७८, ९९	रुथ ६४८

चण्णधिअ १।२२
 चण्णवसिए ५।७८
 चण्णिअ ७।२०
 चराई ४।२८, ५।३८, ५६, ६।३३
 चरिस ४।८५
 चलिणो ५।६
 चलिवन्धो ५। २५
 चलेइ ४।४
 चहवीण १।८९
 चाविज्जन्ती ४।५८
 चसण ३।५१, ४।८०
 चसणिओ ७।८
 चसिओ ३।५४
 चमुहा ४।८
 चाहो ४।७७
 चाअल ४।१००
 चाइओ ६।१७
 चाउलिआ ७।२६
 चाउल्लअ ३।१७
 चाएइ ४।४
 चावउ २।९९, ३।९१
 चामाण ५।६, २५
 चावार ३।२६
 चासा ५।३४, ६।८०
 चासारत्त ३।३१
 चासुइ १।६९
 चाइ २।१९, ७३, ८५, ७।१, १८, ६३
 चाहरउ २।३१
 चाहित्ता ५।१६
 चाहीए २।२०, ६।९७
 चाहो २।२२
 चाहोलेण ६।७३
 चाहोइ ६।१८
 चिअळ १।९३
 चिमत्थसि ५।७८
 चिमट्ट ५।५
 चिमण ४।२६
 चिमण्ण ५।७६
 चिमसाविकण ५।४२

विहण्ण ४।७२
 विउण ३।८९, ६।३, ७।८३
 विच्छद्वे ४।८७
 विच्छिद्वह ५।२४
 विच्छुअदट्ट ३।३७
 विच्छुहमाणेण ६।१
 विच्छोइ ३।१०
 विज्जविअ ४।३३
 विज्जसे ५।४१
 विज्जाविज्जइ ५।७
 विज्जाहरि ५।४६
 विज्जाअन्त २।९
 विज्जाइ ५।३०
 विज्ज २।१५, १७, ६।७७, ७।३१
 विट्ठि ३।६१
 विट्ठ ७।७१
 विण्णाण ३।५१
 विणिअसण २।२५
 विणिम्मिअआ ३।३५
 विस्थअ ५।७
 विराअग्नि १।५
 विरमावेउ ४।४९
 विलिअ १।५३
 विवज्जइ ६।१००
 विसम्मिहइ ६।७५
 विसूरन्त ५।१४
 विहइइ ३।४५
 विहइण १।५९
 विहइए ५।४८
 विहल ५।७१
 विहाइ ४।९५
 विही ७।५६
 विहुअ ७।६०
 वीअन्तो १।८६
 वीएण १।८६
 वीममसि १।४९
 वीसरिअ ४।६१
 विहोइ ४।११
 वेअण १।२६

वेमारिउ ३।८६
 वेज्ज ३।३७, ४।६३
 वेण्ट ४।१९, ६०
 वेढ १।९६
 वेढणेसु ६।६३
 वेहहल ६।९८
 वेविर ३।४४, ७।२४
 वेस ३।२६, ५६, ३।६५, ६।१०, १४, २३
 वेसत्तण ३।६७, ६।८८
 वेसिणिअ ५।७४
 वेहव्व ७।३०, ६३
 वोढ ६।४९
 वोढही ४।९२
 वुढ २।२०
 वोलाविअ १।२१
 वोलिआ ३।३२
 वोलाण १।५६, ३।५२, ४।४०, ६७, ८५,
 ५।३४, ६।९
 वोल्हु २।८१
 सअञ्जिआ १।३६, ३९, ४।३५
 सरण्ह ५।५
 सरं ३।२८
 सकणारअ ३।२०
 सक्ह ४।८६
 सङ्खिज्जसि ६।८
 सङ्खिर ६।८२
 सखविओ ६।३८
 सच्छद्दार्ह ७।७९
 सच्छद्देहिं ४।८
 सणिअ २।३, ५।१८
 सण्ठन्वतीए १।३९
 सहदिमो १।२३
 समअ ३।३५
 समअण्ण ५।५
 समप्पह ३।४४, ५।८, ६।८६
 समुक्खण्ह ७।८४
 समुरससन्नि ७।२३
 समोगआहं ३।८२
 समोसरन्ति २।९२

समोसरिअ ७।५९
 सरए २।८६, ७।२२, ७०, ८९
 सरअस्स ६।३४
 सरिए ६।६२
 सरिच्छार्ह २।८६
 सलाहणिज्ज १।२२
 सवह ४।२४, ६००
 सवन्ती १।७२, २।६, ७३, ३।२२, ६।९७
 सवह ४।५७, ६।२८
 सविअण ६।८४
 ससह ६।४६, ७।३१
 ससि २।५१
 सहाव ४।८०, ५।२४
 सहिज्जह १।४३
 सहिरीओ १।४७
 सङ्गमह २।१३
 सङ्किरी ३।६
 सङ्गहिओ ७।९४
 सठाह ३।६८
 सणिह ३।५८
 सभरण ३।२२, ४।७७
 सभरन्तिए १।२९
 सभरिज्जह १।९५, ५।२३
 साजली ३।६९, ७।९
 सामाह २।८०, ५।३९
 सामलिज्जह २।८०
 सामलीए २।२३, ८३, ८९, ३।३८
 सारिं ६।५२
 सारिज्ज २।९४, ३।७९
 सालाहण ५।६७
 सालिखिस्त १।९
 साल्ही ४।९३
 सासू ४।३६
 साहह (साहसु) २।९७, ४।९६, ५।५३,
 ६।३६, ४२, ६००, ७।८८
 साहाविअ ३।२५
 साङ्खिओ ३।९०
 साहीण २।९७, ४।५

साहेद २१८५
 साहेक ६१४९
 सािकरिअ ४१९२
 सिक्कद ५१७७
 सिक्कविआ ४१५२
 सिक्कावअ ४१४८
 सिक्कियरि ७१६१
 सिजिरकी ५१७, ८
 सिद्ध ६१७३
 सिम्प ६१८९
 सिम्पि ११६२
 सिम्पिर ४१३०
 सिमिसिमन्त ६१६०
 सिक्किअ ११९३, ४१९७
 सिही १११४
 सुअ २१९८, ५१३१
 सुअइ ५११२
 सुख्खन् ५११४
 सुगअ २१३८, ७१, ७१८६
 सुग्गिआ ७१८७
 सुग्गइ ११४६
 सुग्गविअ ७१९
 सुग्गु २१३
 सुग्ग ६१५७
 सुग्गउ ५११२
 सुरसुरन्ती ११७४
 सुवई ११३१, ६५, ६६
 सुद्धपुक्किआ ४११७
 सुद्धअ १११२, ३१४९, ५११८
 सुद्धाओ २१५९
 सुद्धाव ५१३०, ६१८
 सुद्धावेइ ११६१, ८५, २१६८, ३१६१, ४१३३,
 ७११५, ४९
 सुहेत्ति ३१६१, ८८, ४१६८
 सूअ ३१६३
 सूअर ४१२९

सूग ७१३४
 सूर २१३०, ५१, ४१३२
 सूसद ६१३३, ७१९१
 सेउत्तिअ ५१४०
 सेओत्ता ४१५८
 सेरिह २१७२
 सोणार २१९१
 सोणहा १११९, ३१४१, ५४, ४१३६, ५१८३,
 ७१३०
 सोमारा २१८९
 सोमिसि ११३५
 सोहिरी ६१११
 सोदिछ ६१४७
 हणइ ३१२४
 हत्थाहत्थि २१७९, ६१८०
 हत्थउड ३१३६
 हत्थाहत्थि ३१२९
 हर ७१२००
 हरि ५१६, ११
 हरिकण ५१५२
 हरिअइ ५११२
 हरिदिह २१४२
 हलहलआ ११२२
 हलफल ११७९
 हलिओ ६१६७, १००
 हसिअइ २१४५
 हसिरी २१७४, ६१८, २७
 हालिग ११३
 हिण्डन्ती २१३८
 हीरह ११३७, ४११०
 हीरन् २११, ४१३१
 होड्डिमि ४१६५
 होत्तमि २१२४
 होन् ७१४२, ४४
 होर ५१३५
 होदिह ६१६८, ८१, ७१७३

राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा के परमोपकारक ग्रंथ—

प्राकृत साहित्य का इतिहास

प्रो० जगदीशचन्द्र जैन

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रमुख विषय तो नाम से ही स्पष्ट है किन्तु उसके गन्दर्भ रूप में विश्वभर की सम्पूर्ण भाषाओं की जानकारी संक्षिप्त रूप में प्राप्त हो जाती है। तदनन्तर वेद से लेकर प्राचीनतम शिलालेख, प्राचीन नाटक, कथाग्रन्थ आदि तथा इस विषय पर खद्योत-प्रकाश डालने वाले आधुनिक ग्रन्थों के अध्ययन आदि के व्यापक समीक्षण और समालोचनपूर्वक अपने विषय का यह प्रथम ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में अनतिरिक्त हुआ है। ऐसा विश्वास है कि प्राकृत के उद्गम, स्थिति और प्रचार आदि के विषय में जो धामक और मन्दिगध दुर्निर्णत मत-मतान्तर प्रचलित हैं उन सबका एक साथ निर्णय हो जायगा और प्राकृत के वारतविक एवं प्रामाणिक इतिहास से लोग परिचित हो सकेंगे।

हिन्दी साहित्य की लेखक की यह अनुपम देन है। प्रत्येक संस्कृत-मादिरव के अनुसन्धित छात्र, अध्यापक एवं अनुरागी व्यक्ति को इस ग्रन्थ का अवलोकन एवं अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

मूल्य २०—००

हिन्दी-प्राकृत-व्याकरण

आचार्य मधुसूदनप्रसाद मिश्र

विश्वविद्यालयों में प्राकृत के अध्ययन की कुछ न कुछ स्तनत्र व्यवस्था की गई है। प्राकृत पढ़नेवाले छात्रों को या तो हेमचन्द्र, बरहृषि आदि के संस्कृत सूत्रों को रटना आवश्यक होता था अथवा जर्मन विद्वान् पिराल आदि के अंग्रेजी अनुवादों से किसी प्रकार काम चलाना पड़ता था। अभी तक हिन्दी में प्राकृत के सभी अर्थों पर प्रकाश डालने वाला कोई पूर्ण व्याकरण नहीं था। हमी हमी की पूर्ति के लिए विद्वान् लेखक ने इस व्याकरण का प्रणयन राष्ट्रभाषा हिन्दी में किया है। इसमें महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पेशाची, अपभ्रंश आदि प्राकृत के जितने अर्थ हैं, उन सब का व्याकरण हेमचन्द्र आदि की सहायता से बड़े सरल एवं सुबोध रूप में प्रतिपादित हुआ है। प्रत्येक नियम विषय की अच्छी तरह समझाने हैं। नियमों के साथ स्थान-स्थान पर उनके सौदाहरण अपवाद स्पष्ट भी बतलाये गये हैं। प्रत्येक नियम के साथ उदाहरणस्वरूप आये हुए प्राकृत शब्द के मन्वृत रूप भी सामने दे दिये गये हैं। पादटिप्पणी द्वारा उल्लेख हुए विषय को समझाने की पूरी चेष्टा कर साथ ही तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री भी प्रस्तुत की गई है और अन्त में अकारादि क्रम से ग्रन्थ में आये हुए उदाहरणों की सूची भी दी गई है। इस ग्रन्थ की आधुनिक विशेषताओं को देखकर बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् ने इसकी पाण्डुलिपि पर ही ५००) रूपों का अनुदान प्रदान किया है।

मूल्य ५—००

संस्कृत साहित्य का इतिहास

(बृहत् संस्करण)

श्री वाचस्पति गौरेला

इस ग्रन्थ को लिखते समय यह ध्यान रखा गया है कि पाठक परम्परा और पूर्वाग्रह के मोह में न पड़कर प्रत्येक विवादग्रस्त प्रश्न का समाधान स्वयं कर सकें। पाठक पर भर्त्सने विचार छोड़ने की अपेक्षा उपयुक्त यह संमति ली है कि विभिन्न मतवादों की समीक्षा करके वह स्वयं ही विषय के सही ध्येय को ग्रहण कर सकें। भारतीयता या विदेशीपन का पक्षपात त्याग कर किसी भी विद्वान् के स्वस्थ और सही विचारों को उधार लेने में सङ्कोच नहीं किया गया है। पुस्तक की विषय-सामग्री और उसकी रूपरेखा का गठन भी ऐसे ढङ्ग से किया गया है, जिससे संस्कृत भाषा की आधारभूत भावभूमि का परिचय प्राप्त होने के साथ-साथ सम-सामयिक परिस्थितियों का भी अध्ययन हो सके। भाषों के आदि देश एवं आर्य भाषाओं के उद्भव से लेकर उन्नीसवीं सदी तक की सहस्राब्दियों में संस्कृत साहित्य की जिन विभिन्न विचार-वीथियों का निर्माण हुआ और भारत के प्राचीन राजवंशों के प्रभय से संस्कृत भाषा को जो गति मिली, उसका भी समावेश पुस्तक में देखने को मिलेगा।

मूल्य २०-००

संस्कृत साहित्य का संचित इतिहास

संस्कृत साहित्य के इतिहास का यह संचित संस्करण इस उद्देश्य से लिखा गया है कि विभिन्न विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित इतिहासविषयक ज्ञान के सर्वधनार्थ विद्यार्थीवर्ग का इससे लाभ हो सके। पाठ्यक्रम की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के इतिहास पर राष्ट्रभाषा हिन्दी में जो अनेक अन्य पुस्तकें लिखी गई हैं वे या तो सर्वांगीण नहीं हैं अथवा उनमें छात्रों के उपयोगी इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन की क्रमबद्ध रूपरेखा का अभाव है।

यह इतिहास पाठ्यक्रम की दृष्टि से तो लिखा ही गया है, किन्तु संस्कृत के बृहद् वाङ्मय का आमूल ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करने का भी इसमें उद्योग किया गया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत के छात्रों को वैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृत-साहित्य के इतिहास का अध्ययन कराया जाय, जिससे कि उनकी मेधाशक्ति का स्वतंत्र रूप से विकास हो सके और प्रस्तुत विषय पर उनके भाव विचारों को नई दिशा में अग्रसर होने का अवकाश मिल सके। ८-००